

चौमासा

वर्ष-18 अंक-56
जुलाई-अक्टूबर-2001

सम्पादक सलाहाकार
निरंजन महावर

सम्पादक
कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र



आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
भोपाल का प्रकाशन

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

सम्पर्क :

मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्

मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल,

बाणगंगा, भोपाल-462003

दूरभाष : 551878

मूल्य :

एक प्रति बीस रूपये

वार्षिक पचास रूपये

आजीवन सदस्यता पन्द्रह सौ रूपये

चौमासा का वार्षिक शुल्क अनुषंग पुस्तिका के साथ सौ रूपये

प्रचार/प्रसार :

श्रीमती उर्मिला पारखे/प्रवीण गावण्डे

आवरण -

गोंड जनजाति का पारम्परिक चित्र-श्री शंभूसिंह-भोपाल

शब्दांकन -

मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्

मुद्रण :

प्रियंका ऑफसेट, भोपाल

λ चौमासा में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखकों के अपने कार्य और विचार हैं। आवश्यक नहीं कि परिषद् उनसे सहमत हो।

λ पत्रिका और प्रकाशन से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल रहेगा।

डॉ. कपिल तिवारी, सचिव, मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक द्वारा मे. प्रियंका ऑफसेट 25-ए, प्रेस काम्प्लेक्स, भोपाल से मुद्रित कराकर मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्, मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल, बाणगंगा, भोपाल से प्रकाशित।

सम्पादक - डॉ. कपिल तिवारी

इस अंक में-

- भारतीय परम्परा-उच्छलित लोक/डॉ. विद्यानिवास मिश्र / 5
- शब्द का संज्ञान/डॉ. कमलेशदत्त त्रिपाठी / 13
- आख्यान तथा वाचिक परम्परा/ डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी / 22
- वाचिक परम्परा और लोक विवेक/बद्रीनारायण / 25
- बुन्देली लोक गाथाएँ/वीरेन्द्र कुमार द्विवेदी / 30
- तांत्रिक बौद्ध साधना और उसकी दार्शनिक पीठिका/डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी / 36
- राजस्थानी कहावती-कथाएँ/वियदान देथा / 42
- लीला-नाटक और लोकनाट्य-परम्परा/रामनारायण अग्रवाल / 58
- मध्यप्रदेश के लोक साहित्य में जातीय चेतना/डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त / 66
- लोकगीत : परम्परा प्रयोग एवं संरक्षण/महावीर अग्रवाल / 70
- माता सेवा गीत/निरंजन महावर / 75
- लोक चित्रकला मांडने/रामनारायण उपाध्याय / 87
- कठपुतलियों की ऐतिहासिकता/विभाष उपाध्याय / 90
- लोकगाथा भरथरी/अश्विनी कुमार आलोक / 93
- राई नृत्य की आत्मा-होड़/माधव शुक्ल मनोज/99
- बुन्देलखण्ड के साहित्यिक सप्तर्षि/वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'/102
- बुन्देली चित्रकला/डॉ. हरीमोहन पुरवार / 106
- पतित पावनी माँ नर्मदा/रमेशचन्द्र तोमर / 110
- जोगा में नर्मदा की निर्मलता/डॉ. श्रीराम परिहार / 120
- मिथ्स ऑफ मिडिल इण्डिया/वेरियर एल्विन/अनु.-डॉ सुरेश मिश्र / 123
- लोककथा : उड़ने वाला जहाज/प्रकाश परिहार / 136
- समीक्षाएँ/अनिल सिन्हा/प्रो.देवसिंह पोखरिया / 143 / 146

इस अंक के लेखक-

- डॉ. विद्यानिवास मिश्र, एम.3, बादशाहबाग, सिगरा, वाराणसी (उत्तरप्रदेश)
- डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी, 439, महामना मालवीय नगर, इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश)
- डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, बी-12, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय आवास सागर (मध्यप्रदेश)
- बद्रीनारायण, पं. गोविन्दवल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान, झूँसी, इलाहाबाद(उत्तरप्रदेश)
- वीरेन्द्र कुमार द्विवेदी, गढ़ाकोटा, सागर (मध्यप्रदेश)
- डॉ राममूर्ति त्रिपाठी, 2 स्टेट बैंक कालोनी, देवास रोड, उज्जैन (मध्यप्रदेश)
- विजयदान देथा, रूपायन संस्थान, बोरूँदा (राजस्थान)
- रामनारायण अग्रवाल, गली रावलिया, लाल दरवाजा, कच्ची सड़क, मथुरा(उत्तरप्रदेश)
- डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त, मंगलम, सर्किट हाउस मार्ग, छतरपुर (मध्यप्रदेश)
- महावीर अग्रवाल, ए-13, आदर्श नगर, दुर्ग (छत्तीसगढ़)
- निरंजन महावर, 26, सेन्ट्रल एवेन्यू, चौबे कॉलोनी, रायपुर (छत्तीसगढ़)
- विभाष उपाध्याय, 7/सी, एच, पॉकेट, मरोदा, भिलाई (छत्तीसगढ़)
- अश्विनी कुमार आलोक, राष्ट्रवेणु, प्रभा निकेतन, धरणी पट्टी, बघड़ा, समस्तीपुर (बिहार)
- माधवशुक्ल मनोज, ए-98, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, कोहेफिजा, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', 143, कुरेचानाका, मऊरानीपुर, झाँसी (उत्तरप्रदेश)
- डॉ. हरीमोहन पुरवार, निदेशक, बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई (उत्तरप्रदेश)
- रमेशचन्द्र तोमर, ग्राम/पोस्ट-दवाना, तहसील-ठीकरी, बड़वानी (मध्यप्रदेश)
- डॉ. श्रीराम परिहार, 16, आजाद नगर, खण्डवा (मध्यप्रदेश)
- डॉ. सुरेश मिश्र, सी-19, बी.डी.ए. कालोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- प्रकाश परिहार, 5/ई-5, अरेस कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- अनिल सिन्हा, 3/30 पत्रकारपुरम् गोमतीनगर, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)
- प्रो. देवसिंह पोखरिया, 15, विवेकानन्द पुरी, कुमाऊँ वि.विद्यालय परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

भारतीय परम्परा-उच्छलित लोक

डॉ. विद्यानिवास मिश्र

(‘अर्थाक्षर’ शीर्षक व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिया गया व्याख्यान-सम्पादक)

(जिस उच्छलन की बात मैंने अपने शीर्षक में की उसका सन्दर्भ क्या है। उसका सन्दर्भ यह है कि) हम जो यह मानते हैं कि परम्परा लोक में मौजूद है और शास्त्र में मौजूद है। यह भूल जाते हैं कि लोक एक तरह से जितना परम्परा से संचालित होता है, गतिशील होता है, उतनी मात्रा में शास्त्र नहीं होता। उसका एक कारण है लोक में ज्ञान के अनुभव का संक्रमण निरन्तर होता रहता है। अविराम होता रहता है क्योंकि उसमें परस्पर संवाद होता है। वाचिक रूप में होता है। उसकी निरन्तरता इसीलिए बनी रहती है। शास्त्र में कभी-कभी अन्तराल भी आ जाते हैं। जहाँ अन्तराल आता है वहाँ लोक से ही उसको प्राण मिलते हैं। बराबर ऐसा हुआ है। हमारे दर्शन के इतिहास में बार-बार जहाँ नया तर्क देना पड़ा है वहाँ लौकिक न्यायों का आसरा लेना पड़ा है समझाने के लिए। ऐसे छोटे-छोटे आख्यान दिये गये हैं। काकताली अन्याय है। इसका अर्थ यही है कि एक कौआ एक ताल के वृक्ष पर चढ़ा। उसके पके हुए फल पर बैठा। फल नीचे गिरा, किसी आदमी के सिर पर गिरा। इतनी घटनाएँ हो गई और एकाएक हो गई। कहाँ कौआ, कहाँ ताल का वृक्ष, कहाँ नीचे जा रहा पथिक। कोई संबंध नहीं। लेकिन एक घटना घट गई। तो ऐसे काकताली अन्याय से भी कुछ होता है। सब कुछ कारण से ही होता है ऐसा नहीं। कुछ अकारण भी होता है। उन कारणों में वस्तुतः भिन्न-भिन्न घटकों का एक समवाय होता है। (उससे होता है।) इसके लिए उन्होंने काकतालीय घटना का उदाहरण दिया और नाम दे दिया- काकतालीय अन्याय। (तो) जब लोक के अनुभव में कोई चीज आयी और आख्यान बन गई उसका आसरा न लिया जाये और इस प्रकार की कालवर्ती व्याख्या न की जाये तो समझ में नहीं आयेगी। इसको आप कह सकते हैं कि सब कुछ आप मान लीजिये पूर्व नियत है। तो उसके उत्तर में कहा कि सब कुछ पूर्व नियत नहीं है क्योंकि कुछ-न-कुछ ऐसा है। जिसके बारे में पूर्वानुमान नहीं है (कहा भी नहीं जा सकता है कि ऐसा हो सकता है ऐसा हुआ होगा। किसी को अनुमान नहीं कि ऐसा हो जायेगा। (और) मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो बहुत ही अप्रत्याशित प्राणी है। उसके बारे में पूर्वानुमान हो ही नहीं सकता। उसकी चेतना में कब कौन सा ज्वार आयेगा, कितनी शताब्दियों पुरानी स्मृति आयेगी या उसमें छिपे हुए कौन से विकार आयेगे या उसके भीतर छिपी हुई कौन-सी सात्विक वृत्ति उछलेगी

कोई नहीं जानता और इस वस्तु को समझाने के लिए एक न्याय का आलम्बन लिया गया जो लौकिक है, जो लोक के अनुभव में है। (एक बात मैं यहाँ शुरू में निवेदन कर दूँ कि) लोक शब्द एक ऐसा उदाहरण है कि अनुवाद में अधिकतर तो हमने छोटे दायरे वाले शब्द का अनुवाद बड़े दायरे वाले शब्द के रूप में किया है जैसे 'रिलीजन' का अनुवाद धर्म किया है और धर्म का ह्रास हुआ है। लेकिन यहाँ एक छोटे दायरे वाला शब्द है उसे बड़े दायरे वाले शब्द में अनूदित किया है। 'फोक' को हमने लोक माना है और लोक केवल कुछ लोगों का आभास करके, कुछ जमा लोगों का समूह नहीं है। लोक समस्त इन्द्रिय गोचर संसार है। लोक का अर्थ ही है प्रकाश व्यक्त होना, आलोकित होना। (तो) जो कुछ इन्द्रिय गोचर होता है, सुनाई पड़ता है, दिखाई पड़ता है, जिसे सूँघा जा सकता है, जिसे छुआ जा सकता है, जिसे चखा जा सकता है- ऐसा जितना भी कुछ है वह सब लोक है और इसलिए वह लोक 'फोक' से बहुत भिन्न है। जहाँ 'फोक' में बिसरी हुई चीजों का एक ग्राहक है या अनुमापक है वहाँ लोक जो निरन्तर चल रहा है, हमारी इन्द्रियों में है, वह है। इसलिए अनजाने ही हमने किया होगा अनुवाद, पर जो अनुवाद हमने कर दिया वह मूल अवधारणा से बहुत अलग ऊपर उठा और इसलिए उसने लोक संस्कृति को अलग रूप में परिभाषित किया। जहाँ पश्चिम के समाजशास्त्री, सुमनेर वगैरह 'फोक वेज' के नाम पर ऐसे मार्गों की चर्चा करते हैं जो मार्ग, जो डगर छोड़ी जा चुकी है। उस पर कोई चलता नहीं, चौड़ी डगर संकरी हो गयी है गड़ढ़े हो गये हैं। उसको लोग भूलने की कोशिश में हैं। नये मार्ग पर आ चुके हैं। हमारे यहाँ लोक ऐसा नहीं है। लोक एक निरन्तर जीवित पदार्थ है। उसके साथ ही निरन्तर प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसलिए कुछ अधिक लोगों के संज्ञान में है और उसके द्वारा कोई चीज पहचानी जाये, संज्ञापित हो तो उसका बड़ा महत्व होता है। एक बहुत बड़ा सिद्धांत शास्त्र को भी स्थापित करना पड़ा कि

धर्मस्यानवच्छिन्ना पन्थानो व्यवस्थिताः।

न तान् लोक प्रसिद्धत्वान्कश्चित्केन बाधते॥

इसमें सिद्धांत यह है कि व्यवहार के धर्म का अर्थ विश्वास नहीं है। व्यवहार के जितने भी मार्ग निरन्तर बिना किसी भय के चल रहे हैं और केवल चल ही नहीं रहे हैं, व्यवस्था के अंग बन रहे हैं। व्यवस्था में आकर कहीं-न-कहीं स्थापित हो रहे हैं उनको कोई तर्क से काटना चाहे तो नहीं काट सकता क्योंकि वे सभी लोक में प्रसिद्ध हैं। केवल सिद्ध नहीं हैं, प्रसिद्ध हैं। लोक में प्रसिद्ध होने के नाते उसके बारे में कोई तर्क नहीं कर सकता। क्योंकि निरन्तर चले आ रहे हैं और

वे व्यवस्था को अर्थ देने वाले हैं, आकार देने वाले हैं। ऐसी चीजों के बारे में कोई तर्क करना चाहे तो तर्क नहीं चलता। चला आ रहा है। शुभ कार्य है लोग हल्दी लगा लेंगे। कोई पूछता है हल्दी क्यों लगायी। हल्दी न लगाइये। अगर आप मिर्च की बुकनी लगा लीजिये तो क्या होगा। उसका उत्तर कोई नहीं। कहेगा कि ऐसा चला आ रहा है और इसको सिराने से हमारा भला होता रहा है, भला होगा। क्योंकि यह हमारी व्यवस्था का अंग है। मंगल की कल्पना का अंग है। हल्दी से रंगा जाना, चावल का हल्दी से पत्र के किनारे से विशाख बनाना यह सब शुभ कार्य के निमन्त्रण अर्थ चले आ रहे हैं। और इनके चलने में एक सौष्ठव है। इसकी सबसे बड़ी उपपत्ति खोजें कि हल्दी इसका प्रतीक, उसका प्रतीक-सबसे बड़ी इसकी उपपत्ति कि इसमें एक सौष्ठव है। अपने आप कुछ सुन्दर लगता है और हमारी संस्कृति में जो चीजें सुन्दर लगती हैं उनका अर्थ जरूर है। उसके अर्थ में जाने की जरूरत नहीं, अपने आप ही वह सुन्दर है। कमल फूल अपने आप सुन्दर है, उसकी टीका करें या उसके ऊपर भाष्य न करें। जब एक विवाह के गीत में मंगलाकांक्षा होती है तो उसकी मंगलाकांक्षा में यही होता है कि —

अमवा के नाई बाबू कउरऽ महुअवा कुचलागा।

पुरइन पात अस पसऽ कँवलदल विहंसऽ॥

हे वर! आम के तरह से मंजरित हो, महुए के फूल की तरह से द्रवित हो, पुरइन के पत्ते की तरह से फलों और कमल के दल की तरह से विकसो। यह तो रहे आशीर्वाद। तो जो कुछ भी सौष्ठव दिखाई पड़ता है अनेक रूपों में, उसी का सब आशीर्वाद है। आम के तरह से मंजरित होना अर्थात् समूह के रूप में मंजरित होना। अकेले नहीं मंजरित होना। अकेला फूल नहीं होता है। फूलों का पूरा-का-पूरा झाड़ होता है। महुए के रूप में चूना का क्या अर्थ होता है-पूरी आकांक्षा को टेना और नीचे गिरते ही कहीं जमीन कड़ी हुई तो बिलकुल रस बन जाना। अब पुरइन याने कमल के पत्ते के तरह से फैलने का अर्थ होता है असंपृक्त भी रहना और जल में लहराना भी ऐसा जीवन है मंगलमय और कमल के दल के तरह से विकसना। एक-एक दल अलग-अलग हो जाये और एक बना रहे। ऐसे मंगल का आशीर्वाद है। (तो) जो कुछ ऐन्द्रिय संसार में दिखायी पड़ रहा है, अनुभव किया जा रहा है उसको समेटे हुए आपको उसके साथ जोड़ा जा रहा है। (अब यह आशीर्वाद एक और वैदिक आशीर्वाद देखें तो परस्पर तुलनीय है। मैंने जो कहा है प्रतिज्ञा में कि) जब लोक में ऐसी मंगलाकांक्षा होती है तो उसका प्रभाव शास्त्र के ऊपर पड़ता है। पश्चिम में लोगों ने जो अवधारणा दी है रेनफ्रील्ड जैसे लोगों ने,

जहाँ से सोशयोलॉजी शुरू हुई है कि पहले आदिम समाज था, ऐसा था, वैसा था और उसके बाद धीरे-धीरे कृषि समाज हुआ, दो-चार समाज हुआ। उसके बाद नगर हुआ, नगर के बाद महानगर हुआ, इत्यादि और एक संकीर्णता का विस्तार हुआ। सब एक दूसरे से अलग थे। (माने ऐसा कुछ है ही नहीं। माने हम यह मानने को तैयार नहीं हो सके कि) हमारे यहाँ सबसे पुराना जो समाज है उसके बारे में कुछ-न-कुछ ब्यौरा है। वैदिक वाङ्मय में या उसके बाद के बौद्धिक वाङ्मय में। उसमें लगता ही नहीं कि समाज शहर व नगर में ऊँच-नीच को देखता हो। नगर-और गाँव और वन में कोई ऊँच-नीच देखता हो। सबको एक में जुड़ा हुआ देखता है। और गाँव कहीं औछा नहीं है, वन में रहना कोई ओछा नहीं है, वन में रहने के लिए गाँव का, शहर का आदमी एक अवस्था में जाता है। जानता है कि वन एक आकांक्षा की पूर्ति करता है जो गाँव या शहर नहीं करते। एक दूसरे के साथ यह जुड़ाव इतना महत्वपूर्ण रहा है कि हम कल्पना नहीं कर सकते है कि एक संस्कृत समाज है। पश्चिमी लोगों में यह भेद उक्ति डली है और यहाँ प्राकृत समाज है। कालिदास ने पार्वती के विवाह का वर्णन किया। वैसे सारे संस्कृत के कवियों ने प्राकृत और संस्कृत को साथ-साथ चलाया है। वैसे प्राकृत का व्यवहार तो रानियाँ करती हैं, नौकर चाकर भी करते हैं और विदूषक करता है पर कोई राजा नहीं करता। तो संस्कृत और प्राकृत ओछी हो गई। ऐसी बुद्धि उन लोगों के मन में नहीं है। जो काम प्राकृत से होगा वह संस्कृत से नहीं होगा। और उपपत्ति भी कि आदमी को जब प्यास लगेगी तो उसे नये घड़े में रखा हुआ जल और केवड़े से वासित जल से जो तृप्ति मिलेगी वह किसी मिठाई से, किसी शर्बत से नहीं मिलेगी। (तो दिया कि माने जगह है उसकी, वहाँ उसी का उपयोग होगा) इसीलिए उन्होंने जब वर शिव और वधू पार्वती के लिए मंगल गीत गाये तो यह कहा-

*द्विधा प्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिभुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं वधूं सुखग्राम्भीव बन्धेन॥*

अपने को दो हिस्सों में सरस्वती ने बाँटा। (अपने दो हिस्से किये) अपने संस्कार-भूत हिस्से से शिव की स्तुति की और सुख निबन्धन वाणी से, आसानी से समझ में आ जाये ऐसी वाणी से पार्वती की स्तुति की। अब कहिये पार्वती बड़ी हैं शिव छोटे हैं या शिव बड़े हैं पार्वती छोटी हैं- सोचना ही बेकार है। एक कोमलता के पक्ष में जाना है तो प्राकृत का उपयोग है। एक विशेष प्रकार के अनुशासन के पक्ष में जाना है तो संस्कृत का उपयोग है। आवश्यक दोनों हैं ये बराबर चलता रहा है। बाद की संस्कृत कविता ने प्राकृत कविता से बहुत कुछ लिया है। और वहीं पर प्राकृत प्रबन्ध रचना ने

संस्कृत से लिया है यह पाली वाङ्मय में भी हुआ है, प्राकृत वाङ्मय में भी हुआ है। इस स्तर पर हुआ कि उसके बाद जो जनभाषा विकसित हुई उसमें भी वह आगे चला है। यदि 'पार्वती मंगल', 'रामलला नहछू', 'जानकी मंगल' काव्य तुलसीदास लिखते हैं तो कहीं कोई माँग है जिसके नाते उसी छन्द में, उसी लोक प्रचलित धुन वाले छन्द में इनकी रचना करते हैं और उसी प्रकार की संस्कार विधि का वर्णन करते हुए इनकी रचना करते हैं। और यह भी देखने में आता है कि आप ऐसे अनेक आख्यान पायेंगे जो पुराणों में आये हुए मिथकों को पल्लवित और कुछ नया अर्थ भी देते हैं। बहुत गहरा अर्थ देते हैं। वह कहीं लिखित साहित्य में नहीं है, लेकिन वाचिक साहित्य में है। इतना सूक्ष्म अर्थ देने का प्रयत्न हुआ कि कैकेयी ने राम से कहा कि बेटा, तुमने मेरा अनुताप हरा लेकिन मेरी अभिलाषा तभी पूरी होगी जब तुम मेरी कोख में आ जाओ।.....

इसलिए तुम्हारी कोख में आऊँगा लेकिन माँ होने का जो सौभाग्य है वह तुम्हें नहीं मिलेगा। तुम्हारा दूध में नहीं पीऊँगा और वह देवकी के गर्भ में आते हैं और देवकी कैकेयी है। अब यह रामकथा की, कृष्ण-कथा में पूर्ति है। बहुत ही सूक्ष्म है। जहाँ पर गर्भ का सिद्धांत भी, फल मिलता है और जहाँ एक करुण का भी सिद्धांत है। दोनों चीजें साथ-साथ होती हैं। देवकी को सौभाग्य मिलता है कि कृष्ण की माँ बनेगी। लेकिन कैकेयी को सौभाग्य मिलता है। कैकेयी ने जो किया उसकी निष्कृति भी उन्हें मिलती है। श्रीकृष्ण की माँ होकर जो बारह वर्ष तक तरसती है, लड़के का मुँह नहीं देख पाती। तो उसकी तरस में राम को जो उसने निर्वासन किया उसकी निष्कृति है। यह लोक-कथा कह रही है, लोकगीत में भी है, लोककथा में भी है। अवध की लोक-कथा में भी है, अवध के लोक गीत में भी है। तो यह कार्य शास्त्र की पूर्ति का है। रामकथा को पल्लवित करने का यह व्यापार निरंतर चला है उससे अर्थ निकालना चाहिए कि परम्परा को जीवित रखा है लोक ने और जब परम्परा माँग करती है कि हमें तुम ही से लेना है कुछ और हमें कहीं मिलने वाला नहीं है तो लोक उच्छलित होता है। लोक में उछाल आता है। परम्परा को हमारी माँग है। (कहीं और नहीं मिल रहा है। सूत्र नहीं मिल रहा है।) हमसे सूत्र मिलेगा और ऐसे अवसर आये हैं जबकि सूत्र कहीं नहीं रहा है। केवल वहीं रहा है तो आज उसको समझने की आवश्यकता है। कपिल जी ने कहा कि वाचिक परम्परा ही मुख्य परम्परा है। मैं तो यही कहूँगा कि वाक् ही परम्परा रही है, हमारी परम्परा ही वाक् है और कुछ है ही नहीं। वाक् माने बोली जाने वाली भाषा, माने जिसमें संवाद होता रहा है। जिसमें मैं और तुम बने रहे हैं। जिसमें वह नहीं है तो मैं हूँ

या तुम हो यह भाव बना रहा है। तो वह वाचिक परंपरा जिसमें संवाद की निरन्तरता है। जिस संवाद की चर्चा सामानस्य में, ऋग्वेद में है:-

1. *संगच्छत्वं संवदध्वं उं वो मना सि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वं संजानाना उपासते॥*
2. *समानी व आकृतिः समाना रूदयानि वः।
समान मस्तु वो मनोयेवः मुसहासति॥*

कि आपस में बात करेंगे तो हम जानेंगे कि हमारा यह हिस्सा है, तुम्हारा यह हिस्सा है। और अपने हिस्से को लेने में सुख पायेंगे तथा दूसरे के हिस्से को देने में सुख पायेंगे। यह संवाद से ही संभव होता है। अलग राह कर लेने से नहीं होता है। तो उस वाचिक परम्परा के पास परम्परा जाती है। वाक् के पास परम्परा जाती है। अनेक आख्यान है पुराने-नये कि उसी शब्द के पास परंपरा जाती है कि हमें कुछ दो। हमें राह दिख नहीं रही है, तुम राह दो और इसीलिए तैत्तिरीय उपनिषद में सबसे पहले कहा गया कि तुम कोई बात नहीं समझ पाओ तो जिनके बारे में कोई विवाद नहीं है ऐसे पंडितों के पास जाओ, उनसे विचार विमर्श करो, जानो। मनुस्मृति में उससे आगे बात कही गयी है वह बात महत्वपूर्ण है। जब शास्त्र से तुम्हें मार्ग न मिल सके, गुरु से मार्ग न मिल सके, सदाचार से मार्ग न मिल सके- सच्चरित्र की राह है, इस पर चलो। कोई खतरा नहीं है। तो तुम्हें माँ से आज्ञा माँगनी चाहिए। माँ जो कहेगी वही धर्म है। माँ है क्या माँ का अर्थ है लोक। इसीलिए लोकमाता की उपासना बहुत पुरानी चली आ रही है। पुराने समय में अग्नि चयन में एक ईंट रखी जाती थी जिसका नाम था लोकभृणा। लोक से भरी हुई या लोक को भरने वाली। उसके भीतर कुछ खोखला रखा जाता था और उसमें कुछ डाला जाता था। माने कि लोक इसमें भरा रहा है और बाद में सारे आचार में आज भी वह प्रचलित है। आज भी लोक में लोकमाताओं की पूजा हो, विवाह हो, यज्ञोपवीत हो, जन्म हो, कुछ भी हो, लोकमाताओं की प्रतिमाएँ उकेरी जायें, कुछ गोबर से बनायी जाये या कागज पर बनायी जाये, उसकी पहले पूजा करेंगे। ये लोकमाताएँ हैं। तो वह जो लोक माता का एक विग्रह है वही माता है। वह जो कहती है वह लोकहित को, एक बहुत ही दूरगामी हित को ध्यान में रखकर कहती है। तात्कालिक हित को सामने नहीं रखती। दूरगामी हित को सामने रखती है कि इसका अकल्याण न हो। हमको आज्ञा देने की जब बात आयी है तब बहुत सोच समझ करके आज्ञा देनी चाहिए। जब मेरी आज्ञा पर ही सारा कार्य संचालन होगा तो उसके हित का ध्यान रखना चाहिए। माता से अधिक कोई हित का ध्यान नहीं रख सकता। गान्धारी ने दुर्योधन को कभी भी विजय का आशीर्वाद नहीं

दिया है। बराबर यही कहा कि 'यतो धर्मस्ततो जयः', जिधर धर्म है वहीं जय होगा। अब यह कहानी के कारण लोक में एक धर्म की अवधारणा है और जिसके कारण हिन्दू हो, मुसलमान हो, कोई भी हो, किसी-न-किसी के साथ यह जरूर कहेगा कि बाबू, मेरा धर्म यह नहीं कह रहा है। भले ही लोग उसका ईमान कह करके अपनी अलग सुरक्षा करें लेकिन मूल शब्द उसका यही है कि मेरा धर्म यह नहीं कबूल कर रहा है कि मैं मान लूँ। अर्थात् एक जो मनुष्य का सहज स्वभाव है वही उसका धर्म है। उसकी प्रकृति में जो मानवीयता है उसमें जो अन्तर्निहित है वही धर्म है (और उसका संज्ञान इतना लुप्त होता है- होता किसी में नहीं।) उसमें अवतीर्ण हो करके, उसमें अपने को समारोह करके आदमी जब सोचता है तो पाता है बात तो यही ठीक है। करता न हो, लेकिन सोचता है। उससे गलती होती है। विचलन भी होता है लेकिन सोचता यही है कि यह लोकहित का काम नहीं हुआ। उसका ध्यान हमने नहीं रखा। इसलिए परंपरा आँचल पसार करके लोक के पास जाती है कि दिशा निर्देश तुम दो। यह होता आया है। जब तक होता आया है, तब तक उन्हीं वाचिक परम्पराओं के कारण लोक से मिली हुई वाचिक परम्पराओं के कारण पुराण बनते रहे हैं। कहानी के माध्यम से संस्कृति के अर्थ का सम्प्रेषण करते रहे हैं। और एक समय आया उन्नीसवीं शताब्दी में जब पुराणों को खारिज किया गया। कहा गया इसमें गप है, झूठ है, व्यर्थ की कथा है। जो कल्पना की भाषा नहीं जानते थे, जो उपमा और रूपक का सौन्दर्य नहीं जानते थे उन्होंने खारिज कर दिया और यह भूल गये कि जब तक कल्पना के साथ आदमी सारे ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध नहीं स्थापित करता है, तब तक वह सरस नहीं हो सकता। वह उसके बिना सूखने लगेगा और यह सूखा हुआ है बीसवीं शताब्दी में पढ़ा लिखा आदमी जीवन का रस क्या है इसे जानता ही नहीं। रस की बात करता है कि हाँ, जीवन से रस मिलेगा। यह भी शुरूआत हुई कि गाँव की ओर चलो (इस रूप में रस लेने की बात हुई। एक भोग्य वस्तु के रस लेने की बात हुई) जीवन का स्रोत ग्रहण करने के रूप में नहीं हुई। भोग्य वस्तु के रूप में क्या मजा है वहाँ। बाजरे की रोटी में क्या स्वाद है। विशेष प्रकार से बनी घी में क्या महक है- इसका मजा लो। बाजरे की रोटी जिस परिश्रम से, जिस कौशल से बनती है उसमें कोई रुचि नहीं है और वह नहीं हो तो बाजरे की रोटी में स्वाद ही नहीं होगा। उसमें कोई रुचि नहीं है। उससे क्या बना है, क्या तैयार हुआ है उसमें रुचि है। भोग में रुचि है और अपने को देकर, अपने को उसमें सम्मिलित करके जो कुछ तैयार हो, उसके साथ आत्मीयता हो उसमें रुचि नहीं है। तो लोक के साथ हमारा जो सम्बन्ध है वह भोक्ता का सम्बन्ध आज हो गया है। और जो संग्रह वृत्ति है कि इसका संरक्षण

होना चाहिए, उसका संग्रह होना चाहिए उसमें कितनी बड़ी खोट है। यह हमारी संपदा है। संपदा तो है पर उस अर्थ में संपदा नहीं है कि आप उसके उपभोक्ता हों। वह संपदा इस रूप में है कि आपकी थाती है। आप कह सकते हैं कि हमारे पास यह थाती है, उपभोग की वस्तु नहीं है। आपके गर्व की वस्तु है, उसके साथ जुड़ करके एक विशेष प्रकार के गौरव की वस्तु है कि हमारे पास कुछ है जो दूसरे के पास नहीं है। शायद इस रूप में नहीं है। यहाँ असंख्य धुने हों और एक-एक प्रकृति के कारण बदली हुई ध्वनि हों। मन की विशेष प्रकार की बदली हुई धुन हो, विषाद की धुन हो, उल्लास की ध्वनि अलग हो और उपहास की ध्वनि अलग हो। बादल के साथ दूसरी ध्वनि हो, वसंत के साथ दूसरी ध्वनि हो। यह जहाँ होता है, जहाँ यह वैविध्य हो वहाँ खो जाने की बात नहीं है। यह भीतर तक ग्रहण करने की बात है और मुझे, गाँव में जन्मा हूँ जरूर, इस प्रकार के दोहन से बहुत क्लेश होता है। मुझे यह नहीं लगता है कि गाँव में हमारे गीत रिकार्ड हो रहा है और उसका यह उपयोग होगा, वह उपयोग होगा, कैसे बनेगा, बिकेगा। मैं तो सिर्फ यह चाहता हूँ आज भी शादी में वह गीत गाये जायें जो एक आरोपित बाजारू अपसंस्कृति छा गयी है उसकी जगह पर एक सौष्ठव हो। जो हमें पूर्व से प्राप्त है उसका उपयोग हो। वह रक्षा करने के लिए नहीं है, उसे आगे बढ़ाने के लिए है। उसको जीवन में अनुप्रवेश कराने के लिए है। जीवन का अंग बनाने के लिए है। वह जीवन से अलग नहीं है। मधुबनी का चित्र हम अपने कमरे में टाँग दें। मधुबनी के चित्र की यह शोभा नहीं है। मधुबनी का चित्र विवाह के समय लगायें। लगायें ही नहीं, नये अंकन करें उसके आधार पर उसकी शोभा है। वह क्रिया को जन्म दे और जीवन के उस क्षण के साथ जिसके लिए बनी है, उसके साथ उसका तादात्म्य हो यह वाँछनीय है। और उन चीजों को जैसे सुन्दर पुष्प को या पल्लव को तोड़कर के अपने कमरे में रखें या अपने फूलदान में रखें- यह शोभा नहीं है। जहाँ है वहीं उसकी शोभा रहे, उसका अवसर दें। लोग देखें, आप देखें और जितनी देर आप देखें आपको लगे कि जिसमें आपने पानी दिया, आपने जिसे लू से बचाया, आपने दिन रात जिसकी सेवा की उसमें फूल आ गये हैं। उस नये फूल के आने में जो उल्लास है, प्रकृति में तो अपने आप फूल आयेंगे। लेकिन जहाँ हमारा सहयोग है। प्रकृति के साथ हमारी भी कुछ साझेदारी है। अगर साझेदारी की भावना नहीं विकसित होती है तो उस फूल से जो विकिरण होता है वह नकारात्मक होता है और जब साझेदारी होती है तो हमारी चित्तवृत्ति को कुछ-न-कुछ देता है, उसमें कोमलता लाता है, उसमें कुछ सकारात्मक वृत्तियों को जन्म देता है और यही नहीं, जिन भी लोगों ने शोध से जाना है वनस्पति विज्ञान के (लोगों ने)

उसे हमारे पुराने लोगों ने एक अन्तः प्रज्ञा से जाना था कि रात में अगर पत्ती तोड़ोगे, फूल तोड़ोगे तो अनुचित करोगे। उस समय पेड़ सोया हुआ है। उसकी नींद में खलल नहीं डालनी चाहिए। तो हमारी अंतःप्रज्ञा में कहीं यह है कि उसके जीवन के साथ हमारे जीवन तत्वों का कोई सम्बन्ध है। (और यहीं पर अगर आप जिस ना समझदारी से प्रदूषण की समस्याएँ पैदा की हैं और आप भी सोचेंगे कि अच्छा, हमें अब क्या करना चाहिए। क्या कहीं कोई सूत्र है। वेदों में कुछ है। लिखाये जा रहे हैं कि) वेदों में पर्यावरण, शास्त्रों में पर्यावरण और सीधे जीवन से जुड़ी हुई पर्यावरण की सृष्टि है। उसकी ओर लोगों का ध्यान नहीं जाता। उसकी ओर जाये तो सहज बात पता चल जायेगी कि गाँव के लोगों के मन में या जंगल में रहने वालों के मन में जिसके लिए जंगल एक भयावह वस्तु नहीं है, जंगल (अत्यन्त उसी) अरण्यायी की तरह एक सुन्दर समुदाय है, ऐसे पेड़ों का जो आदमी के साथ आदमी के हाथ से रचे जाते हैं। जो आदमी के लिए हैं और आदमी उनके लिए है। पेड़ों के साथ उन आदमियों का जो रिश्ता है वह रिश्ता आज हमने तोड़ दिया है। पेड़ अब बाजार के अंग बन गये हैं। उनकी जो निर्मम कटाई हुई है वह उस प्रज्ञा के विरुद्ध है जो लोगों के अन्दर मौजूद रही है। वह उन गीतों में मौजूद रही है जो गीत कहते हैं:-

*निमियाँ के पेड़ जनि काट निमियाँ चिरइया बसेर
उड़ जइहँ चिरइया निमियाँ रहि जाई अकेलि।
बिटिया जइहँ ... सासुर
रहि जइहँ मइया अकेलि
बिटिया के जनि दुख देहु।
बिटिया चिरइया की नाई।*

नीम का पेड़ मत काटो, नीम के पेड़ पर चिड़िया बसती है। नीम कट जायेगी तो चिड़ियाँ उड़ जायेंगी। बेटियों को दुःख मत दो क्योंकि बेटियाँ चली जायेंगी तो माँ अकेली रह जायेगी। इन बिम्बों के द्वारा जो लोक में एक विशेष प्रकार के सामरस्य की स्थिति लाई गई है वहाँ से क्यों नहीं माँगते हैं आप। वहाँ से माँगे, तब आपको शास्त्र में भी मिलेगा और शास्त्र में ढूँढ़ने चलते हैं एक भावहीन ढंग से। कुछ शोध करने चलते हैं तो आपको शास्त्र में कुछ नहीं मिलेगा। एक दो उदाहरण दे करके आप अपने को पंडित साबित कर लेंगे लेकिन भीतर से नहीं कुछ मिलेगा। भीतर से मिलेगा तो आपको अनुभव में जो आज भी है इसके लिए आज भी कहीं संवेदना को व्यक्त करने वाले शब्द हैं। उन शब्दों में मिलेगा। उन शब्दों में मिलेगा। जहाँ गंगा के प्रति भाव है कि बाँझ स्त्री को कहीं कोई शरण

नहीं देता। गंगा में डूबने चलती है तो गंगा कहती है, नहीं-नहीं, तुम मेरी बेटी हो। मैं तुम्हारी संतति बनूँगी। तो गंगा में एक सर्जनात्मकता है, एक आगे सन्तान को बढ़ाने की क्षमता है और पुत्र की कामना वाली स्त्री के साथ इतनी गहरी आत्मीयता का सम्बन्ध है। एक आकांक्षा की पूर्ति लहरों से होती है तो इस लहर में, इस आकांक्षा में और खास करके अपमान में जलने वाली आकांक्षा में एक ही रिश्ता है। ये सब रिश्ते मिलेंगे कहाँ। हम लोग समाज वैज्ञानिक अध्ययन तो करते हैं लोक का कि ये ऐसा समाज है, अभिशोषित समाज है, शोषित समाज है लेकिन उस शोषित समाज का कोई भी हमारे मन में चित्र नहीं आता। हम तो मनुष्य में ही केन्द्रित हैं लेकिन जो नहीं शोषित है, पर्वत शोषित है, वन शोषित है, चिड़िया शोषित है। उनके बारे में नहीं सोचते हैं। वे भी तो शोषित समाज हैं लेकिन आपका समाज तो केवल मनुष्यों का समाज है। हमारा लोक मनुष्यों का समाज नहीं है। जो कुछ इन्द्रिय गोचर है सबका एक रिश्ता है। केवल समुदाय नहीं है, भीड़ नहीं है। एक रिश्ता है। जोड़ नहीं है। घटाना नहीं है। एक दूसरे में गुँथना है। यह गुँथने का भाव आज समझना है। बिना उसको समझे आप समस्या का समाधान करना चाहें, नहीं कर पायेंगे। क्योंकि आपकी जो एक भोक्ता की काली नजर है, वह सबको जला डालेगी। आपके मन में वह भाव है ही नहीं कि हमारे पुराने साथी है। मुझे एक कविता बहुत पहले पढ़ने को मिली थी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की। उसमें उतना पहले कभी किसी ने पर्यावरण के बारे में सोचा नहीं था। कहा कि जो तुम पेड़ों को काटते चले जा रहे हो अपने सुख के लिए, तुम प्रेत की तरह पृथ्वी पर विचरोगे, अकेले रह जाओगे और चित्रकूट के प्रसंग में उन्होंने एक कविता लिखी है। उसमें उन्होंने कहा कि चित्रकूट का काँटा भी हमारा अपना सगा लगता है। हमें लगता है कि यह काँटा उस काँटे का वंशज है जो सीता के पैरों में चुभा था और वहाँ उन्होंने अपने हाथ से निकाला था। एक काँटे के साथ इतना सगापन है। जो कुछ भी है सबमें हम कहीं हैं और वे सब हमारे भीतर हैं। यह दृष्टि जो काम कर सकती है वह एक बुद्धिवादी दृष्टि नहीं कर सकती है। लोक बुद्धि का खण्डन नहीं है, बुद्धि का परिमार्जन है। और यही काम करता है। ऐसा बुद्धि का परिमार्जन करने वाला लोक ही शास्त्र को नये अर्थ देता है, शास्त्र में नया कुछ जोड़ता है। दर्शन में इस दृष्टि से विकास हुआ है। मैं तो समझता हूँ कि भक्ति दर्शन जो पूरा-का-पूरा विकसित हुआ है वह लोक-चेतना से विकसित हुआ है। केवल लोक-भाषा से हुआ यह बात नहीं है। लोक-चेतना से विकसित हुआ है और ऐसी लोक चेतना जिसमें सभी-के-सभी कहीं सीता के साथ सहभागी हैं, कहीं राम के साथ सहभागी हैं। किसी-न-किसी से आप सहभागी हैं। तो दृष्टि

लोक की ही दृष्टि है। उसी दृष्टि से कालिदास का काव्य इतना बाहर से सीधा-सादा दिखता हुआ इतने गहरे रिश्तों का अनुभावक हो जाता है। इतने गहरे रिश्ते कि वहाँ शकुन्तला का चित्र अकेले शकुन्तला से नहीं होता। जो उसका सहज वातावरण है, ओढ़ाये जाने वाले वलकल एक दूर पहाड़ की रेखा, एक बाँकी-सी नदी की धार, यह सब उसके अंग है। और वह विश्वास भी अंग है। जो गहरा विश्वास एक मृगी को है कि मृग सींग से हमारी आँख खुजलायेगा तो उससे हमारी कोई क्षति नहीं होगी। सुख ही मिलेगा। (इसके बिना तो नहीं है,) प्रकृति के आवरण के बिना तो नहीं है। वह सम्मत उनको ज्ञान है। और वह सम्मत चाहे तुलसीदास हों, कबीरदास हों, सूरदास हों सबको ज्ञान है। अभी मुझे कुछ कबीर को पढ़ने का मौका मिला तो मैंने देखा कि कहीं आत्म जीवन की बात हुई, पीसने वाली औरत है, कहीं वह मक्खन निकालने वाली औरत है, चरखा चलाने वाली औरत है और ये सारे व्यापार अपने आप में बड़े लौकिक व्यापार होते हुए भी गहरे आध्यात्मिक व्यापार हैं। इसलिए गहरे आध्यात्मिक व्यापार हैं कि एक-एक चीज एक दूसरी चीज से जुड़ी हुई है। एक मक्खन दूसरे सार तत्व से जुड़ा हुआ है। एक सूत दूसरे सूत से जुड़ा हुआ है और जो भी दही जमाया जा रहा है वह भी एक चित्त का ही विवरण है। इनमें आपस में कोई रिश्ता है। इसलिए यह लोक की ही दृष्टि है जो अनुभव साक्षात् होते हैं उसी में अध्यात्म को जोड़ देती है। अध्यात्म कोई अलग चीज नहीं है। जो हमारा सहज रूप है, सहज व्यापार है वही अध्यात्म है। तो सहज व्यापार रिश्तों को स्वीकारना है, रिश्तों में चलना है, रिश्तों को निभाना है। और यह अनुस्यूतभाव जब छोटे से घर में होता है, छोटे से परिवार में होता है, गाँव में होता है, जनपद में होता है, समस्त पार्थिव लोक में होता है, ब्रह्माण्ड में होता है। इतना धीरे-धीरे विस्तृत होता है और उन्हीं रिश्तों में बात लोक साहित्य करता है। यहाँ लोक कथाओं में निराला मामा हो जाता है, हीरामन सुग्गा के बिना तो कोई सन्देश जाता ही नहीं। जहाँ साँप भी सहायता करता है, अपने आप कुछ रास्ता बनाता है। जहाँ चिड़ियाँ संकेत देती हैं। ये सब तो अपने हैं। अपने परिवार के अंग है। तो मैं आज की दृष्टि से बतला रहा हूँ, समकालीन साहित्य की दृष्टि से नहीं। समकालीन मनुष्य की अपेक्षा की दृष्टि से कह रहा हूँ कि इस अपेक्षा की पूर्ति आज भी भारत का लोक साहित्य कर सकता है और उसकी रक्षा की बात न सोचिये। छोड़ दीजिये उसको अपने भाग्य पर। पर उससे उसके सहारे आप अपने जीवन के आगे की बात सोचिये। उसकी रक्षा करने वाले आप कोई नहीं हैं और उसको आप टेप में भर करके उसकी रक्षा नहीं कर पायेंगे। जीवन से अलग करके उसकी रक्षा नहीं कर पायेंगे। आप शुरूआत कीजिये।

थोड़ी सी शुरूआत कीजिये कि कैसे वह आपके जीवन का अंग बने। कैसे आप जीवन के उस स्रोत से कुछ लेने वाले बनें। तो अगर लेने वाले बनेंगे तो दूसरा कुछ घटित होगा। दूसरे प्रकार से घटित होता है। मैं संस्कृत पढ़ने वाले परिवार में पैदा हुआ। लेकिन हिन्दी का लेखक कभी नहीं बनता, यदि मेरी माँ का स्वर ललित नहीं होता और यदि वह लोकनिधि न होती। असंख्य गीत उनको याद थे। लोकाचार समझने के लिए तीन-चार गाँव की औरतें उनके पास आती थीं कि दीदी, क्या करें। दीदी, क्या करें और इतना ललित कंठ कि उसके साथ कोई जल्दी साथ नहीं दे पाता था।

मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैं कहीं दूसरी जगह जा रहा हूँ। उन गीतों के स्वर में इतनी मोहकता और उसके साथ-साथ उसके अर्थ सोचते समय ऐसा लगता था कि क्या होगी कविता इसके आगे, पानी भरेगी कविता। इन पंक्तियों में बिल्कुल पानी भरेगी। ऐसे-ऐसे प्रतीक विधान, ऐसे-ऐसे बिम्ब और जीवन के ऐसे-ऐसे चित्र:-

*काहे बिन सून अंगनवाँ ए बाबा काहे बिन सून लखराँव
काहे बिन सून दुअरवा ए बाबा काहे बिनु सून पोखरा तोहार
बेटी बिन सून अंगनवा ए बेटी, कोइलरि बिनि सून लखराँव
बेटा बिन सून दुअरवा ए बाबा हंसा बिनु पोखरा नोहार।*

(किसके बिना आँगन सूना हो जाता है,) बेटी के बिना आँगन सूना हो जाता है और कोयल के बिना लाख-लाख आमवाला बगीचा सूना हो जाता है। यह जो एक उल्लास का रूप है, बेटी आँगन में खेलती है, गाती है, नाचती है, मचलती है, रोती है, मनाती है, मनती है और चली जाती है तो जीवन का इतना व्यापार, जीवन का अभिप्राय चला जाता है। और बस यह कह सकते हैं कि केवल सुनें और आँखों से केवल आँसू झरे और क्या होगा उसके आगे मंगल का विधान, चित्त का ऐसा परिमार्जन कहाँ होगा। तो मैं लिखने लगा। मैं तो ऋणी हूँ उसी का। उसी ने मुझसे लिखाया है। एक-एक व्यापार ने लिखाया है। जहाँ से मैंने देखा कि कुम्हार कैसे बर्तन बनाता है। घंटों देखा है। घर के पास भी कुम्हार था, वह बताता चलता था। बढ़ई कैसे चिड़िया बनाता है, कैसे छोटे-मोटे खिलौने बनाता है। तो मुझे समझ में आता था कि यह जो बनाने का व्यापार है, इसके साथ जो जुड़ी हुई कथाएँ हैं, अनेक कहानियाँ हैं वही तो जीवन का सौन्दर्य है और उस सौन्दर्य से वंचित हो जाएं तो क्या रखा रहेगा। (तो) मुझे कोई मोह शक्ति नहीं है। गाँव में कि मैं जानता हूँ वहाँ लोगों में संस्कृति नाम की कोई चिड़िया नहीं है। जो कुछ है वह ऐसे-ऐसे गीत हाहाकार के रूप में गाये जाते हैं। वहाँ बहुत-सी चीजें पहुँच गयी हैं।

बहुत सी लालसाएँ, विनाशकारी लालसाएँ पहुँच गई हैं लेकिन क्या गाँव मर गया है। तो मैं भी तीन साल पहले गाँव गया। अभी-अभी हाल में भी गया। मेरे संगी साथी सब चले गये। उनके बच्चे बड़े हो गये हैं हम आपको देखने आ गये। काका, चाचा जो भी हैं और जो कहता हो, और तमाम जातियों के बच्चे। उस जगह यह अनुभव नहीं हुआ कि जाति विद्वेष है गाँव में। विषाद यह हुआ कि ये लोग कहाँ थे, कहाँ थे और वहाँ से आ गये मिलने के लिए और जिस रूप में मेरा नाम प्रसिद्ध था, उसी रूप में आये यह कहाँ से शक्ति आयी। कहीं तो है जरूर ना। (तो) मैं तो विश्वास करता हूँ कि वह सब कुछ है, कुछ दिनों तक सोया है। हम उनसे लेने की विनम्रता लेकर जायें। जैसे मैंने देखा कि कपिल जी ने कुछ काम किया, स्वामीनाथन ने ऐसा काम किया था कि वह सोचे कि उनको देने वाले नहीं है कोई आपको वह देने वाले हैं। केवल ज्ञान ही नहीं देने वाले हैं, जीवन की विधि देने वाले हैं। वह जीवन की विधि नहीं रहती तो जिसे आप कहते हैं सहने की इतनी शक्ति किसी संसार के देश में नहीं है जैसी हमारे देश में है। विपत्ति सहने की शक्ति और जो कुछ हो रहा है उसके बारे में टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं, उसको झेलने की शक्ति और उसके बाद यह सोचने की शक्ति कि ऐसा रहेगा नहीं, कुछ न कुछ होगा। यह जो विश्वास उसके मन में है, छोटी चीज नहीं है बहुत सी विसंगतियाँ हैं। हमने नष्ट करने के जितने उपाय थे, सब कर लिये हैं। कुछ बाकी नहीं छोड़ा है। लेकिन तब भी कोई प्राण पिंजड़े के भीतर पड़ा छटपटा रहा है। उस प्राण की पहचान हमको होनी चाहिए और तब संस्कृति की चर्चा करनी चाहिए। बिना उसके जो संस्कृति की चर्चा होती है अर्थहीन शाब्दिक चर्चा होती है। सब विनाश होता है। संस्कृति को मूर्तिमान रूप में देखना हो, एक स्पन्दन के रूप में देखना हो तो वही देखना चाहिए। वहाँ अभी भी औरतें मिलेंगी जो एक सहज स्नेह से आज भी जुड़ी हुई हैं। वहाँ आज भी जरा-सी उनसे सुनना चाहें तो फूट पड़ेगी वाणी उनकी और आप सुनते चले जायेंगे। आज भी यह संभव है। अपनी घुअँठ रही बाती लेकिन आप जरा उकसा दीजिये उनकी किसी स्मृति को दीये में भर दीजिये तो असंख्य गीत सुनिये। मेरी बहन एकदम अपंग हो गई है। तो मैंने उनसे कहा कि तुम तो जा नहीं पाओगी अपने नातिन की जनेऊ में (तो) कैसे गीत गाओगी। कौन गीत गायेगी। वहाँ किसी को याद है नहीं। उसने कहा नहीं हम गीत गायेगे। और गाने लगी तो एकदम जरा भी शिथिल नहीं हुई। एकदम कमजोर है लेकिन कोई उसके साथ गा नहीं सका। क्योंकि गीत तो उमंग से निकलता है। रुपये पैसे से गीत नहीं निकलता है। उल्लास हो कि हमारे नाती का जनेऊ है, एक उल्लास हो कि एक हमारे घर में, हमारे परिवार में हमारी रिश्तेदारी में उत्सव

है। उत्सव का भाव इस संस्कृति में है नहीं, नाम है। उत्सव का भाव होता है छलकना। निचोड़-निचोड़ करके कुछ जो रस निकलता है। सवन का अर्थ होता है निचोड़ना। निचोड़-निचोड़ कर कुछ इकट्ठा होता है वह उछलता तब उत्सव बनता है। एक-एक बूँद जब इकट्ठी होती है और रखी जाती है कहीं और, अपने आप उसमें जब उभार आता है तो उत्सव होता है। एक-एक व्यक्ति के मन में उस उल्लास की साझेदारी होती है, वही उत्सव हो जाता है। एक आदमी उत्सव नहीं मना सकता। असंख्य आँखें जिसको देखने के लिए उमंगित हैं वे आँखें उत्सव मानती हैं और जिसके लिए उमंगित है वह व्यक्ति उत्सव हो जाता है। उस व्यक्ति को उत्सव-मूर्ति कहते हैं। श्रीकृष्ण वन से लौटते हैं तो आँखें जोह रही हैं उनको और धूल धूसर है लेकिन...

*उत्सवं श्रमस्चापि इशीगमुन्नयन् खुरस्रश्छुरितमुक्
दित्सयैति सुहदाशिव एव देवकी जठाम् सहसस्रम्।*

गायों की खुर के धूल से बिलकुल आपाद मस्तक सने हुए हैं लेकिन आँखों के उत्सव हो जाते हैं। उस उत्सव का भाव आज गायब है। आज एक प्रकार का जलसा 'सेलेब्रेशन' है।

'सेलेब्रेशन' का अभिमान है। एक सम्पन्नता का अश्लील प्रदर्शन है, यह सब कुछ है। लेकिन सब लोग जिसमें एक साथ उमंगित हों ऐसा कुछ नहीं है। यह संस्कृति पर बहुत बड़ी टीका है। उस संस्कृति को पहचानना चाहें, उसका मर्म पहचानना चाहें तो लोक-दृष्टि से जरा भी लेशमात्र भी अगर कहीं आप संश्लिष्ट हो जायें तो समझेंगे। मैंने इसीलिए कहा परम्परा से उच्छलित लोक और उसके बाद शास्त्र का उच्छलन। उसके बाद एकता के संगत रूप में व्यवस्था। लेकिन उच्छलन पहली शर्त है। अगर वह नहीं होगा तो यह नहीं होगा। और वह उच्छलन माँग करता है कि आप अपनी निजता छोड़ दें, निजता का आग्रह छोड़ दें। उसी प्रकार छोड़ दें जिसके कारण किसी के घर शादी होती है तो वह कहता है कि आप लोगों के अनुग्रह से शादी हो रही है। आप लोगों के आशीर्वाद से हो रही है। आपकी बिटिया है उसकी शादी हो रही है। यह भाव जो

है, माने हमारा उल्लास कितना भी हो जब तक सबका उल्लास उसमें नहीं जुड़ता उसका कोई अर्थ नहीं, उस निजता का समर्पण हो। तब यह जो सक्रियता होनी चाहिए संस्कृति में, वह सक्रियता आयेगी। मैं अंत में एक बात कहना चाहता हूँ।

मैं लोक संस्कृति का गुणगान करके उसका प्रचार नहीं करना चाहता हूँ। मैंने कहा जिसे न याद रहे, न याद रहे। लेकिन जिसने सुना है और उसके मन में गूँज मची है, उसकी यह दृष्टि साझेदारी की है। वह कभी भी यह विश्वास नहीं करेगा। मैं कभी भी अविश्वास नहीं करूँगा लोक संस्कृति में क्योंकि मैंने साझेदारी की है और उस साझेदारी को भाषा भी मैंने देने की कोशिश की है मैंने किसी मोहासक्ति-वश, किसी 'नॉस्टेज़िया' के कारण नहीं दी है। मैंने इसलिए दी है कि मैं जो कुछ हूँ उसके कारण हूँ। उसको छोड़ करके मैं कुछ नहीं हूँ। यह अनुभव करना चाहता हूँ।

आपके द्वारा मैं यह संज्ञान कराना चाहता हूँ कि कुछ होता है जो ऐसे ही हो जाता है। कहीं कुछ तैयारी बाहर की नहीं होती है। बाहर से कोई नहीं तैयार कराता है। कोई स्कूल नहीं है इसके लिए, कोई पाठशाला नहीं है इसके लिए। एक जीवन ही पाठशाला है और जीवन के लिए खुली आँखें उस पाठशाला के लिए बस्ता हैं। मैं इन्हीं शब्दों के साथ आपका हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ। (थोड़े से श्रोता आये, इसका मुझे बड़ा सुख है। कल 500 श्रोता आये थे। कल एक डिनर भी था उनके साथ, आज डिनर नहीं है पर आप इतने आये हो, आप कहीं अगर जरा भी दो पग मेरे साथ चल सकें हों तो मैं कृतार्थ हूँगा। उसी प्रकार जिस प्रकार कि) एक लोकगीत के अनुसार सीता को मनाने वशिष्ठ वाल्मीकि आश्रम जाते हैं तो कहें, 'बेटी तुम्हें आज्ञा देता हूँ, तुम चलो।' सीता कहती है कि गुरु महाराज, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। दो पग अयोध्या की ओर रखूँगी। लेकिन उस पुरुष का मुख नहीं देखूँगी जिसने मुझे गर्भ परिपक्व अवस्था में घर से बाहर निकाला है, और नहीं जाती है तो मैं चाहता हूँ कि आप लोग मेरी आज्ञा मानकर हृदय के साथ चलें केवल मेरे कहने से अयोध्या की ओर दो पग न रखें।

शब्द का संज्ञान

डॉ. कमलेशदत्त त्रिपाठी

(‘अर्थाक्षर शीर्षक व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिया गया व्याख्यान-सम्पादक)

यह अर्थ जो आर्ष अर्थ है, उस आर्ष अर्थ के लिए आर्ष शब्द का चिंतन करना भी आवश्यक है। इस व्याख्यानमाला का जो केन्द्रीय अर्थ तत्त्व है- वह स्वयं इस नामकरण से ही विदित हो जाता है। भवभूति ने उत्तर रामचरितम् के आरंभ में ही यह कहा है कि-

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराधानां वाचमर्थोऽनुधावति॥

सामान्य ऋषियों की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है। जैसा कुछ होता है, उसी को यथार्थ रूप में बोलते हैं। यथार्थ का अतिक्रमण नहीं करते, वे सामान्य ऋषि होते हैं। लेकिन कुछ ऐसे भी ऋषि होते हैं, जो आद्य ऋषि हैं। वे जो कुछ भी कहते हैं, वैसा ही अर्थ बन जाता है। यह आर्ष अर्थ है और उसके साथ सम्पृक्त आर्ष वाणी है। आर्ष शब्द है। उस आर्ष शब्द के संज्ञान का यह प्रश्न, कम से कम आज तो हमारे सामने बहुत जटिल प्रश्न हो गया है। चौमासा का पचासवाँ अंक मैंने देखा और उसमें तिवारी जी ने एक समग्र वाचिक संज्ञान की बात की है। उन्होंने गहरी चिन्ता व्यक्त की है कि किस तरह लगातार हमारा समकालीन परिदृश्य आत्मतुष्ट सा हो गया-अपनी सर्जनशीलता में और अधिक से अधिक कुछ शास्त्रीय रूपों को समझने में। दूसरी ओर जो समझते हैं कि समस्त राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शक्तियाँ। उनके हाथ में हैं, उनकी चिन्ता है कि उन लोगों को, जो उनकी दृष्टि में पिछड़े हैं, गरीब हैं, दमित हैं, उन्हें कैसे मुख्यधारा में ले आया जाये। तिवारी जी ने अपने सम्पादकीय में यह चिन्ता व्यक्त की है कि यह कौन तय करेगा, मुख्यधारा कौन सी है? यह मुख्यधारा का निर्धारण कहाँ से होगा? सच बात तो यह है कि इस पूरे भारतीय परिदृश्य को परिभाषित करने के लिए पिछले पचास वर्षों में कई रूपकों का इस्तेमाल हुआ है और एक रूपक ‘मोजायक’ का है। जैसे बहुत सारे खण्ड-खण्ड हैं और उनको सिल करके एक कन्था तैयार की गई है। भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य एक कन्था की तरह है और एक दूसरा रूपक है जो धारा का है। उसमें एक मुख्यधारा है और दूसरी आ करके मिलती हुई अनेकानेक धाराएँ हैं, पर इस मुख्यधारा को परिभाषित कौन करेगा? क्या यह मुख्यधारा आधुनिक विचारों की धारा है, आधुनिक

चिंतन की धारा है, आधुनिक सर्जनात्मकता की धारा है। अगर बहुत स्पष्ट रूप से कहें, तो कमोबेश आधुनिकता पश्चिमीकरण का पर्याय बन गई है। एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ बीस वर्ष पहले आया है। वह अब रहे नहीं। कुछ सप्ताह पहले ही उनका निधन हुआ है। जर्मन भाषा में वह ग्रन्थ था। 1990 में उसका अंग्रेजी में अनुवाद हुआ, 'इण्डिया एण्ड यूरोप'। इस ग्रन्थ में हाल्बफ्रास ने यह प्रश्न उठाया है कि पिछले दो हजार वर्षों में पश्चिम का...पूरे एशिया के प्रति और विशेषकर भारत के प्रति क्या दृष्टिकोण रहा है? सारे विवरण देने के बाद पिछले दो सौ वर्षों में पश्चिम का क्या रवैया-क्या नज़रिया रहा है-इसका हाल्बफ्रास ने अद्भुत विश्लेषण किया है और सप्रमाण उसे प्रस्तुत किया है। पुस्तक मोतीलाल बनारसीदास ने 1990 में प्रकाशित की है। उसपर कोई चर्चा मुझे तो अभी तक सुनाई नहीं पड़ी। लेकिन यह आँख खोल देने वाला ग्रन्थ है। हेगल ने जब विश्व की संस्कृतियों का आकलन शुरू किया तो उनका यह निष्कर्ष था कि संस्कृति एक ऐतिहासिक प्रक्रिया से गुजरने की स्थिति में होती है और संस्कृति का वह चरम सोपान केवल पश्चिम में ही और विशेष रूप से यूरोप में ही प्रकट हो सका, अभिव्यक्त हो सका। जिसे हम 'फिलॉसफी' कहते हैं जो विज्ञान है और जो 'टैक्नालॉजी' है-उसका भारतवर्ष में कभी किसी भी प्रकार से प्राकट्य नहीं हो सका। लगभग वही समय है, जब शॉपेन हावर जर्मनी में इस पर विचार करता है, उपनिषद् का अध्येता है और वो इससे बिल्कुल विपरीत बात कहता है। लेकिन आगे के लगभग एक सौ पचास साल के समय में हेगल की अवधारणा ही मुख्य अवधारणा के रूप में ग्रहण की जाती है और हमारे समकालीन चिन्तकों में, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण नाम भारतवर्ष में तो बहुत ही प्रचलित नाम है वह-हाइडेगर का, उनकी भी की लगभग यही निष्पत्ति होती है कि भारतवर्ष की अंतिम नियति पूरी तरह पश्चिमीकरण में है। हाइडेगर के अत्यंत निकट और सबसे गंभीर माने जाने वाले भारतीय विद्वान् जो कभी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में थे फिर जबलपुर में आये और फिर यहाँ से अमेरिका गये-जड़ाऊलाल मेहता। उनकी भी बात लगभग उसी तरह से है, यद्यपि उसकी भंगिमा दूसरी है, निष्पत्ति दूसरी है। लेकिन जड़ाऊ मेहता का भी यही कहना है कि एक बार तो भारतवर्ष को पश्चिमीकरण की उस पूरी प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा ताकि वह उसके पार चला जाये। उसे पार कर उसके, अतिक्रान्त कर सके। तो यह आधुनिकता क्या है? आधुनिकता क्या पूरी तरह से पश्चिमीकृत हो जाने में है और मुख्यधारा क्या यही है? क्या भारतवर्ष की नियति पूरी तरह से इस पश्चिमीकरण को स्वीकार कर लेने में है? और अब जो सन्दर्भ बदले हैं, उत्तर आधुनिक संदर्भ हैं उनसे तो यह बात और मुख हो करके

सामने आ रही है। कपिल जी ने इन सारे प्रश्नों की ओर संकेत किया है अपने सम्पादकीय में। जिस तरह से सूचना और मनोरंजन उद्योग के रूप में आ गया है, जिस बात को आज वैश्वीकरण का नाम दिया जाता है, जो विश्व बाजार को निर्मित करने के द्वारा सारी दुनिया को अपने उस उत्संग में ले लेना चाहता है, वह सब क्या अनिवार्य है? क्या उसका घटित होना सर्वथा अपरिहार्य है? क्या जो विचार एक के बाद एक विटगेन्स्टाइन के बाद सोस्यूर से होते हुए देरिदा को पार करते हुए भाषा के संबंध में जो विचार रखे गये हैं, और अब देरिदा के उत्तरवर्तीकाल में भाषा का जो चिंतन है क्या अनिवार्य रूप से वही परिणति है, जो भारतीय चिंतन की होने वाली है? और इस दृष्टि से ही हम उस मुख्यधारा का निर्णय करेंगे। कम से कम समकालीन रचनाधर्मिता है। यह दो विचार चल रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इस पर विचार नहीं किया जा रहा। हमारे सामने ऐसे विचारक बैठे हैं जो इसपर सोच रहे हैं। निर्मल जी ने इस पर अपनी तरह से बातें उठायीं हैं। अपनी तरह से रामविलास जी ने बातें उठायीं हैं और दूसरी तरफ से भी बातें उठ रही हैं। लेकिन यह गहरे आत्म-मंथन का समय है। हम जिस बिन्दु पर खड़े हैं और इस सन्दर्भ में जब हम उस शब्द के संज्ञान की बात करते हैं तो निश्चय ही हमें बहुत सावधानी के साथ शब्द के संज्ञान पर और उसके सम्पूर्ण भारतीय संदर्भ पर सोचना पड़ेगा। कपिल जी ने यह भी बात उठायी है कि जो इस प्रकार का सरोकार है-समकालीनता का, वह भी यह समझता है कि यह सारी की सारी धारा विशेष रूप से जो वाचिक परम्परा हमारी लोकवार्ता में, लोक साहित्य में, लोक कलाओं में, शिल्प में, जीवन में, विज्ञान में, चिन्तन में, जहाँ-जहाँ प्रतिफलित होती है उसको संरक्षित करने का एक उपक्रम होना चाहिए। लेकिन संरक्षित करने से जो खतरा सामने आता है, खड़ा होता है कि यदि संरक्षण का मतलब उसको जीवन की निरंतरता से काटकर एक रूढ़ि के रूप में अतीत की रूढ़ि के रूप में ही देखा जाना है, अपरिहार्य, अपरिवर्तनीय, 'इर्रिविर्सिबिल टाईम' की दृष्टि से उसको अब देख लेना है कि वह कहीं रखने की चीज़ है। उसे जहाँ है वहाँ से ले आ करके रख लो, नहीं तो वह खत्म होने वाला है। क्या इसी दृष्टि से उस सारे तत्व को देखना है या कुछ और भी वैकल्पिक दृष्टि उसके लिए हमारे पास है? हुआ यह है कि शब्द के साथ बात करते हुए वाचिक परम्परा के साथ हम अपना तालमेल बैठाते हैं। मौखिक परम्परा या वाचिक परम्परा और वाचिक परम्परा का समीकरण हम बोलियों में उस साहित्य के साथ करते हैं जो अभी तक लिखा नहीं गया है या अभी हाल में ही लिख लिया गया है। जिसका किसी तरह से 'डाक्युमेंटेशन' हो गया है। वह सारा का सारा साहित्य, वह सारा का सारा चिन्तन या वे सारे के सारे कलारूप अधिक से

अधिक संरक्षित किये जा सकते हैं ताकि सनद रहे और वक्त पर काम आये। क्या उस पूरी की पूरी परम्परा का हमारे जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है? यह विस्मय की बात है कि सन् चालीस के दशक में जिस पूरी की पूरी परम्परा के प्रति इस देश के प्रगतिशील आंदोलन का ध्यान गया था, जिसने अपनी तरह उसको पकड़ा। मेरा संकेत है 'इप्ता' की ओर। 'इप्ता' ने उसको पकड़ा और पकड़ के उसको पूरी सर्जनशीलता के साथ जोड़ा। वह केवल अकादेमिक ऊहापोह नहीं थी। अकादेमिक विश्लेषण का दौर नहीं था। वह था सम्पूर्ण रचनाशीलता में उसको ले आने का उपक्रम किया गया था और पचास के दशक में यह प्रयास और दृढ़ हुआ। सांस्कृतिक समूचे परिवेश में उस शक्ति को लेकर उसका विनियोग करने की बात। मैं उसको दोहन करना नहीं कहता। मैं उसके विनियोग की बात कहता हूँ। विनियोग का उपक्रम किया गया। उसमें समर्थ रचनाशील कलाकार आये, चिन्तक आये। अपनी तरह से उन्होंने उसको देखा। लेकिन कहाँ पर गलती हुई, जो यह भटकाव आया और धीरे-धीरे एक अपरिहार्य, अनिवार्य दुराव की बात जुड़ी गयी। सारे देश का वह परिदृश्य अब देखें-कहाँ लोकवार्ता पर बात हो रही है? कहाँ लोकवार्ता चिन्तन के केन्द्र में है? मध्यप्रदेश की बात यहीं पर विशिष्ट हो जाती है। 1958 के वे दिन मुझे याद हैं। मैं पढ़ रहा था, अभी-अभी पढ़ाई समाप्त हो रही थी और इलाहाबाद में बहुत विशाल एक सम्मेलन हुआ था। अखिल भारतीय लोक संस्कृति सम्मेलन उस लोक संस्कृति सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ. सम्पूर्णानंद करने के लिए आये थे और उसका उद्घाटन किया था डॉ. भूपेन्द्रनाथ दत्त ने। विवेकानंद जी के सबसे छोटे भाई और अपने समय के शीर्षस्थ नृत्यशास्त्री, वे आये थे इसका उद्घाटन करने के लिए। सारे देश से लोकवार्ता के विद्वान इसके साथ जुड़े हुए थे। उसमें देशभर से विद्वान आये थे। मणिपुर से जो मणिपुर के प्रकृष्टतम आचार्य थे, वे स्वयं आये थे। मुझे अच्छी तरह से याद है कि खोल लेकर जब उनका उपस्थापन, उनकी प्रस्तुति आरंभ हुई, साथ में दो और उनके शिष्य थे। उस समय भी उनकी वयस् मेरा ख्याल है कि साठ के ऊपर पहुँच गई थी। लेकिन अभी भी वह संचरण मुझे भूलता नहीं है। लगता है कि पैर पृथ्वी पर हैं ही नहीं। आकाश में ही वह संचरण हो रहा है खोल के साथ। असम से पूरे के पूरे बंगाल से बाउल गीतों के साथ, वहाँ के माँझी गीतों के साथ, सारा का सारा बंगाल उपस्थित था। सारा हिन्दी भाषी प्रदेश-बिहार से ले करके और सुदूर राजस्थान तक। पद्मश्री देवीलाल सामर्थ आये थे। उनकी उपस्थिति, उदयपुर का उनका अपना मंच आया था। पूरा गुजरात

उपस्थित था। मेघाणी जी ने जो कार्य किये थे। वह सबका सब उस समय स्मरण किया जा रहा था। गुजरात का वह कार्य। राँची में नृत्यशास्त्र का विभाग था, जहाँ लोकवार्ता पर कार्य होता था। कलकत्ता में हो रहा था। कलकत्ता के विद्वान आये थे और इस पूरे हिन्दी भाषी प्रदेश के और महाराष्ट्र से लेकर के इधर दक्षिण तक के भी लोग इसमें कुछ आये थे। इसके बाद वह कार्य कुछ दो-तीन-चार वर्षों तक हुआ। मुंबई में उसका अगला अधिवेशन हुआ, उज्जैन में अधिवेशन हुआ और इसके बाद कृष्णदेव उपाध्याय जी थे और वो सब की सब चीजें अतीत की हो गईं। विस्मृत हो गईं। फिर से इसी भोपाल में आदिवासी लोक कला परिषद् ने अपनी तरह से उस कार्य को शुरू किया और वह कार्य अभी तक चल रहा है। तो शब्द के संज्ञान का प्रश्न अगर यहाँ उठाया जाता है, तो यह बड़ा स्वाभाविक है और कहाँ उठाया जायेगा और शब्द के संज्ञान का समीकरण, तादात्म्यीकरण उस वाचिक परम्परा के साथ और सम्पूर्ण लोकवार्ता के साथ करना यह भी इसीलिए अत्यंत स्वाभाविक है क्योंकि परम्परा का यह तो व्याख्यान है- परम्परा को लोक और शास्त्र के रूप में देखने का उपक्रम यही महत्वपूर्ण है।

'फोक-लोर' को लेकर पश्चिम की जो दृष्टि है उसमें कितनी तरह से उसपर बात की गई है। चौमासा के इसी अंक में आपने एक लेख इसमें प्रकाशित किया है उसको यहाँ पर फिर से दोहराने की जरूरत नहीं है। लेकिन जो 'फोक' की अवधारणा है, उस 'फोक' की अवधारणा को पूरी तरह से आरोपित करना लोक के ऊपर और उसके ज़रिये 'फोक' को समझने की जो चेष्टा हो रही थी, यह चेष्टा जहाँ प्रतिफलित होनी थी, वहीं ले जा करके उसने हमको रखा और कई बार यह उत्साह मंद होता दिखाई पड़ा। लेकिन ऐसा तो होता नहीं। परम्परा कुछ दिन के लिए सुप्त होती है, लेकिन भारतवर्ष में परम्पराओं का अंत नहीं होता। सुप्त होती है, फिर से जाग पड़ती है। यही उसका स्वभाव है। परम्परा का यही स्वभाव है और इसलिए शब्द की वाक् की वह परम्परा जो लोक के साथ रही है, वह शास्त्र के साथ भी उसी रूप में रही है। अभी कपिल जी ने कहा है कि हम ऐसा नहीं कर सकते कि लोक और शास्त्र की ठीक उन्ही संदर्भों में पड़ताल करने की कोशिश करें जो पश्चिम में लोग करते आये हैं। उससे भिन्न एक दृष्टि की जरूरत है। मैं इस शाम अपने इस सीमित समय में इस बात को रेखांकित करना चाहूँगा कि वह कौन सी बात है जो हमारे पूरे चिन्तन को पश्चिम के चिन्तन से अलग करती है। भाषा-विषयक हमारी अपनी दृष्टि पश्चिम की दृष्टि से हमें पृथक करती है।

इसमें किसी दृष्टि के बेहतर होने की बात नहीं है। केवल दृष्टि की भिन्नता की बात है। उस दृष्टि की भिन्नता की बात कहाँ से उठती है। कैसे वह पूरी समूची विश्व दृष्टि को प्रभावित करती है और कैसे, आप कह सकते हैं, पश्चिमी विश्व दृष्टि का, जो सारी दुनिया पर इस समय ऐसा लगता है कि आरोपित सी हो रही है, उस विश्व दृष्टि का एक विकल्प है। आज की शाम मैं केवल उधर की ओर ही आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। भाषा अथवा शब्द पश्चिमी चिन्तन में विलेपण की वस्तु है। 'ऑब्जेक्ट ऑफ एनालीसिस' है। क्योंकि भाषा मनुष्य के सम्प्रेषण का अत्यंत समर्थ माध्यम है। भाषा मनुष्य के पास सम्प्रेषण का माध्यम है। ग्रहण का भी माध्यम है। केवल 'थ्योरी ऑफ कम्युनिकेशन' की बात नहीं है। 'थ्योरी ऑफ रेसेवटीविटी' की भी बात है। केवल सम्प्रेषण ही नहीं, ग्रहण भी तो हम कह रहे हैं। अन्यथा सम्प्रेषण का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन भाषा सम्प्रेषण का माध्यम है, इसलिए भाषा विश्लेषण का विषय है। इससे जो चिन्तन आरंभ होता है, उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में जो चिन्तन आगे बढ़ता है वह सोस्युअर से होता हुआ देरिदा तक और अब उसके आगे है। उससे जो चिन्तन आगे बढ़ता है उसमें चास्की सरीखे चिन्तक यही कहते हैं कि भाषा मनुष्य की विशिष्ट उपलब्धि है और मनुष्य की उस विशिष्ट उपलब्धि का कारण यह है कि मनुष्य के 'जीन्स' में भाषा का प्रवेश हो गया है। चॉम्सकी का तर्क है कि मनुष्य को जो विभिन्न आन्तर अंग दिये गये हैं जिनको अपनी पारिभाषिक शब्दावली में कहे हम 'करण' कहेंगे, उन करणों का माने अंगो का ओष्ठ से लेकर और काकल पर्यन्त, यह जो हमारे विभिन्न अंगोंपाँग हैं इनका प्रथम व्यापार कुछ निश्चित है, दाँत का काटना-पीसना, ओंठ का आच्छादन करना, जीभ का स्वाद लेना यह सबसे उसके अलग-अलग मुख्य व्यापार हैं। मुख्य कार्य हैं। लेकिन चॉम्सकी यह कहता है कि ये केवल मनुष्य है, जिसने अपने इन अंगों से एक और काम लेना पूरी तरह से जान लिया है और वह है- 'आर्टिक्युलेशन ऑफ लेंग्वेज' इसीलिए भाषा मनुष्य की 'जीन्स' में प्रविष्ट हो गई है। भाषा की अंतरंगता की व्याख्या चॉम्सकी इस तर्क के आधार पर करता है। लेकिन एक वैकल्पिक दृष्टि भी है, जो भाषा को रासायनिक संघटन के रूप में नहीं देखती। 'जीन्स' के विभिन्न प्रकार के रसायन का जो संघटन है, उसका आलेखन है, वह आलेखन है-चेतना और वह आलेखन है भाषा। एक और चिन्तन की धारा है जो मानती है कि भाषा और चेतना एक है। भाषा चिति है। वाक्यपदीय अपनी स्वोपज्ञवृत्ति में, भर्तृहरि द्वारा अपने ही ग्रन्थ पर लिखी गई अपनी ही टीका में उसकी व्याख्या की और कहा भाषा वस्तुतः 'चिति' है- प्रत्यकचैतन्ये अन्तःस न्निवेशिता-वाक्'। वाक्

हमारी अन्तश्चेतना में ही सन्निविष्ट है। सचमुच 'सन्निविष्ट' शब्द भी कुछ समझाने के लिए है। वस्तुतः वह अन्तश्चेतना से अभिन्न है। वाक् को एक वाह्य विषय के रूप में देखना, 'आब्जेक्ट' के रूप में देखना और वाक् को अपनी अन्तश्चेतना से अभिन्न और तदात्म देखना-यह दो भिन्न प्रस्थान हैं और यह दो भिन्न प्रस्थान आरंभ से चले आये हैं।

वाचिकता को, वाचिक परम्परा को भर्तृहरि द्वारा पुष्ट किये गये इस पूरे के पूरे चिन्तन में शास्त्र और लोक के रूप में बँटवारा करके नहीं देखा गया है। क्योंकि जो शास्त्र है वह भी श्रुति की परम्परा है और लोक भी वाचिक-परम्परा में है। इसलिए वाचिकता के आधार पर शास्त्र और लोक का विभाजन नहीं किया जा सकता। लोकतः अर्थप्रयुक्ते' लोक से अर्थ प्रयुक्त होता है। व्याकरण का आधार ही लोक है। महाभाष्यकार पतंजलि कहते हैं, कुछ बातें हैं जिनको व्याकरण में कहने की जरूरत नहीं। उदाहरण के लिए संस्कृत में जो शब्दों के साथ जुड़े हुए लिंग हैं उनका विवेचन करने के लिए अलग से जरूरत नहीं है। लिंग अशिष्यम्-लिंग का अनुशासन करना आवश्यक नहीं है। 'लोकाश्रत्वात् लिंगस्य' क्योंकि लिंग तो लोक निर्धारित करता है। उसके लिए तो प्रयोग है। उसके लिए तो जन में जाना पड़ेगा। वे ही महाभाष्यकार पतंजलि हैं, कहते हैं-भाषा का आकरण करना पड़ता है। विविध रूप में आकरण करना होता है। आकरण किसका आप कर रहे हैं। यही व्याकरण है। क्या है जिसकी आकृति होती जा रही है। वह जो अनाकृत है, वह अनाकृत पुनः आकृत हो रहा है। अतएव विविध आकृति उसकी हो रही है। तो यह जो अनाकृत का आकार ग्रहण करना है, यह व्याकरण है। यह उसका अव्यक्त का व्यक्तकरण है। नानारूपों में। लेकिन यह अन्तरचेतना है, एक अभिन्न अव्यक्त अन्तश्चेतना ही व्यक्त रूप में विविध रूप में आ रही है। भाषा की यह पहचान शब्द का यह संज्ञान एक पूरी परम्परा से चला आता हुआ संज्ञान है। विश्व की भाषा को देखने के लिए, लोक परम्परा को देखने के लिए, नृतत्वशास्त्र की विशेषीकृत दृष्टि ठीक है। पश्चिम अपनाता है, ठीक है एक सीमा तक जहाँ परिवर्तन की व्याख्या करनी होगी वहाँ नृतत्वशास्त्र के आधार पर उसका विश्लेषण करना पड़ेगा। 'विद्यांच अविद्यांच यस्तदवेद उभयं सदृ, अविद्यायामृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते' जो भेद की विधायिनी शक्तियों को और अभेद की निरूपक शक्तियों को, एक साथ देखता है, जो दोनों ही जानता है वह भेदविधायिनी शक्तियों से मृत्यु का संतरण करता है और अभेद को जानने वाली शक्ति से अमरत्व का अनुभव करता है। इनमें से कोई एक, केवल एक अंश है, केवल एक

आंशिक तत्व पर रह जाना पूरापन नहीं है। इसलिए व्याकरण के द्वारा होने वाले परिवर्तन के सारे नियम हैं। उपादान हैं। सारी प्रवृत्तियों को समझना पड़ता है। व्याकरण अपनी तरह से सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन को आकार देता है जैसे गणित सम्पूर्ण पाश्चात्य चिन्तन को आकार देती है। गणित और व्याकरण एक तरह से एक दूसरे के समानान्तर है। जो बात प्रत्यक्ष से साबित नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष हम देख रहे हैं, लेकिन प्रत्यक्ष देखते हुए जो जहाँ पर हम उसको साबित नहीं कर पा रहे हैं वहाँ प्राक्कल्पना करनी पड़ती है और प्राकेल्पना करने का मार्ग है गणित। बिना प्राक्कल्पना के गणित आप कर नहीं करते। जब गणित शास्त्र केवल यांत्रिक नियमों से चल रहा था, अवरूद्ध हो गया। और जब प्राक्कल्पना को मान लिया गया। माना कि 'अ', माना कि 'ब' यह है, तो फिर आगे का द्वार खुल जाता है। मार्क्स ने यहीं से अपनी बात को आरंभ किया था। 'मैकेनिकल मैटेरिज्म' से आगे का 'डायलेक्टिकल मैटेरिज्म' वहीं से शुरू होता है। जहाँ प्राक्कल्पना आ जाती है। तो इसलिए जिस प्रकार कारण कार्य नियमों का अंध प्रयोग इस विश्व की व्याख्या नहीं कर सकती और सम्भावना के तत्व का सहारा भी लेना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार यदि गणित चिन्तन को आकार देती है तो एक दूसरी परम्परा है, जहाँ वि-आकरण अर्थात् व्याकरण चिन्तन को आकार देता है। इसलिए 'सैषा संसारिणाम् संज्ञाबहिरन्तश्च। वाक्पदीयकार कहते हैं कि यह शब्द है, जो 'संसारिणाम् संज्ञाबहिर्अन्तश्च वर्तते।' यह संज्ञान है, जिसे हम भाषा कहते हैं। भाषा केवल उच्चरित शब्द नहीं है। भाषा उस उच्चरित शब्द के पीछे एक सूक्ष्म रूप है, चेतना है। हमारी सम्पूर्ण अनुभूति में हमारे दैनन्दिन अनुभव में वह विद्यमान है। केवल जरूरत है, हम उसकी तरफ निगाहें डालें या उसकी तरफ से आँखें फेर लें। प्रश्न यह है कि यह जो बहुलता है, इस बहुलता के भीतर प्रवाहित कोई ऐक्य है या नहीं? क्या केवल एक सर्वथा असम्बद्ध बहुलता है? अगर इस बहुलता के भीतर, इस नानात्व के भीतर अन्तः संचरित किसी ऐक्य को देखना है, तो वह ऐक्य क्या है, जो हम निरंतर बोल रहे हैं। एक के बाद एक वर्ण आ रहे हैं। वर्णों से पदों की निर्मिति हो रही है और पदों से वाक्यों की निर्मिति हो रही है, वाक्य से महावाक्य बनेंगे और वह कुछ एक अखण्ड विचार है। उस अखण्ड विचार को इस धारावाहिक क्रिया में, इस क्रम से उस अक्रम को मैं कहना चाहता हूँ। यह क्रम और अक्रम का सारा व्यापार एक साथ चल रहा है। जो अक्रम है वही क्रम में प्रतिफलित हो रहा है। भाषा अक्रम से क्रम में आने का पुनः क्रम से अक्रम में जाने का मार्ग है। जब मैं वक्ता हूँ। तो वह अक्रम से क्रम में आ रहा है और जो आप सुन रहे हैं वह स्वयं पुनः आपकी चेतना में जाके अक्रम में परिणत हो रहा है तो

अक्रम से क्रम में आना और पुनः क्रम से अक्रम में जाना यह भाषिक व्यापार है। इस भाषिक व्यापार को केवल उच्चरित और श्रूयमाण शब्दों के द्वारा कहा नहीं जा सकता। उच्चरित और श्रूयमाण शब्द-जिनको मैं 'आर्टिक्युलेट' कर रहा हूँ, 'आर्टिक्युलेटेड लेंग्वेज' और 'हर्ड लेंग्वेज' जो सुनी जा रही है, वह केवल एक स्थूलतम रूप है भाषा का। उससे पीछे जो रूप है उस रूप पर वैयाकरणों ने विचार किया है। उस रूप पर समस्त आगम शास्त्र ने विचार किया है। सारी श्रौत और आगम-परम्परा ने इस पर विचार किया है। उसपर शास्त्र ने विचार किया है और उसपर लोक ने विचार किया है। उस विचार को हम ऐसा नहीं कह सकते कि उसको हटा करके बात करें। कबीर पर बात करते हुए हम अनहद को अलग करते हैं? कबीर के विद्रोह पर बात करते हुए कबीर के 'अनहद' के विचार का हम निषेध कर देंगे? और फिर हम कबीर पर बात कर सकते हैं? असंभव है। कबीर पर बात करने के लिए सम्पूर्ण नाथों की, सिद्धों की, काश्मीर के शैवों, सारे अद्वैत वेदान्त से लेकर और सूफ़ी दर्शन तक की सारी परम्परा की बात करनी होगी। सारा का सारा समाहार जब होगा, तब कबीर पर बात हो सकती है। बंगाल के वैष्णव हैं, उन वैष्णवों पर बात का क्या हम निषेध कर सकते हैं और बंगाल के वैष्णवों का निषेध करके, सूर का निषेध करके, तुलसी का निषेध करके, जायसी का निषेध करके और केवल हम इन सारी की सारी सम्पदा का निषेध करके और समकालीन चिन्तन की और सर्जन की बात करेंगे? क्या यह संभव है? लेकिन किस प्रकार से चीजें हो रही हैं और समय है कि जब उन पर हमको कहना ही पड़ेगा। मुझे याद आता है आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी काशी में बोल रहे थे और सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में परम्परा और आधुनिकता के संबंध पर बात चल रही थी। पण्डित विद्यानिवास मिश्र जी भी वहाँ बैठे हुए थे उस समय। तीस वर्ष बीत चुके हैं और द्विवेदी जी ने सारी बातें उन परम्परा और आधुनिकता के संबंधों पर बात करते हुए एक श्लोक पढ़ा महाभारत से और उन्होंने कहा- 'चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान'- परम्परा मनुष्य का वह स्थिर पग है, जिसके चलते अगला पैर आगे की गति के लिए उठाया जाता है। एक पैर स्थिर नहीं रहेगा तो दूसरा पैर आगे बढ़ ही नहीं सकता। मैं समझता हूँ कि इस सम्पूर्ण सारे परिवर्तन को मैं उस आधुनिकता के नाम से नहीं कहना चाहता पर मैं उसको परिवर्तन के नाम से कहना चाहता हूँ। इस सम्पूर्ण परिवर्तन की शक्ति को समझने के लिए जो स्वयं हमारे भीतर से आ रही है और जो सारे विश्व के साथ अन्त-क्रिया से आ रही है, उस सबको समझने के लिए शब्द की यह विशिष्ट भूमि का जो हमें प्राप्त है उसे देखना जरूरी है वह शब्द की सूक्ष्मतम और अव्यक्त स्थिति से व्यक्त स्थिति तक आती

है। वाक्पदीकार कहते हैं और आगम भी कहते हैं कि जो हमारी चेतना है उस चेतना की प्रथम अभिव्यक्ति हमारे प्राण स्पन्दन में होती है। क्योंकि प्राण से ही चेतना की पहचान होती है। प्राण है! तो चित्त है। चित्त नहीं है तो प्राण नहीं है। तो यह तो परस्पर अभिसंबंध है, इस अभिसंबंध के कारण पता चलता है कि उसकी पहली अभिव्यक्ति प्राण में है। उसकी दूसरी अभिव्यक्ति बुद्धि में है और इसलिए यह जो संवित् है, यह संवित् ही अपने प्राणों के प्रयोग से पाणिनि ने और पूरे शिक्षाकारों ने बड़े ही सूक्ष्म सूत्र रूप में इन बातों को कहा है- 'आत्माबुद्ध्यासमर्थयार्थान मनोयुडे विवक्षया मनः कायाग्निमाहन्ति सप्रेरयर्तिमारूतम्' पहले वह जो हमारी चेतना है वह बुद्धि के साथ संयुक्त होती है। हमारी इच्छा होती है कि हम बोलें और यह विवक्षा होते ही, बोलने की इच्छा होते ही, जो सम्पूर्ण संचित शक्ति है, कायाग्नि है, काया में स्थित जो सारी 'एनर्जी' है, उस 'एनर्जी' को वह बुद्धि प्रेरित कर देती है और वह जो प्राण निरन्तर चल रहा है, आ रहा है, जा रहा है, वह कुछ रोक लिया जाता है और वह रूका हुआ प्राण तत्त्व स्थानों को आहत करता हुआ निकलता है। यही तो अव्यक्त वाक् का व्यक्तिकरण है। जो संवित् है, वह पुनः इस वाणी के रूप में आती है। वह क्या है-वाणी? तो कुछ कहते हैं कि वह तो वायु के अणुओं का संघात है। 'अभ्राणीवप्रचीयन्ते परमाणवः।' यह तो जैसे आकाश में कहीं दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। बादल और फिर संघटित-सम्पुंजित हो जाते हैं तो बादल बन जाते हैं। कुछ ऐसे ही जो परमाणु के रूप में हैं उनका संपुंजन वाणी है अथवा यह अनेक 'वायोःअणूनाम ज्ञानस्य'-यह वायु है, प्राण है अथवा वह ज्ञान है जो कि वर्ण के रूप में परिणत होता है। वह परमाणु है-शब्द के, शब्दाख्याः परमाणवः' जो शब्द के रूप में सम्पुंजित होके आ जाते हैं। अनेक दृष्टियों से उसकी व्याख्या की गई है। लेकिन यह है अव्यक्त का व्यक्त भाव। यह चित्त का पुनः इस उच्चरित शब्द के रूप में परमाणु के रूप में एक प्रकार से 'मैटर' के रूप में उसका प्रकट हो जाना है। तो यह जो इस प्रकार से द्रव्य नहीं है, वह द्रव्य के रूप में आ जाता है। अद्भुत चमत्कार होता है इसलिए विश्व की इस पूरी पहली को समझने के लिए सारी दुनिया में यह जो सामने फैला हुआ है यह, यह, यह, यह, यह- 'इदम्। इस 'इदं' के कारणों को ढूँढने की विधि अपनाई गई। क्या है इसका मूल कारण? क्या है और उस मूल कारण की गवेषणा को हम विज्ञान कह सकते हैं- 'साईन्सेज़'। इस 'इदं' का विश्लेषण करते हुए और उसकी परम कारणता की ओर जाना एक दूसरा तरीका हो सकता है। कि हमें ये पता नहीं जो यह सामने है वह सचमुच कि है या नहीं। कई बार जो दीखता है, वह रहता ही नहीं। लेकिन जिसके बारे में संदेह नहीं

हो सकता, वह है हम। हम अपने बारे में संदेह नहीं कर सकते। सर्वथा असंदिग्ध। देकार्त ने तो बहुत बाद में कहा। बहुत पहले भारतीय दार्शनिक इसको कहते हैं। इसलिए अगर सत्य को समझना है। इस विश्व के रहस्य को समझना है तो इसी को समझो। 'मै' को समझो। 'आत्मावऽरेदृष्टव्यो मन्तव्यः' दो विधियाँ उपनिषद् में हैं। एक तीसरी भी विधि है कि हम जो वाणी बोलते हैं, यह क्या है? इस वाणी को समझो तो वहाँ तक पहुँच जाओगे। तो यह तीसरा मार्ग केवल इस चिन्तन की धारा में ही मिलता है। जहाँ तक मैं जानता हूँ- थोड़ा प्राचीन सामी परम्परा में भी कहीं कोई बीज है लेकिन जिस तरह से यहाँ बात की गई हो यह कहीं है अहंराष्ट्री सङ्गमनी वसूनाचिकितुषी यज्ञियानाम्' स्वयं वाक् के बारे में उससे तादात्म्य करती हुई कह रही है। बातें शुरू होती हैं वेद से श्रुति से और समस्त आगमों से होती हुई आज तक सारे उस कला व्यापार में चलती हुई निरूपित होते हैं। यह चिन्तन की एक विशिष्टता है। वही शब्द का संज्ञान है और शब्द से संज्ञान है। वस्तुतः शब्द से हम अपना ही संज्ञान करते हैं। इसलिए वह वाक् प्रत्यभिज्ञान है। इसलिए वाक् के लिए इस सम्पूर्ण चिन्तन की परिणति तब होती है। वाग्रूपताचेद् उत्क्रामेत् अवबोधस्य शाश्वती न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि या प्रत्यवमर्शिनी॥ तथा 'नसोऽस्ति प्रत्ययो लोकेयः शब्दानुगमनाहते। अनुविद्धमिस्सर्व ज्ञानं शब्देन भासते॥' कोई ऐसा प्रत्यय है ही नहीं, जिसमें शब्द का अनुवेद्य नहीं हो। शब्द के बिना कोई विचार आ ही नहीं सकता। तो नियम है- 'यत्सत्त्वे यत्सत्त्वं यदभावे यदभावः' अन्वय-व्यतिरेक का नियम भारतीय तार्किक प्रयुक्त करते हैं कि जिसके रहने पर जो हो और जिसके न रहने पर जो न हो वह सत्ता को सिद्ध करता है तो वाक् है, तो प्रत्यय है। वाक् नहीं है तो प्रत्यय नहीं है। इसलिए पता चला कि प्रत्यय वाक् है और इसलिए सम्पूर्ण प्रत्ययरूपता वाग्रूपता ही है। अवबोधस्य वाग्रूपताचेद् उत्क्रामेत्-अगर उस अवबोध की हमारे बोध की वाग्रूपता अगर समाप्त हो जाये तो 'न प्रकाशकः प्रकाशेत' कोई ज्ञान होगा ही नहीं। कोई प्रकाश-प्रकाश होगा ही नहीं। क्योंकि वाक् मूलतः प्रत्यवमर्श है। यह चित्त तत्त्व जानता है कि मैं चित्त हूँ-यह वाक् है। यह प्रथम स्पन्द है। जो यह प्रकाश-प्रकाश है, पर जानता नहीं कि ये बाह्य प्रकाश है और यह अन्तर प्रकाश है। जो स्वयं को प्रकाशित कर रहा है। जो अन्य को भी प्रकाशित कर रहा है और यह जानता है कि मैं हूँ॥ यह मैं हूँ। का होना ही 'वाक्' है। अपने सूक्ष्मतम रूप में वाक् अथवा शब्द क्या है? वस्तुतः चेतना और चेतना का स्वचेतन होना-चेतना की स्वचेतनता ही वाक् है यह घड़ा है और यह मैं जानता हूँ कि यह घड़ा है। यह टेबिल है मैं जानता हूँ कि यह टेबिल है। हर ज्ञान के भीतर यह विमर्शन अनुस्यूत होता है। तो यह बोध के भीतर

स्वबोध का होना या विषय बोध के साथ विषयी बोध का होना-यही वाक् का मूल अर्थ है। इसीलिए सम्पूर्ण भारतीय कलाएँ और सम्पूर्ण भारतीय चिंतन वाङ्मूलक है। इसीलिए बार-बार श्रुति कहती है 'वागेवविश्वाभुवनानि जज्ञे'- वाक् ने ही सम्पूर्ण विश्व का जनन किया है। क्या मतलब है इसका? इसका ये मतलब नहीं कि एक सुबह खुदा ने कहा कि धरती बन जाये और धरती बन गई। वह होगा, उनकी परम्परा का कोई अर्थ होगा, उसको हम नहीं जानते। लेकिन हम अपने को जानते हैं कि यह चित् तत्त्व है, यह चित् तत्त्व का स्वचेतन होना ही वाक् है। यह हमारे अनुभव में आता है कि वह बिलकुल अखण्ड है। वह खण्डित नहीं। वह समग्र है। तो इस समग्रता का बोध होना और समग्रता से पुनः बहुलता की ओर जाना, द्वैत की ओर जाना, बहुलता की ओर जाना और पुनः बहुलता से उसी वाक् के माध्यम से उक्त एकत्व के पास लौट आना-यही खेल है। यह खेल, यह क्रीड़ा काश्मीरीय शैव दर्शन ने बहुत अच्छी तरह से इसका विश्लेषण किया। लेकिन वैयाकरणों ने इसके बहुत पहले..पहले पीछे की बात करना मुझे अच्छा नहीं लगता। तात्त्विक के विचार करना चाहिए। नृतत्व की तरह से विचार करिये आप, इतिहास की दृष्टि से विचार करिये पर तत्त्व चिंतन की दृष्टि से भी तो विचार करिये। तत्त्व चिंतन की दृष्टि से चार करने का निषेध आप कैसे कर सकते हैं। करिये तो यह जो तात्त्विक दृष्टि है कि यह बहुलता की ओर जाना। हम जा ही रहे हैं। सोते से स्वप्न में आते हैं, स्वप्न से जागते हैं और फिर जाग्रत से स्वप्न में जाते हैं। स्वप्न से सुषुप्ति में जाते हैं। यह तो रोज ही व्यापार चल रहा है। उस एकत्व से नानात्व की ओर जाना और नानात्व से एकत्व की। तो भाषा अपने पार्यान्तिक रूप में वह संज्ञान है इसलिए 'सैषा संसारिणाम् संज्ञाबहिरन्तश्च विद्यते'-वाह्य और भीतर यह संज्ञान दोनों रूप में प्रकाशित हो रहा है और इसीलिए 'वाग रूपता चेद उक्त्वामेत अवबोधस्य' अवबोध की वाग्रूपता न हो, तो प्रकाश हो ही नहीं सकता, ज्ञान हो ही नहीं सकता और इसलिए वाक् को जब परिभाषित करने की बात आती है अगर एक सम्पूर्ण भारतीय व्यापक सौन्दर्य दृष्टि को हमको समझना है, तो हम कहाँ से समझेंगे? उन्नीसवीं शताब्दी से जो कला और जो साहित्य आया है मैं उसकी बात अभी नहीं करता, उसकी बात तो आप करेंगे। लेकिन इसके पहले का जो साहित्य है इस पूरे के पूरे दौर के लिए एक अगर सौन्दर्य शास्त्र की रचना करनी है, तो वह क्या होगा। आधार क्या होगा। इस आधार को भरतमुनि ने उठाया। जब पहला नाट्य-प्रयोग हुआ देवासुर संग्राम का, तो देवताओं की विजय और दैत्यों की पराजय उसमें दिखाई गई। दैत्य बहुत व्याकुल होके, खीझ करके आये ब्रह्मा के पास और कहा पितामह तुम तो हमारे भी पितामह हो न जैसे कि देवों के

हो। यह तुमने पक्षपात क्या किया। तुमने हमको इतना हीन क्यों दिखाया। तब जो पितामह का उत्तर है वह उत्तर भारतीय कला दृष्टि-नाट्य और नाट्य के बहाने सम्पूर्ण कला दृष्टि को रेखांकित करता है। वह कहते हैं कि पहले जब सारा प्रशिक्षण दे दिया गया तो भरत ने अपने शिष्यों से एक अनुकृति का निबंधन करवा-बंध कराया। वह अनुकृत्यात्मक कोई उपस्थापन था। ब्रह्मा ने कहा कि देखो यह किसी की अनुकृति नहीं है जो तुमने देखा है। उन्होंने कहा 'त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्याभावानुकीर्तनम्'- यह नाट्य सम्पूर्ण त्रैलोक्य के भावों का अनुकीर्तन है। शब्द है। यह वस्तु का वृत्तान्त या अनुकृति नहीं है।.....अभिनव गुप्त अभिनव भारती में इसका विश्लेषण करते हैं? और कहते हैं कि अनुकृति की ही नहीं जा सकती क्योंकि जो हो चुका वह तो अतीत में चला गया है, जो तुम कर रहे हो वह सब नया है। इसलिए अनुकृति की तो बात ही भूल जाओ। अनुकृति तो यह है ही नहीं क्योंकि वस्तु की भी अनुकृति नहीं हो सकती, वृत्त की भी नहीं हो सकती। जो अनुकृति होगी, वह कुछ नयी ही होगी। य तो भाव का यह अनुकीर्तन है। किसी की अनुकृति करके हमको मिलेगा क्या? किसी की अनुकृति करने से अधिक से अधिक यह हो सकता है कि हम कुछ कटाक्ष कर दें। कुछ उसकी नकल करके कुछ चिढ़ा दें। एक चिढ़ ही पैदा हो सकती है अनुकृति से। इससे ज्यादा क्या होगा। इसलिए वह एक तो पिछला लौट नहीं सकता। दूसरे उसको करें भी तो उसका प्रयोजन क्या है? अगर कुछ हो सकता है तो हमारी उसमें रूचि क्यों होगी। कोई हुआ होगा राम। उसको फिर अनुकरण करके देखने में हमारी रूचि क्या है। जब तक कि राम में और दर्शक में कोई सेतु नहीं है, हम उसको देखेंगे क्यों? इसलिए अगर कोई सेतु है तो वह है भाव। राम का और हमारा वह भाव ही एक है। इसलिए भाव का अनुकीर्तन है। कला, नाट्य, नाटकों, नाट्यमुखेन सभी कलाएँ आ जायेंगी, उनमें भाव का अनुकरण नहीं होता। कुछ करने को है, तो करण होता ही है। कुछ है तो करना पड़ेगा। अभिनव गुप्त करते हैं कि हाँ-हाँ कुछ करना तो होता है, इस अर्थ में कहो, तो अनुकरण है। अनुकृति पश्चात् है। हाथ-पैर से, वाणी से, मन से कुछ किया जा रहा है। कुछ क्रिया हो रही है, लेकिन यह करना नहीं है। आप उस भाव को कर सकते नहीं। तो फिर आप क्या कर सकते हैं? आप केवल उसको कह सकते हैं। इसलिए नाट्य सम्पूर्ण पारम्परिक नाट्य वस्तु का करना नहीं है, पश्चात् उसको रके उपस्थित नहीं कर देना है। यथार्थ का भ्रम नहीं उत्पन्न करना है। आप यथार्थ को कर नहीं सकते, 'एट द बेस्ट' आप यथार्थ का भ्रम पैदा कर सकते हैं। तो यथार्थ का भ्रम पैदा करना प्राचीन पारम्परिक भारतीय कला का प्रयोजन नहीं है। क्योंकि अगर भ्रम है तो उसमें हमारी रूचि

नहीं होगी। कला के अनुभव के बाद किसी को भी यह नहीं लगता कि यह भ्रम है। साहित्य के पढ़ने के बाद किसको लगता है कि मैं भ्रम से गुज़र रहा हूँ। अच्छी कलाकृति का जो अनुभव है, वह रह जाता है। इसलिए यह यथार्थ का भ्रम पैदा करना नहीं है। यह यथार्थ की उत्प्रेक्षा भी नहीं है। यह यथार्थ को बढ़ा के कहना भी नहीं है। यह यथार्थ का आरोपण भी नहीं है। यह यथार्थ की मरीचिका भी नहीं है। दस पक्ष वहाँ पर रखे हैं अभिनवगुप्त ने। उन्होंने कहा कि ये कुछ भी नहीं हैं। तो फिर क्या है? तो उत्तर है-यह भाव का अनुकीर्तन है। अनुकीर्तन माने पुनः कहना है। कहना कैसे होगा? करने में और कहने में कोई तात्त्विक अन्तर होता है। सम्पूर्ण भारतीय प्राचीन साहित्य वर्ण है, तो इसलिए वर्णना है। वह करना नहीं है। वह कहना है और सारे कलारूप चाहे वो चित्र हैं, चाहे वो मूर्ति हैं, चाहे वो रंगकर्म है वह सबका सब कहना है और इसलिए अभी भी कम से कम शास्त्रीय कलारूपों में यह पारिभाषिक शब्द हैं जहाँ पर यह कहा जाता है गायन के समय भाव का कहना होता है और खासतौर से कथक में तो भावों को कहा जाता है। किया नहीं जाता। तो इसलिए जो यह कहना अर्थात् कला के भीतर की, जो वस्तुतः वाग्रूपता है इस वाग्रूपता को ही समझना सम्पूर्ण भारतीय कला दृष्टि को समझना है। इसी अर्थ में सम्पूर्ण भारतीय कला का मर्म है। वह करना नहीं है। वह कहना है और इसलिए कहना है तो या तो वह व्यंजना हो सकती है। एक तो अभिधा से कहा जायेगा लेकिन अभिधा से पूरा नहीं पड़ेगा। इसलिए उसको अभिव्यक्ति में जाना पड़ेगा। और अगर उसी को हमको संगीत में करना होगा, गायन में या वादन में तो उसका विस्तार करना पड़ेगा। इसलिए मैंने पूछा केरल के बहुत ही वृद्ध विद्वान पिशाट्टी जी से। उन्होंने नाट्य शास्त्र का अनुवाद किया है। तो मैंने उनसे पूछा कि महाराज आपने अनुवाद तो किया मलयालम में पर ये 'अनुकीर्तन' क्या चीज है। तो जैसे कि संस्कृत के पारम्परिक विद्वान बोलते हैं-सूत्र रूप में, उन्होंने कहा कि जो अनुकरण है, वह अभिधा के समानान्तर है और अनुकीर्तन व्यंजना के समानान्तर है। जो साहित्य में व्यंजना है वही कलाओं में अनुकीर्तन है। तो यह जो व्यंजना है उसको नाना प्रकार से कहना है 'ठाड़ी गोरी केसवाऽ सँवारे हो रामाऽ जमुना किनरवाँ। ठाड़ी गौरी किरए सँवारे। एक बार काफी है इसको दस बार करने की क्या जरूरत है। क्योंकि वह जो भाव है 'अहमहमिकया परापरन्त' एक के पीछे दूसरे जो चले आने वाले अनुस्यूत भाव हैं, संचारी भाव हैं, उन संचारी भावों के जितने स्तर हैं-अर्थों के नाना स्तरों को-एक बार में कैसे कहा जा सकता है। इसे अंग से कहना है, स्वर से कहना है तो उसका आवर्तन करना पड़ेगा। इसलिए अनुकीर्तन का अर्थ हुआ, उनको बार-बार कहना पड़ेगा। साहित्य में

होगा तो वह वर्णन होगा 'अस्ति समस्तनगरीय निषायमाण'..... उसका यश है, फैला हुआ है और उसको कहना है तो एक उपमा से काम नहीं चल रहा है तो एक लड़ी है। बाण हैं, दण्डी है। इन कवियों ने वर्णन का विस्तार किया है। लगातार जो कार्य क्रिया से लेना था, उसको विशेषण से लेते हुए और लड़ी बाँध दी है। तो यह भाषा की अपनी तो आंतरिक शक्ति है वह कहना है। वह वर्णन के द्वारा सम्पूर्ण भारतीय परम्परा में परिव्यापत हैं रीतिकाल तक और रत्नाकर तक वह धारा चली आती हैं यह जो कहना है यह कहना ही कला का साहित्य का मर्म है। व्यंजना के द्वारा अभिधा के द्वारा भी हो सकता है। ऐसे भी समर्थ कवि हैं जो उसको कह सकते हैं और कहते हैं। लेकिन यह कला के व्यापार में इसको आवर्तन करना पड़ता है और आवर्तन ही नहीं करना पड़ता, कीर्तन करना पड़ता है। जिसका कीर्तन करते हैं, उसके महिमख्यापन को करते हैं, उसकी महिमा को भी कहते हैं। तो इसलिए जो कहते हैं उसके कुछ कहने में उसकी मृदु महिमा को उसके कुछ गौरव को हमको कहना ही पड़ेगा, एक कलाकार के रूप में। अन्यथा, अभिनव को अगर हम उद्धृत करना चाहें, तो काव्य-सम्पत्ति ही नहीं होगी। काव्य सम्पत्ति या कला-सम्पत्ति ही नहीं आयेगी। वह चारूता ही नहीं आयेगी। इसीलिए कहना पड़ता है और इसलिए पार्यन्तिक अनुभव होता है उस बहुलता के अपने जीवन से पुनः एक उस समग्रता के जीवन में पहुँच जाना, अखण्डता में पहुँच जाना। उसी का नाम रस है। रस और क्या है? जैसे सारी औषधि को निचोड़ दीजिये जो उसका जो तत्व है, वह रस है। जैसे बहुत ही सामने दृश्यमान पदाश्र का अन्तस् तत्व ही रस है, वैसे ही जो हमारी अपनी सत्ता का अन्तस् तत्व है, वह रस है। अतएव सत्ता की बहुलता से पुनः सत्ता के ऐक्य में चला जाना ही रस का अर्थ है। इसीलिए सारे काश्मीरी दार्शनिक कहते हैं 'स्वसंविद् विश्रान्ति'- अपनी ही संविद् में जाके ठहर जाना। यह साहित्य से कला से बढ़ करके अनायास माध्यम से संभव ही नहीं है, इसलिए कला शब्द केवल यह उच्चरित शब्द नहीं है। शब्द हमारी चेतना है और शब्द से हम उस चेतना के बहुत्व से पुनः चेतना के एकत्व में, अद्वय स्थिति में जाते हैं। वही आनंद की स्थिति है। इसीलिए रस आनंद है रस ये है-रस ये है व्याख्याएँ तो होती रहती हैं, लेकिन तात्त्विक रूप से वह भाषा है और भाषा का वह आंतरिक और अद्वय तत्व है जो रस के रूप में जाना जाता है मैं समझता हूँ इन सारी दृष्टियों से भी और बहुत बातें हो रही हैं। पश्चिम के लोग भी अपनी समीक्षा में बार-बार इसका परीक्षण कर रहे हैं, जो बिल्कुल नवीनतम समीक्षा के सिद्धांत हैं वहाँ पर भी ये चर्चाएँ आ रही हैं। मैं समझता हूँ कि मैंने समय ज्यादा ले लिया है अब मुझे समाहार करना चाहिए। लेकिन मैं वाक्पदीयकार की

बस केवल एक ही उस कारिका से बात बात को समाप्त कर देना चाहूँगा। यहाँ वह कहते हैं यह वाक् ही सम्पूर्ण कलाओं की और सम्पूर्ण शिल्पों की उपनिबन्धिनी है। यह सारी कलाएँ और सारे शिल्प चेतना तो है और यह प्रत्यवमर्श अन्तस चेतना है, जो इस सबका उप-निबंधन करती है। वाक् का यह स्वरूप बिलकुल हमारा निजी रूप है और इसलिए शब्द के संज्ञान का तात्पर्य है, अपने शब्द को पहचानने का यह अर्थ है कि हम स्वयं अपनी निजता का ही प्रत्यभिज्ञान करते हैं हमारे लिए शब्द हमारी अपनी पहचान के माध्यम हैं। वहाँ से हम हट रहे हैं। जहाँ से विचलन हो रहा है उस विचलन से फिर से अपने को देखने का उपाय शब्द है। इस ऐसी थाती का हम कैसे इन्कार करते हैं, मेरी समझ में नहीं आता। मैं वर्षों से इस पर सोचता रहा हूँ और लगा कि कहने का वक्त आ गया है, मुझे कहना चाहिए कि यह कोई भय की बात नहीं है। परिवर्तन का यह विरोधी नहीं है। यह हम डरते हैं कि इससे हम परिवर्तन का विरोध करते हैं।

वस्तुतः इसको समझने से परिवर्तन की शक्ति का भी उदय होता है। इसलिए सम्पूर्ण मौखिक परम्परा-वाचिक परम्परा, जो शास्त्र और लोक में विभाजित नहीं है बल्कि एक दूसरे की अनुपूरकता में जो उपस्थित है, यह 'एलीट' नहीं है, इस सन्दर्भ में 'एलीट' का कोई 'कॉन्सेप्ट' नहीं है। यहाँ 'पौर' है और 'जनपद' है। वह पुरवासी है और जनपदवासी है। लेकिन पुरवासियों से सावधान रहने के लिए बार-बार लोग कहते हैं। शाङ्करव और शारद्वत हस्तिनापुर में प्रवेश करते हैं। शारद्वत कहता है कि ऐसा लगता है, मैं चारों ओर आग ले हुए घर में घुस गया हूँ। यह कैसा शहर है? कहता है- मैं यहाँ के लोगों को देखता हूँ ऐसे ही जैसे नहाया हुआ आदमी तेल से चुपड़े हुए आदमी को देखता है। जैसे जागता हुआ आदमी सोते हुए आदमी को देखता है। यहाँ के लोगों को मैं जानता हूँ, यह केवल सुख के साथी हैं 'जनमिह सुखसङ्गिन वैमि' तो अगर कहीं कोई निषेध है, तो नागर जीवन की तारीफ भी है। कालिदास इसे खूब कहते हैं। लेकिन इसके साथ ही साथ यह कोई बहुत रोमान्टिक मैं बात नहीं कर रहा हूँ। रूमानी दृष्टि से इसको देखने की बात नहीं है जो कि जर्मन रोमान्टिकों ने जिसको देखा था। वाचिकता का अर्थ आदिमता नहीं होता। अगर नृतत्वशास्त्री उसको आदिमता समझते हैं तो उनको परिष्कार करना पड़ेगा। अपनी समझ में। क्योंकि यह वैकल्पिक विश्वदृष्टि है एक समूची समग्रता की विश्व की दृष्टि है, जो

वाचिकता को आदिमता के साथ नहीं जोड़ती। वाचिकता को पूर्णता के साथ जोड़ती है, जो शब्द को हमारे अपनी चेतना की समग्रता के रूप में देखती है। तो इसलिए चेतना की समग्रता के रूप में शब्द को पहचानना जरूरी है और इसलिए इस सारे उत्तर आधुनिक आवेश में और उसके आक्रमण में जहाँ शब्द तिरोहित हो रहे हैं जहाँ हमारे जीवन से शब्दों को ऐसा अजनबी बना दिया जा रहा है धीरे-धीरे जैसे वह गायब हो रहे हैं। हमारी बोलियाँ तो कौन कहे, हमारी अपनी भाषा ही जहाँ विलोपित हो रही है वहाँ शब्द का संज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है मैं समझता हूँ कि यह वही तात्कालिक अनुभव है खतरे का, जो आदिवासी लोक कला परिषद् को ऐसे चिन्तन की ओर ले जा रहा है। रास्ता बहुत मुश्किल है। मैं नहीं समझता कि जो सत्ता है, वह इसको सह सकती है। यह मुझे लगता नहीं है। मैं अशोक जी के पास आया था। लगभग 19 वर्ष पहले। तभी मैंने कहा था कि आप मुझे क्यों बुलाना चाहते हैं। मैं तो अपना काम कर रहा हूँ। पढ़ लिखा रहा हूँ। आप जहाँ पर हैं, उसका स्वभाव नहीं है इन सब बातों को करना। तो उन्होंने उस समय कहा था, हॉ त्रिपाठी जी, जब तक कर सकेंगे करेंगे, नहीं तो छोड़ देंगे। तो मैंने कहा ठीक है, मैं आता हूँ। मैं ठीक वही बात अपने सभी साथियों से कह सकता हूँ जो सचेत हो करके इस पर विचार कर रहे हैं।

यह बहुत ही कठिन रास्ता है, लेकिन हम इसको छोड़ भी तो नहीं सकते क्योंकि हमारे पास और कोई चारा नहीं है। कोई दूसरा चलने का रास्ता नहीं है। इसलिए शब्द की अपनी इस गरिमा को, शब्द के अपने स्वभाव को, जो हमारे संज्ञान हमारी चेतना के साथ बिलकुल तदात्म है, उसको समझना और उसके द्वारा फिर इस सारी आधुनिकता और परिवर्तन को समझना-वह तो ठीक है, लेकिन आधुनिकता की शर्त पर हम अपनी चीजों की व्याख्या को पश्चिमीकरण की तर्ज पर करें-यह स्वीकार्य नहीं है। हॉ उनकी सारी व्याख्या हम अपनी शर्त पर करके उसको स्वीकार करेंगे। उसको बंद नहीं कर सकते। कहीं ऐसा विभाजन हो नहीं सकता। पूरी मनुष्यता को हम काटपीट नहीं सकते। लेकिन वह जैसे विशाल वृत्त में एक अपने एक लघुतर वृत्त से हम शुरू करते हैं और उसका विस्तार करते हैं। वह कार्य करना पड़ेगा। इसलिए इस भाषिक चिन्तन को, शब्द के इस चिन्तन को एक बार गहराई से और गहराई से देखना पड़ेगा। वही से हमारे सारे रास्ते-अतीत को समझने को भी, वर्तमान की पूरी पहचान के लिए और भविष्य के वे रास्ते भी-वही से खुलते हैं।

आख्यान तथा वाचिक परम्परा

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी

नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय-अभिनय के चार प्रकारों में से एक है। आंगिक, वाचिक, सात्विक तथा आहार्य- इन चार प्रकार के अभिनयों में से किसी एक की प्रधानता रहे, तथा शेष अभिनय गौण हों, इस प्रकार का नाट्य प्रयोग भी हो सकता है, तथा चारों अभिनयों में से सभी समान रूप से प्रयुक्त हों, अथवा दो या तीन अभिनय प्रकार समान रूप से व्यवहृत हों, और शेष गौण रहें, यह भी संभव है।

केवल वाचिक अभिनय के द्वारा भी समग्र नाट्य प्रयोग संभव है: प्राचीन वाङ्मय के साक्ष्यों से लगता है कि वाचिक-प्रधान नाट्य प्रयोग ही हमारी नाट्य परंपरा का मूल है। नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि उस परंपरा के प्रति सजग हैं, जो वाक् को ही सारे व्यवहार का मूल मानती है। वे वाक् को नाट्य का स्वरूप बताते हुए कहते हैं-

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता।
अङ्ग-नेपथ्य-सत्वानि वाक्यार्थं व्ज्जयन्ति हि॥ (नाट्यशास्त्र, 14.2)

भरतमुनि यह भी कहते हैं कि वाक् समस्त साहित्य का तथा समस्त जीवन-व्यवहार का मूल है-

वाङ्मयानीह शास्त्राणि वाङ् निष्ठानि तथैव च।
तस्माद् वाचः पर नास्ति वाग् हि सर्वस्य कारणम्॥ (वही, 14.3)

भरतमुनि के आसपास ही पतंजलि ने अपना महाभाष्य लिखा, जिसमें उन्होंने ग्रन्थिक तथा शोभनिक नामक दो प्रकार के नटों का जिक्र किया है। ग्रन्थिक ग्रन्थ से आख्यानों, उपाख्यानों का पाठ करते थे। ग्रन्थिक की प्रस्तुति वाचिक प्रधान होती थी। वस्तुतः ग्रन्थिक सूत्रों के द्वारा आख्यानों की प्रस्तुति की परम्परा के ही विकास की एक कड़ी है। पतंजलि के उल्लेख से यह भी प्रतीत होता है कि शोभिक या शोभनिक नामक नटचित्र दिखा-दिखाकर उनके साथ कथागायन या नाट्यात्मक प्रस्तुति करते थे। (महाभाष्य, 3.1.26) डी.आर. माकड़ तथा मनमोहन

घोष जैसे विद्वानों की मान्यता है कि नाटक के विकास के क्रम में ऐसे नाटक सबसे पहले आये, जिनमें एक पात्र होता था, तथा केवल वाचिक अभिनय ही रहता था। (घोष, 1958, पृ.8) रूपक के दस भेदों में भाण इसी प्रकार का रूपक है, इसमें एक ही पात्र (विट) आद्यंत मंच पर रहता है, सारे पात्रों का अभिनय वही अकेला करता चलता है। माकड़ ने रूपकों के विकास के क्रम में भाण जैसे रूपकों का उद्भव सबसे पहले माना। (माकड़, 1936, पृ.165)

दूसरी ओर मनमोहन घोष ने वाचिक परंपरा में भारतीय नाट्य का मूल निरूपित करते हुए नाट्य के विकास की चार अवस्थाएँ मानी-सूत्रों के द्वारा इतिहास-पुराणों का पद्यबद्ध रूप से गायन, जनसमाज को पद्यांश समझाने के लिए गद्य में उनकी व्याख्या, कथा में आने वाले संवादों का एक या दो कुशीलवों के द्वारा अभिनय के साथ प्रस्तुतीकरण तथा इस प्रस्तुतीकरण में गीत और नृत्य का भी समावेश।

आख्यान प्रस्तुत करने वाले सूत आरंभ से ही प्रस्तुतीकरण में नाटकीयता लाने का प्रयास करते आ रहे थे। इस तरह वे कथानक को रोचक बनाते हुए उसे साकार कर सकते थे। भोज ने आख्यान प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थिक के लिए लिखा है-

‘कंसं घातयतीत्युक्ते कंसवधमाचष्टेति प्रतीयते।’

(व्ही. राघवन, पृ. 620 द्वारा उद्धृत) अर्थात् आख्यान पढ़ने वाले के लिए जब यह कहा जाता है कि वह कंस का वध करवा रहा है, तो आशय यह होता है कि वह कंस वध की कथा बता रहा है। ग्रन्थिक पाठ के साथ-साथ वाचिक के सधे हुए प्रयोग तथा उसके साथ-साथ अभिनय-पटुता के द्वारा दृश्य को इस तरह साकार कर देता है कि श्रोता उसके लिए- ‘यह कंस का वध करवा रहा है’- ऐसा वर्तमानकालिक प्रयोग करने लगते हैं।

आख्यान प्रस्तुत करने वालों के द्वारा जो नाटक प्रस्तुत किये जाते थे, उनमें वाचिक की प्रधानता स्वभावतः रहती होगी। ऐसे नाटकों में सूत्रधार कथाकथन करता हुआ। आद्यन्त दर्शकों के सामने उपस्थित रहता है। संस्कृत नाट्य परम्परा में ऐसे नाटकों का एक प्राचीन उदाहरण हनुमन्नाटक है। हनुमन्नाटक पूरी संस्कृत नाट्य परम्परा में एकदम अलग ही तरह का नाटक है। यह नाटक पूरा का पूरा पद्य में है, तथा इसमें मंच पर जो हो रहा है, उसका भी पद्यबद्ध विवरण लगातार दिया गया है। इस प्रकार पूरा नाटक ही कथा गायन की शैली में है। यह नाटक दो संस्करणों में उपलब्ध होता है दोनों संस्करणों में श्लोक संख्या की दृष्टि से अत्यधिक अंतर है। एक

संस्करण, जिसके संकलनकर्ता दामोदर कहे गये हैं, 581 पद्यों वाला है, जबकि दूसरा संस्करण जिसके संकलनकार मधुसूदन है, 730 पद्यों वाला है। दोनों संस्करणों में कुल 300 पद्य ही उभयनिष्ठ हैं। स्पष्ट है कि वाचिक परम्परा में ही सदियों तक प्रचलित रहने तथा अलग अलग स्थानों पर प्रस्तुत किये जाते रहने के कारण हनुमन्नाटक के अलग अलग रूपान्तर प्रचलन में आये। अपने कथागायनपरक या महाकाव्यात्मक रूप के कारण हनुमन्नाटक को महानाटक भी कहा जाता रहा है। प्राचीन होने के कारण भी इसके कलेवर में वृद्धि होती रही होगी। मैक्समूलर ने तो महानाटक को संस्कृत नाटक का आद्य रूप माना है। इस नाटक की प्राचीनता इस तथ्य से भी जाहिर है कि परम्परागत मान्यता के अनुसार इसके प्रणेता हनुमान कहे गये हैं। प्राचीन कथाग्रंथों में यह अनुश्रुति भी उल्लिखित है कि यह नाटक लुप्त हो गया था, और महाराज भोज को समुद्र के पत्थरों पर खुदा हुआ यह मिला। वास्तव में हनुमन्नाटक वाचिक परम्परा में प्रचलित लीला नाटक का सबसे प्राचीन रूप कहा जा सकता है। मैक्समूलर ने तो इसे संस्कृत नाटक का आद्य रूप माना है।

वैदिक काव्य परंपरा वाचिक परंपरा ही थी, जिसकी सबसे अधिक अभिव्यक्ति यज्ञ के मंच पर होती थी। काव्यों या मंत्रों के विनियोग के साथ-साथ यज्ञ के मंच पर आख्यान, उपाख्यान, नृत्य, गीत, नाटक आदि का भी विकास हुआ। अथर्ववेद बताता है कि चार वैदिक संहिताओं के साथ पुराण भी यज्ञ से जन्में-

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

उच्छिष्टाज्जजिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रिताः॥

(अथर्ववेद 11.7.24)

अश्वमेध यज्ञ में पारिप्लव आख्यान कहे जाते थे। रामकरण शर्मा का अनुमान है कि ‘गुरु-शिष्य-परंपरा या वक्ता-श्रोता की परंपरा में नैरन्तर्य के निर्वाह के कारण इनका नाम पारिप्लव आख्यान पड़ा होगा।... अश्वमेध यज्ञ एक वर्ष तक चलता था। इस अवधि में दस-दस दिन में पूरे होने वाले और फिर से दोहराये जाने वाले आख्यान प्रस्तुत किये जाते थे। अश्वमेधयज्ञ के 360 दिनों में इस प्रकार दस दस दिनों में छत्तीस आख्यान प्रस्तुत किये जाते थे।’ (शर्मा :1992, पृ.3)

इस प्रकार आख्यान की परंपरा वैदिक काव्य तथा यज्ञ से उपजी। यज्ञ का सारा स्वरूप अभिनयात्मक था। जो आख्यान-उपाख्यान यज्ञ के मंच पर चलते थे, उनके साथ गायन, वादन तथा अभिनय सहज रूप में अनुषक्त रहते थे। इन आख्यान-उपाख्यानों को

प्रस्तुत करने का काम सूत करते थे। यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में यज्ञ में आहूत किये जाने वाले लोगों की सूची दी गई है, उसमें आरंभ इस प्रकार किया गया है 'नृत्ताय सूतं, गीताय शैलूषम्...' नृत्त, गीत आदि के लिए यज्ञ में सूत, शैलूष आदि को बुलाया जाता था। (त्रिपाठी, 1992)

इन सूतों में से ही कुछ ने आख्यानों और उपाख्यानों को यज्ञ तथा अन्य अवसरों पर प्रस्तुत करने का काम संभाला। सूत जाति ही हरफनमौलाओं की थी। सूत वास्तुविद्या में निपुण भी होते थे, रथ बनाने का धंधा भी करते थे, यज्ञ के अनुष्ठान में यज्ञवेदी बनाने के लिए भी उन्हें बुलाया जाता था। यज्ञवेदी की नाप के लिए हाथ में सूत्र या नापने की डोरी रखने के कारण उन्हें सूत्रधार कहा गया। महाभारत के आदि पर्व में जनमेजय के नागयज्ञ का वर्णन है। इसमें यज्ञवेदी बनाने के लिए जो सूत्रधार बुलाया गया था, उसके लिए कहा गया है-

स्थपतिर्बुद्धिसम्पन्नो वास्तुविद्याविशारदः।

इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा॥

(महाभारत, आदिपर्व, 51.15)

यहाँ एक ही सूत को स्थपति, वास्तुविद्याविशारद, सूत्रधार, सूत तथा पौराणिक भी कहा गया है। रोमहर्षण तथा उग्रश्रवा जैसे सूत महाभारत तथा पुराणों को लोगों के सामने कहते या सुनाते आये, इसलिए समाज में उनका दर्जा ऋषियों से कम नहीं समझा गया। इस प्रकार वर्णव्यवस्था की दृष्टि से वर्णसंकर की कोटि में आने वाले सूतों

ने आख्यान-उपाख्यानों की हमारी महान् जातीय विरासत और कला की धरोहर को सदियों तक वाचिक परंपरा में सुरक्षित और संवर्धित किया।

ऊपर अश्वमेध आदि यज्ञों में प्रस्तुत किये जाने वाले आख्यानों की बात आयी है। इन आख्यान-उपाख्यानों का संबंध सीधे रंगमंच की हमारी परंपरा से जुड़ता है। महाभारत जैसे विपुलकाय प्रबंधों को सूत जाति के लोग ऋषियों या आम जनता के आगे प्रस्तुत करते थे। इन प्रबंधों में बीच-बीच में प्रसंगवश व्याख्यान जुड़ते जाते। महाभारत में नलोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान इसी प्रकार के उपाख्यान हैं। उपाख्यानों की यह संपदा बढ़ती गई, बाद में इन्हीं उपाख्यानों को केवल पाठ्य ही नहीं, उसके साथ अभिनय, गायन को भी जोड़कर-प्रस्तुत किया जाने लगा। भोज ने अपने श्रृंगार प्रकाश में उपाख्यान और आख्यान को परिभाषित करते हुए यही विवरण दिया है। वे कहते हैं--

नलसावित्रीषोडशराजोपचारवत् प्रबन्धान्तः।

अन्यप्रबोधनार्थं यदुपाख्याति तदुपाख्यानम्॥

आख्यानसत्तां तल्लभते यद्यभिनयन् पठन् गायन्।

ग्रन्थिक एकः कथयति गोविन्दवदवहिते सदसि॥

इस प्रकार पुराणवाचक या आख्यान प्रस्तुत करने वाले सूत आदि का सीधा सम्बन्ध नाटक की वाचिक परम्परा से जुड़ता है।

सन्दर्भ सूची :

- 1- घोष मनमोहन: कंटीब्यूशन टु दि हिस्ट्री आफ दि हिन्दू ड्रामा, फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1958
- 2- माकड़, डी.आर.: दि टाइम्स ऑफ संस्कृत ड्रामा, ऊर्मि प्रकाशन मंदिर, कराची, 1936
- 3- त्रिपाठी, राधावल्लभ: लेक्चर्स आन नाट्यशास्त्र, सेंटर आफ एड्वांस्ड स्टडी इन संस्कृत, पूना विश्वविद्यालय, पूना, 1991
- 4- शर्मा, रामकरण: वाचिक काव्य परंपरा : भारतीय साहित्य का मूल, मध्यभारती, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर की शोधपत्रिका, मानविकी खंड, अंक- 34, दिसंबर, 1992

वाचिक परम्परा और लोक-विवेक

बद्री नारायण

‘शक्ति की करो मौलिक कल्पना’ (‘राम की शक्ति पूजा’)

वाचिक परम्परा और लोक विवेक में गहन सम्बन्ध है। लोक विवेक वाचिक परम्परा में सतत् प्रवाहमान रहता है। अतः लोक विवेक को समझना है तो वाचिक परम्परा का अवगाहन करना ही होगा। क्योंकि लिखित परम्परा अपने उपस्थित रूप में प्रायः अभिजन रूप तो ग्रहण नहीं कर लेती किन्तु लोक विवेक से कट अवश्य जाती है। क्योंकि लोक विवेक जड़ होते ही ‘लोक विहीन विवेक’ में बदल जाता है। लोक विवेक तो सतत् रूप से परम्परा में प्रवाहमान किन्तु निरंतर अपने को ही निर्मित एवं विनिर्मित, रचित एवं विरचित करता चलता है। इस समय में लोक विवेक को समझना क्यों आवश्यक है? यह प्रश्न उठ सकता है। वस्तुतः जिस रास्ते पर हमारी मानवीय यात्रा संभव होती जा रही है, उस पर चलते-चलते हम बौद्धिकता के ऐसे भयावह अंधकूप एवं अपने ही अतितार्किकता अतिबौद्धिकता एवं अतिविवेक के कारण सर्वग्रासी संकटग्रस्तता में फँस गये हैं। जिससे जितना निकलना चाहते हैं उतना ही उसमें फँसते भी जाते हैं। इसलिए समकालीन समय में ‘लोक विवेक’ को समझना उससे अगर हो सके तो कुछ संवाद करना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

इस लेख में मैं सर्वप्रथम लोक विवेक का सन्दर्भ उपस्थित करना चाह रहा हूँ। ‘लोक विवेक’ पर विमर्श क्यों आवश्यक है? उसका आन्तरिक रचनाशास्त्र क्या है? ‘लोक विवेक’ की अभिव्यक्ति के माध्यम क्या हैं? ये सभी प्रश्न इस अध्ययन की परिधि में हैं। इस अध्ययन का स्वरूप सैद्धांतिक एवं अनुभववादी दोनों है। यह लोकायन के स्रोतों पर आधारित है। इसमें लोकायन के लिखित और मौखिक, संकलित और असंकलित प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है।

इस अध्ययन की प्रविधि विभिन्न समाज वैज्ञानिक प्रविधियों के अन्तः संवाद के मध्य ही विकसित होने के क्रम में है। इस अन्तः संवाद की स्थिति की मौलिक निर्मिति के लिए ‘लोक विवेक’ की आवश्यकता हमें प्रतीत होती है क्योंकि बिना ‘लोक विवेक’ के लोक विवेक को समझना कठिन एवं व्यर्थ है। भारत में अनेक विद्वानों ने ‘लोक एवं समाज शास्त्र’ पर अध्ययन करते हुए ‘इस लोक विवेक’ को प्राप्त

करने की कोशिश की है। इस संदर्भ में मैं प्रो. श्यामाचरण दुबे प्रभृत विद्वानों के शोध साहित्य का स्मरण करना चाहूँगा। इस गवेषणापूर्ण अध्ययनों में लोक विवेक के सन्दर्भ में कई प्रश्न उठाते हुए उसकी महत्ता की स्वीकृति दी गयी है। भारतीय समाज के अध्ययन की समग्र दृष्टि की प्राप्ति के लिए इस लोक विवेक की आवश्यकता है। इनमें यह अनुभूति कहीं-कहीं प्रत्यक्ष, कहीं-कहीं परोक्ष दिखायी पड़ती है। इनके अतिरिक्त कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो 'लोक-विवेक' की चर्चा वैसे ही करते हैं 'जैसे हर चीज की'।² ऐसे अध्ययनकर्ता लोक विवेक शब्द का बौद्धिक इस्तेमाल तो करते हैं परन्तु सही अर्थों में न तो उसे समझ पाते हैं न ही उसकी व्याख्या कर पाते हैं। क्योंकि वे भूल जाते हैं कि लोक विवेक लोक संस्कृति का सत् है।

फ्राँसीसी विद्वानों की दुनिया में एक वर्ग द्वारा लोक के सम्बन्ध में 'संस्कृति-संक्रमण सिद्धांत'³ प्रचलित है। जिसकी ध्वनि यह है कि असंस्कृत लोक अभिजात्य संस्कृति के सम्पर्क से ही सुसंस्कृत होता है। यह 'अवधारणा' कहीं न कहीं उस 'लोक-विवेक' को न समझ पाने के कारण विकसित हुई है। जो 'अभिजन बौद्धिकता' से कम सुरुचिपूर्ण एवं पारदर्शी संज्ञान नहीं है।

वस्तुतः लोक विवेक का जन्म निरपेक्ष में या ज्ञानकोषों को रटकर नहीं होता, बल्कि यह सम्पूर्ण इतिहास और पुराइतिहासकार के अनुभव जन्य प्रतीति से जन्म लेता है तथा ज्ञानकोषों का निर्णायक बनता है। लोक विवेक वह है जिसके व्यावहारिक ज्ञान की आधार पोथियाँ नहीं हैं।⁴ पाश्चात्य लोक संस्कृतिविदों ने लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति को मनुष्य की 'आदिम अवस्था की अभिव्यक्ति' समझा है। ऐसे विद्वान भी लोक संस्कृति में निहित 'लोक विवेक' की आत्मा से साक्षात्कार न कर पाने के कारण इस प्रकार के भ्रामक निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। यूँ भी भारत में लोक संस्कृति के अध्ययन का भारतीय प्रकरण विकसित करने की आवश्यकता है। इसी में भारतीय लोक संस्कृति का स्वरूप भी हमें मिलेगा। सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में 'लोक विवेक' अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इसी 'असभ्य लोक में'⁶ वे ऋषि एवं मनीषी ज्ञान की साधना करते थे जिनके विचारपुँज आज भी फैल रहे हैं। ये प्रज्ञा पुरुष स्वयं में और 'लोक विवेक' में परावर्तित होते रहते थे। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में लोक विवेक की छाया दिखायी पड़ती है। इसी मगध से लेकर कुशीनगर के वनों में बुद्ध विचरण किया करते थे। इस प्रकार भारतीय लोक विवेक के निर्माण में इन समस्त प्रज्ञा पुँजों का योग रहा है। कोई इसे 'भारतीय विवेक की समग्र निर्मिति' के रूप में भी व्याख्यायित कर सकता है। इस प्रकार भारत में लोक संस्कृति के अध्ययन में इन पश्चिमी

अवधारणाओं से मुक्ति उस ऐतिहासिक सच की माँग है जिसमें यह 'लोक विवेक' निर्मित हुआ है। यूँ भी प्रकृति की भयावहता को उस आदिम मानुष ने क्या बिना विवेक ही झेल लिया? क्या अच्छा, क्या बुरा के विवेक के बिना ही उस अन्धयुग में जीवित रहा? भले ही यह 'अच्छा-बुरा' उस समय 'शुभ-अशुभ' के रूप में विद्यमान रहा हो।

क्या उनके जीवमान बने रहने में उनकी 'चेतना बीज' का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था? क्या वह, जिसने सभ्यता के विभिन्न चरणों पर काव्य, संगीत, लेख, लिपि, संस्कार, रीति-कल्प, रिवाज विकसित किया, अविवेकी था? ये सारे प्रश्न आधुनिक भारतीय विमर्श में बार-बार उठाने की आवश्यकता है। लोक विवेक आविष्कारक भी होता है और निर्णायक भी उसने आग खोजा तथा 'आग-का शास्त्र' भी विकसित किया। उसने लोहा खोजा तथा लोहे का व्याकरण भी बनाया। इसी लोक विवेक ने कबीर, रहीम, दादू, रैदास को भी जना।

यहाँ एक प्रश्न और हमारे चिन्तन की परिधि में है। यह प्रश्न है कि उन्नीसवीं शताब्दी में क्या हुआ कि इस लोक विवेक के नकार का अभिनय प्रारंभ हो गया। यह प्रश्न भारतीय समाज एवं उसकी समस्याओं की अभियांत्रिकी में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः यह कालखण्ड पूरे विश्व में उपनिवेशवाद के प्रसार का था। उपनिवेशवाद ने साम्राज्यवाद से ज्यादा जागरूक ढंग से ज्ञान, विज्ञान का नवीन शास्त्र विकसित किया। इस नवीन शास्त्र ने उपनिवेशकों को जड़ से काटा। भारतीय सन्दर्भ में सचमुच 'उपनिवेशवाद ने हमारी आत्मा में विखंडन पैदा किया।'⁷ इस नवीन और औपनिवेशिक ज्ञान शास्त्र में विवेक को नकारा गया तथा 'बौद्धिकता' को स्थापित किया गया। वह बौद्धिकता जिसकी निर्मिति का आधार 'औपनिवेशिक ज्ञान' था। वह जो अन्तर्दृष्टि को ज्ञान की संरचना से काटती थी, स्थापित हुई। इस बौद्धिकता में 'समग्रता' के विरुद्ध विशेषज्ञता को विकसित किया गया। अतः ऐसे बौद्धिकों एवं उनकी सन्तानों ने किसी भी समस्या को एकांगी होकर देखना शुरू किया। परिणामतः ढेर सारी अवधारणाएँ, नीतियाँ एवं व्यवहार विघटित एवं विखण्डित होकर 'एक भ्रमपूर्ण परिदृश्य' में परिवर्तित हो गये। एक 'कन्फ्यूजन' का दौर शुरू हो गया। विवेक के नकार ने किसी भी समस्या के मूल्यांकन में अन्तर्दृष्टि को प्रच्छन्न ढंग से समाप्त करना शुरू कर दिया। हम यह भूल गये कि विवेक बौद्धिकता की पारगामी चेतना है। हमारे ज्ञान से वह हंस विलुप्त हो गया जो दूध का दूध और पानी का पानी कर सकता था। दुर्घटना तो यह हुई कि हमने जो विकसित किया वह पूर्व का 'स्थानापन्न' तथा समानान्तर न होकर 'ध्वंसकारी' हुआ। भारतीय ज्ञान परम्परा में तो 'बौद्धिकता' की अवधारणा ही नहीं, यहाँ

‘विवेकी’ हुआ करते थे। क्या कबीर, दादू, रैदास बौद्धिक थे? क्या घाघ और भड्डरी बौद्धिक थे? इस प्रकार लोक विवेक जिसे हम विकसित कर ‘फलदायी बौद्धिकता’ तक पहुँच सकते थे, उन्सकी जगह हमने, ‘औपनिवेशिक (त्रासद) बौद्धिकता को स्थापित कर दिया। इसी बौद्धिकता की मानसिकता ने लोक संस्कृति में ‘विवेक’ को जाने-अनजाने अनदेखा किया। यह एक प्रकार से ‘देशज से औपनिवेशिक का, लोक से औपनिवेशिक भद्र के मध्य संज्ञान के आधिपत्य की लड़ाई थी, जिसमें सत्ता, संचार एवं संसाधन का उपयोग कर औपनिवेशिक बौद्धिकता विजयी हुई।

विवेक कोई जड़ अवस्थिति नहीं है, बल्कि सतत् विकासमान अवस्थिति है, जो सदैव यथार्थ के अन्तःसंवाद से स्वरूप ग्रहण करता है। जब इतिहास प्राचीन से आधुनिक स्थिति प्राप्त कर गया है तो इतिहास के इस लोक का विवेक भी विकसित हुआ होगा। कोई कह सकता है कि सम्भव है यह लोक विवेक नागर प्रभाव के तहत विकसित हुआ हो। ऐसा कहते हुए हम भूल जाते हैं कि लोक के पास विवेक की वह छननी है जिसमें उसके ‘जीवन के पर्यावरण के लिए’ आवश्यक तत्व ही छनकर आते हैं। यह ‘लोक विवेक’ विभिन्न वर्गीय विवेकों के अन्तः संवाद से निर्मित एक ऐसी अवस्थिति है जो सम्पूर्ण समाज की बेहतरी, शान्ति एवं समन्वय की कामना करता है। इसके चिन्तन में वर्गीय विभेद होने के बावजूद एक आदर्श समन्वय है जिसकी प्राप्ति के लिए विश्व का हर दर्शन अपने उच्चतम रूप में प्रयास करता है। इस विवेक की निर्मिति को सांसारिक कमजोरियाँ प्रभावित करती हैं।¹⁰ किन्तु अपने सम्पूर्ण रूप में यह उनमें रहते हुए भी उनसे मुक्त होता है। लोक विवेक में सब कुछ अच्छा-अच्छा नहीं होता। इसमें ‘द्विविधात्मकता’ एवं ‘भ्रमात्मकता’ होती ही है। क्योंकि कई मुहावरे, लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जो सामाजिक बुराईयों का समर्थन भी करती हैं। किन्तु ये उसी ‘वर्गीय विवेक’ की उपज होती हैं। किन्तु वर्गीय विवेक की लघुता से ‘लोक विवेक’ की महानता में परावर्तन के क्रम में काफी कुछ आदर्श हो जाता है, संकीर्णता कम होती जाती है।

इस अध्ययन में मैं ‘लोक विवेक’ का एक ढाँचा प्रस्तावित करने का प्रयास कर रहा हूँ।

भूमिका

लोक विवेक, वाचिक परम्परा में शामिल लोकायनों में सुझाव, प्रतिक्रिया, गलत के लिए उलाहना, बुरे के लिए उपहास इत्यादि के रूप में अभिव्यक्त होता है। यह सर्वाधिक स्पष्ट रूप से ‘व्यंग्य’ के

प्रारूप में परिलक्षित होता है। क्योंकि लोक में व्यंग्य की अद्भुत क्षमता होती है। आज जबकि पूँजीवादी विकास के दौर में हम सबकी ‘व्यंग्य क्षमता’ नष्ट होती जा रही है, लोक में तीक्ष्ण हो रहा व्यंग्यार प्रासंगिक है। ‘व्यंग्य चेतना’ वहीं रह सकती है जहाँ कुछ ‘नैतिक मानदण्ड’ हो जिसका पक्ष साफ हो। इस क्षण के दौर में भी लोक के पास यह सब बचा हुआ है। बुरे और भले का अन्तर, पथ और कुपथ के भेद, आदमीयत के निर्धारण में लोक विवेक मुखरित होता है। इस संदर्भ में मैं ‘घाघ की कहावतों’ को आँकड़ों के साथ प्रस्तुत कर रहा हूँ। भोजपुरी अंचलों में घाघ की अनेक कहावतें आज भी किसानों के कार्य सम्पादन में वेद की तरह प्रयोग की जाती हैं। बैल खरीदना हो, फसल बोना हो, खेत की गोड़ाई हो, रोपाई का संदर्भ हो, किस हवा के बहने पर वर्षा होगी, इन सबके लिए घाघ की कहावतें दिशा-निर्देश करती हैं। लोकायनविदों ने धाध के बारे में जो जानकारियाँ इकट्ठी की हैं, उनमें सर्वाधिक गवेषणापूर्ण प्रयासों के बाद प. रामनरेश त्रिपाठी उन्हें ‘कन्नौद का वासी’ बताते हैं।

वे सम्भवतः अहीर जाति में जन्में थे, हालांकि कुछ विद्वान उन्हें विप्र भी मानते हैं।¹⁰ किन्तु घाघ बाद के समय में ‘व्यष्टि’ नहीं बल्कि ‘समष्टि’ में रूपान्तरित होते दिखते हैं। कृषक जनता अपने विवेक से कहावतों का सृजन कर उसे घाघ के नाम से जोड़ देती है। इस प्रकार घाघ के नाम से मिलने वाली कहावतें समष्टि के लोक विवेक का प्रतिनिधित्व करती हैं। लोक विवेक अपने पारम्परिक अनुभव एवं सूक्ष्म निरीक्षण से कृषि और मौसम के बारे में अन्यतम टिप्पणियाँ करता है। इस सन्दर्भ में यह ‘लोकोक्ति’ दृष्टव्य है-

माघ में घारै, जेठ में जारै।

भादौ सारै, तेकर मेहरी डेहरी पारै।को।¹¹

अर्थात् गेहूँ का खेत माघ में जोतना चाहिए, फिर जेठ में जिससे घास जल जाये, फिर भादौ में जोतकर सड़ावै। जो किसान ऐसा करेगा, उसी की स्त्री अन्न भरने के लिए कोठिला (अन्नागार) बनायेगी। यानि उसके यहाँ फसल खूब होगी। यह अधुनातन कृषि विज्ञान का समानान्तर कृषि ज्ञान है।

मौसम के सम्बन्ध में लोक विवेक की एक टिप्पणी देखिये-

‘जब वर्षा चित्रा में होय। सगरी खेती जावै खोय।¹²

(अर्थात् जब चित्रा नक्षत्र में वर्षा हो तो सारी खेती बर्बाद हो जायेगी)

‘कृषि तन्त्र’ में शीर्ष पर बैठा सामन्त जिसे लोक परिभाषा में ‘चौधरी’ और ‘टाक’ का सम्बोधन किया गया है, उसके प्रति घाघ की यह व्यंग्योक्ति है।

आठ गाँव का चौधरी, बारह गाँव का राव
अपने काम न आय तौ, अपनी ऐसी तैसी में जाव॥¹³

अर्थात् आठ गाँव का चौधरी हो या बारह गाँव का राव पर
जो अपने काम न आवे तो वह ऐसी-तैसी में जाये।

कृषि और राजतन्त्र के सम्बन्धों पर लोक विवेक की प्रतिक्रिया
इस तरह से है-

जेकर ऊँचा बैठना, जेकर खेत नीचान।
ओकर बैरी का करै, जेकर भीत दीवान॥¹⁴

यह एक प्रकार से कृषक अभिजात्य के उभार की भी कविता
है जिसमें कृषक अभिजात्य के निर्माण के तत्वों की व्याख्या भी है।

लोक विवेक में आदमीयत के निर्धारण का नैतिक मानदण्ड भी
है। इसकी परिच्छाया घाघ की कहावतों में दृष्टव्य है-

ओछे बैठक, ओछे काम! ओछी बातें आठों जाम।
घाघ बताये तीनि निकाम! भूलि न लीजो इनकौ नाम॥¹⁵

अर्थात् जो ओछे लोगों के साथ बैठता है, जो ओछे काम
करता है और जो रात दिन ओछी बातें करता रहता है। घाघ कहता
है ये तीनों निकम्मे आदमी हैं। इनका नाम भूलकर भी मत लेना।

लोक विवेक की यही निरन्तरता भड्डरी की कहावतों में भी
मिलती है, जिसे लोकायनों में घाघ की बहुल बताया गया है। कहीं-
कहीं उसे घाघ की 'प्रेमिका-पत्नी' भी बताया गया है। सम्बन्ध स्थापना
के इस प्रकार की विभिन्न मिथकीय कथाओं के भीतर लोक विवेक को
नैरन्तर्य विकसित करने के प्रयास के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

घाघ और भड्डरी की यह परम्परा संस्कृत के वाचस्पति केश
के पराशर से मिलती है।¹⁷

लोक विवेक में सामाजिक संरचना, उसके ढाँचे, उसमें अन्तः
एवं वाह्य की गतिशीलता, परिवर्तनों की प्रक्रिया का सूक्ष्म अवलोकन
तथा अन्तःबोध भी है। लोक विवेक बाजार मूल्य एवं पर्यावरण के
भी सम्बन्धों को समझता है-

माघ छटी मर जै नहीं, मँहगा होय कपास
साते देखा निर्मली, तो नहीं कछु आस॥¹⁸

माघ सुदी छठ को अगर बादल न गरजें तो कपास मँहगा
होगा। पर सप्तमी को आकाश बिलकुल साफ हो तो, कुछ भी आशा
नहीं।

इस प्रकार लोक विवेक प्रत्येक समस्या का 'समग्र सन्दर्भ'
विकसित करता है। जबकि हमारी 'बौद्धिकता' किसी भी समस्या को
एवं एकांगी ढंग से देखने की अभ्यस्त है। वह छोटे-छोटे निरीक्षणों
से बड़े निष्कर्षों पर पहुँचती है। हमारी आज की 'बौद्धिकता' की तरह
वह अवधारणा बनाकर सत्य की खोज करने नहीं जाती बल्कि सत्य
एवं तथ्यों से अवधारणा तक पहुँचती है।¹⁹

इस सम्पूर्ण व्याख्या के ढाँचे में सबसे रोचक है- वाचिक
परम्परा लोक बुझक्कड़ की संघटना। 'लाल बुझक्कड़' को एक
व्यक्ति के रूप में नहीं वरन् एक प्रतीक के रूप में भी देखा जाना
चाहिए। वस्तुतः समाज में नयी चुनौतियों का सामना करने के क्रम
में लोक विवेक के नये-नये रूप परिलक्षित होते हैं। समाज की
द्विविधात्मक, भ्रमपूर्ण एवं छलनामय तौत को काटने के लिए
'सामुदायिक लोक' ने 'लाल बुझक्कड़' के प्रतीक को जन्म दिया।
वाचिक परम्परा में लाल बुझक्कड़ एक ऐसे विवेकवान पुरुष के रूप
में उभरे हैं। जो दूर छद्म, भ्रम एवं छल को जान जाते हैं तथा उस
छल को कहावतों एवं बुझौलियों में स्पष्ट कर देते हैं। इस प्रकार
छद्मपूर्ण एवं 'बरह रूपिया' सामाजिक पर्यावरण को भेदने के लिए
लोक मानसिकता ने बुझौलियों का फार्म चुना। इस सम्पूर्ण भ्रमात्मकता
के भेदन के लिए लोक विवेक ने स्वतः को 'लाल बुझक्कड़' के रूप
में परिभाषित किया। इस प्रकार 'समाज' के छलनामय स्तरों से जूझने
का लोक विवेक का यह अपना माध्यम है जिसमें जटिलता संघटना
को भी कहावतों एवं बुझौलियों के रचनात्मक रूप में सरलतम बनाकर
कह देती है। यँ तो 'लोकायनविदों' ने 'लाल बुझक्कड़' को एक
व्यक्ति के रूप में पहचानने का यत्न किया है।²⁰ किन्तु लोकायनों के
सम्पूर्ण इतिहास में 'लाल बुझक्कड़' एक व्यक्ति न होकर सामाजिक
मिथक एवं सामुदायिक प्रतीक में रूपान्तरित होते दिखायी पड़ते हैं।
'लाल बुझक्कड़' की बुझौलियों के मूल्यांकन में सबसे रोचक तथ्य
यह है कि इनमें 'द्विविधात्मकता' का मुकाबला 'द्विविधात्मकता' से
किया गया है। इन बुझौलियों में यदि कोई रास्तों में अस्पष्ट रूप से
उभरे हाथी के पाँव दिखाकर किसी से पूछे कि यह क्या है तो
लोकोक्ति यँ बनती है-

लाल बुझक्कड़ बूझिया और न बूझा कोय,
पैर में चक्की बाँध के हरिन न कूदा होय।²¹

यह समाज में बढ़ रही 'भ्रमात्मकता' का ही रचनात्मक
उत्पादन है तथा उसी पर व्यंग्य भी करता है तथा उसी की शैली में
उसका उपहास भी करता है।

इस प्रकार यह वाचिक परम्परा में प्रवाहमान 'लोक विवेक' की प्रस्तावना भर है। इसके खोज का काम अभी शेष है। यदि इस लोक विवेक से अन्तः संवाद कर हमने अपनी बौद्धिकता विकसित की होती, यदि सत्ता एवं संचार के साधनों ने इस लोक विवेक के

सकारात्मक फलित का सामाजिक पर्यावरण के निर्माण में सहयोग लिया होता तो हमारे समाज की मूलभूत प्रवृत्तियाँ मजबूत हुई होती तथा नये सामाजिक इतिहास की रचना का नया सन्दर्भ बनता।

सन्दर्भ

1. इस सन्दर्भ में आनन्द कुमार स्वामी का शोध कार्य 'दि नेचर ऑफ फोकलोर एण्ड पॉपुलर आर्ट' क्वार्टर सिजनेस ऑफ मिथिक सोसायटी १९३६-३७, १-१२-२६, प्रो. श्यामाचरण दुबे का शोध कार्य इंडियन सोसायटी नेशनल बुक ट्रस्ट दिल्ली।, परम्परा, इतिहास बोध और संस्कृति, राधाकृष्ण, दिल्ली इत्यादि दृष्टव्य है।
2. इन्द्रदेव, फोक कल्चर एण्ड प्रिजेन्ट सोसायटी इन इंडिया, रावत, जयपुर।
3. संस्कृति-संक्रमण सिद्धांत को अभी हाल में रॉबर्ट मुकामवेल्ड ने पुनः विकसित किया है। रॉबर्ट मुकामवेल्ड, कल्चर पॉपुलेयर एट कल्चर डेस इलिट्स डैन्सला फ्रेन्स मॉडर्न सिसली, पेरिस, 1978
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी, लोक साहित्य का अध्ययन, जनपद पत्रिका, अक्टूबर 1952, पृष्ठ 65
5. प्रो. चाइल्ड, गुमेर तथा लूसी पौंड आदि विद्वानों ने ऐसा मत व्यक्त किया है तथा इसे असंस्कृत समाज का विषय माना है।
6. वही।
7. ए.के. सरन, वेस्टर्न इम्पैक्ट ऑन इंडियन वैल्यूज, रोमेश भापर (सम्पा.) ट्राइब, कास्ट एन्ड रिलिजन इन इंडिया, मैकमिलन, दिल्ली 1977
8. इन्द्र देव, फोक कल्चर एन्ड प्रिजेन्ट सोसायटी इन इंडिया, रावत जयपुर 1989
9. सुधीरचन्द्र, द ऑप्रेसिव प्रेजेन्ट, लिट्रेचर एण्ड सोशल कॉन्शसनेस इन कॉलोनियल इंडिया, ओ.यू.पी. दिल्ली, 1993
10. रामनरेश त्रिपाठी, (सम्पा.) घाघ और भड्डरी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1949, पृष्ठ 5
11. वही पृष्ठ 50
12. वही पृष्ठ
13. वही पृष्ठ 38
14. वही पृष्ठ 40
15. वही पृष्ठ 37
16. वही पृष्ठ 50
17. वाचस्पति कोश में पराशर का एक श्लोक इस आशय का है।
18. रामनरेश त्रिपाठी (सम्पा.) घाघ और भड्डरी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद 1949
19. आज के अनेक समाज विज्ञान के विद्वान परिकल्पना के स्थान पर प्रारंभ में ही 'अवधारणा की स्थापना' कर सत्य की खोज करते हैं।
20. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1979
21. रामनरेश त्रिपाठी (सम्पा.) घाघ और भड्डरी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद 1949 पृष्ठ 84

बुन्देली लोक गाथाएँ

वीरेन्द्र कुमार द्विवेदी

बुन्देलखण्ड में भगतों का प्रचलन है। जिनमें देवी गीत गाये जाते हैं। देवी जी के भक्तों की गाथाएँ भी भगतों में गायी जाती हैं। भगतें अधिकांश नवरात्रि में देवी जी के सम्मुख गाते हैं। देवी जी के मंदिर में किसी भी समय गायी जाती है।

भगतें गाने वाली मण्डली होती हैं। जिसमें सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं होती है, किन्तु छह या आठ सदस्यों से कम सदस्य नहीं होते हैं। इन सदस्यों में वाद्य यंत्र वाले भी होते हैं। जो ढोलक, मृदंग, नगड़िया, मजीरा, लोटा, वाद्य यंत्रों का प्रयोग करते हैं। सर्वप्रथम समस्त सदस्य दो समूहों में विभक्त हो जाते हैं। एक समूह भगत प्रारंभ करता है। दूसरा समूह उसको दुहराता है। भगत धीमी गति की लय के गायन से प्रारंभ की जाती है। इसके पश्चात् गीत की लय तीव्र होती जाती है। लय जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब स्वर और संगीत एक हो जाते हैं। इसके साथ ही भगत समाप्त कर दी जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण गाथा को छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर गाते हैं।

धाँधू भगत

राजा रानी पोंडे महल में मन की बात सुनाव माँ
अपने घर बालक हे नई कैसें चल है नाँव माँ
दिन की उँगन किरन की वेरा राजा सेवा खों जाय माँ
माई के भुवन में एक त्रिया रोवे असुवन भीगे गुलसाल माँ
कै तोरी सास ननद दुख देवे के माई के कुल हीन माँ
घरई के सैया बाँझ कहत हैं जो दुख सहो ने जाय माँ
के माता हमें बालक दे दे न मढ़ तजत प्रान माँ

जो हम तुमको बालक देहें हम खों का हे देवे माँ
 जो तुम हम खों बालक दे हो सेवक होय तुमार माँ
 एक फूल चम्पे को दीनों जेई दिये वरदान माँ
 एक कली के धाँधू हुईये दूजे के रणधीर माँ
 पेली मास जब लगे रनिया के जियरा रहे हरषाय माँ
 दूजे मास जब लगे रनिया के मढ पे दियरा जलाय माँ
 उमड़ घुमड़ माई तोरे जस गावें जय बोलो हिंगलाज माँ
 सगुन धरी बालक भये माया धाँधू भगत भये नाम माँ
 देवी जालया यज्ञ रचें हैं सब देव न्योत बुलाय माँ
 चारऊँ दिशा से चारई जने आये धाँधू भगत ने आय माँ
 तुम चले जाओ मोरे वीर लंगडवा धाँधू भगत लियाव माँ
 हाथ लये फूलन की छडियाँ धाँधू लिवावन जाय माँ
 इक बंद नाके दो बंद माया तीजे बंद पोंचे जाय माँ
 खोरन खोरन फिरे लंगडवा धाँधू जन भुवन बताओ माँ
 राजा प्रजा एक सी माया धाँधू भगत घर कौन माँ
 खेलत लरकन पूछियो माया धाँधू जन भुवन बताय माँ
 ऊँची अटरियाँ लाल किवरियाँ धरम ध्वजा फहराय माँ
 तुलसी के विरवा दोर में माया सूरज सामू दोर माँ
 कां गये रे मोरे धाँधू भगतिया तोय दुर्गा बुलवाय माँ
 धाँधू जन सोवे रंग महल में रनिया ढोरे बाब माँ
 उठो उठो मोरे धाँधू भगतिया तोय बुलवाये हिंगलाज माँ
 तुमें प्यारी माता अपनी हमें प्यारी हिंगलाज माँ
 मिल रे धाँधू माता अपनी गरव रहे नौ मास माँ
 मिल रे धाँधू पिता आपने जिनने जन्म दीनो माँ
 मिल रे धाँधू भैया आपने गहिए दाहिनी बाँह माँ
 मिल रे धाँधू बहिना अपनी जिनने गोद खिलाय माँ
 हिल मिल के धाँधू चले माया हिंगलाज खों जाय माँ
 ने धाँधू खों माया बाड़ी ने रनियाँ विलमाय माँ
 असी कोस लो सतनद बाड़ी किस विद उतरे पार माँ
 नदी सतनद को चम्पा घनो है काट बनैयो नाव माँ
 माता हटके बाबुल हटके हिंगलाज ने जाव माँ
 हिंगलाज की नेची ऊँची घटियाँ तुम पे चढ़ी ने जाय माँ
 वहिन पायरो गै गई माया मईया घुडर की पार माँ
 वहिन पायरो छोड़ी मोरी माया मैया छोड़ो घुडर की पार माँ
 हिंगलाज के आये बुलौआ हिंगलाज खों जाय माँ
 जब ढुर लागे कुँवार के महिना धाँधू सजे निशान माँ
 टेरो टेरी बारी सुगर नेनिया नगर बुलौआ देव माँ
 धाँधू के साजे सब दल साजो और कुअल पनहार माँ

कोऊ चलो घर भोजन करके कोऊ चले निरहार माँ
 सबरे भगतिया भोजन करके धाँधू चले निरहार माँ
 रात दिना की दौरें होवे दौर भई सब रात माँ
 असी कोस लो सतनद बाड़ी किस विद उतरे पार माँ
 नदी सतनद को चम्पा घनो है काट बनाओ नाव माँ
 कहाँ से आने बाढई माया कहाँ से सुतयार माँ
 हिंगलाज के बाढई माया नगर कोट सुतयार माँ
 चम्पा काट के नाव बनाई डारी सतनद घाट माँ
 नदी सतनद को जबर घटोइया नाव लगन न देवे माँ
 काहे माँगे जबर घटोइया धाँधू कछु ने देवे माँ
 बुकरामाँगे जबर घटोइया धाँधू कुछ न देवे माँ
 धरमी धरमी पार उतर गये पापी रहे मझधार माँ
 हाथ जोड़ ठांडे भये माया धाँधू को करियो पार माँ
 हुडलक जावे दल धाँधू के धूर चढ़ी आकाश माँ
 ऊँचे कंगूरों देखे जालपा दल धाँधू के आय माँ
 दलों दलों हे पीरी पताका धाँधू लाल ध्वजा फहराय माँ
 कोऊ जन मेले टीलो टंगरो कोऊ जन कैल कछार माँ
 धाँधू जन मेले अपने बगीचों रोपे धरम निशान माँ
 कोऊ चढावें लोंग लायची कोऊ खारक बादाम माँ
 कोऊ चढायें ध्वजा नारियल कोऊ सुपारी पान माँ
 धाँधू चढाये शीश आपने केवल के दरबार माँ
 सबरे भगतिया घर खों आये धाँधू भगत ने आय माँ
 घर घर पूछे धाँधू की दुल्हन मोरे पति कोने विलमाय माँ
 तोरे पति की का कहँ दुल्हन मोसे कही न जाय माँ
 कोऊ चढावे निबू नारंगी कोऊ सुपारी पान माँ
 धाँधू चढावे शीश आपनो केवल के दरबार माँ
 इते से डगरे धाँधू की दुल्हन घर अपने जाय माँ
 ताते सीरे पानी धराये झपट करे असनान माँ
 होम धूप थाली में धर लये और सारे सामान माँ
 घर से डगरे धाँधू की दुल्हन गैरे ढोल बजाये माँ
 एक बंद नाके दो बंद माया तिज बंद पोंचे जाय माँ
 मढ खों गये दायने माया डग डग होम लगाये माँ
 आवत देखी देवी जालपा हन लये बज्जुर किवार माँ
 धरम किवरियाँ खोलो जग तारन दुल्हन ठाँडी द्वार माँ
 वीरा लंगडवा खों आज्ञा दीनी खोलो बज्जुर किवार माँ
 बहुत दिनों में आयी बारी दुल्हन हमें का भेंट ल्याई माँ
 अपने थार भुवन में धर दये आरत रही सजाय माँ
 पेली भेंट मोरे पति की लई है दूजी हमारी लेव माँ

कहें कालका सुनो जालपा धाँधू देव जियाय माँ
 आठ दिना नौ रातें हो गई लोथ डरी उमड़ाय माँ
 रूँड में मुँड मिलाय जालपा ऊपर पिछोरा तानो माँ
 पेंती चीर के इमरत छिड़के धाँधू उठे भर्याय माँ
 हाथ जोड़ ठांडे भये धाँधू आरत रहे सजाय माँ
 राजा रानी आरत कीनी हो गओ जग उजयार माँ
 पंचा भगत माई तोरो जस गावें जय बोलो हिंगलाज माँ

राजा-रानी महलों में बैठें अपने मन की बात सुना रहे हैं। अपने यहाँ बालक नहीं है। किस तरह अपना नाम चलेगा। दिन उग आया है। प्रातःकाल का समय है, राजा सेवा को गया है। माता के भवन में एक स्त्री रो रही है। आँसुओं से उसका शाल भीग रहा है। क्या तेरी सास ननद दुख देती है या माता का कुल छोटा है। पति मुझे बाँझ कहते हैं यह दुख सहा नहीं जाता है। या तो माता मुझे पुत्र दे दे नहीं तो यहीं मंदिर में प्राण त्याग दूँगी। यदि मैं तुमको बालक दूँगी तो तू मुझे क्या दोगी। यदि तुम मुझे बालक दोगी तो वह तुम्हारा सेवक होगा। चम्पा का एक फूल दिया और एक वरदान दिया कि एक कली के धाँधू होंगे दूसरे के रणधीर होंगे। पहला महिना जब लगा रानी के हृदय में हर्ष समा गया। दूसरा महिना जब लगा रानी ने मंदिर पर दीपक जलाया। झूम-झूमकर माता तेरे यश गावें, जय बोलो हिंगलाज माँ। शुभ घड़ी में बालक हुआ जिसका नाम धाँधू भगत हुआ। देवी जालपा यज्ञ कर रही हैं। सभी को निमंत्रण देकर बुलाया है। चारों दिशाओं से व्यक्ति आये पर धाँधू भगत नहीं आये। मेरे वीर तुम जाओ और धाँधू को लिवा लाओ। एक बन्धन लाँघा दूसरा और तीसरे पर पहुँच गये। घर-घर घूमें लंगडे और धाँधू का घर पूछें। राजा-प्रजा एक सी थी। धाँधू का घर कौन सा है, खेल रहे लड़कों से पूछा ऊँची अटरिया, लाल दरवाजा और धर्म ध्वजा फहरा रही है। तुलसी का पौधा दरवाजे पर लगा हो, सूर्य के सम्मुख द्वार है। कहाँ गये रे धाँधू भगत, तुझे दुर्गा ने बुलाया है। धाँधू रंगमहल में सो रहे हैं, रानियाँ हवा कर रही हैं। उठो-उठो मेरे धाँधू भगत तुझे हिंगलाज बुला रही हैं। तुमको प्यारी अपनी माता है। मुझे प्यारी मेरी हिंगलाज माँ। धाँधू तू अपनी माँ से मिल ले जिसके गर्भ में नौ माह रहा है। धाँधू तू अपने पिता से मिल ले जिसने तुझे जन्म दिया है। धाँधू तू अपने भाई से मिल ले जिसने तेरी दाहिनी बाँह पकड़ रखी है। धाँधू तू अपनी बहिन से मिल ले जिसने तुझे अपनी गोद में खिलाया है। धाँधू को माया ने घेरा, क्या रानियों ने रोक रखा है। न तो धाँधू को माया के प्रति मोह है और न ही रानियों ने रोक रखा है। अस्सी कोस तक सतनद नदी

फैल गई है, किस विधि से पार उतरे। नदी सतनद का घना चम्पा है उसको काटकर नाव बना लेना। माता मना कर रही है, पिता मना कर रहे हैं कि हिंगलाज को मत जाओ। हिंगलाज की नीची-ऊँची घाटियाँ तुमसे नहीं चढ़ी जावेंगी। बहिन रकाव को पकड़ रही, माता घोड़े की लगाम को पकड़ रही हैं। बहिन रकाव छोड़ो, माता घोड़े की लगाम को छोड़ो। हिंगलाज के आये निमंत्रण सो हिंगलाज को जावे। जब क्वार माह के दिन बीतने लगे, धाँधू के निशान याने झंडे पताका आदि सजा लिए। बुलाओ-बुलाओ, सयानी नाईन सारे नगर को निमंत्रण दे दो। धाँधू के सजते ही सारा दल सज गया और समस्त पनहारिन भी सज गई। कोई घर से भोजन करके चला कोई बिना भोजन/आहार लिए ही चला। समस्त भक्त भोजन करके चले धाँधू निराहार ही चले। रात दिन की दौड़े होवे दौड़ हुई समस्त रात्रि। अस्सी कोस तक सतनद नदी फैल गई, किस विधि से पार उतरें। नदी सतनद का चम्पा घना है। उसे काटकर नाव बनाओ। कहाँ के बढ़ई आये हैं और कहाँ के कारीगर। हिंगलाज के बढ़ई आये हैं और नगर कोट के कारीगर। चम्पा काटकर नाव बनाई और सतनद नदी में डाल दी। नदी सतनद का ताकतवर घाट रखाने वाला नाव को घाट पर नहीं लगाने दे रहा है। क्या माँग रहा है ताकतवर घाट रक्षक को क्या धाँधू दे रहे हैं। बकरा माँगे ताकतवर घाट रक्षक धाँधू कुछ भी नहीं दे रहा है। धर्मो-धर्मो पार उतर गये और अधर्मो बीच मझधार में रहे। हाथ जोड़कर धाँधू खड़े हो गये कि धाँधू को पार लगा देना। उमंग से भरा धाँधू का दल जावे तब धूल आकाश तक उड़कर चढ़ जाती है। ऊँचें कंगूरे से जालपा देखती हैं कि धाँधू का दल आ रहा है। दल के लोग पीली पताका और धाँधू लाल ध्वज फहरा रहे है। कोई आदमी बड़े टीले और कोई छोटे टीले पर रुक गया है कोई जन बगीचे और कछार में रुक गये है। धाँधू अपने बगीचे में रुक गया है। धर्म निशान लगा लिया है। कोई लौंग इलायची चढ़ा रहा है। कोई खारक बादाम। कोई ध्वजा नारियल चढ़ा रहा है। कोई सुपारी और पान चढ़ा रहा है। धाँधू अपना शीश चढ़ा रहा है। केवल के दरबार में। समस्त भक्त जन घर को वापिस आ गये धाँधू भगत नहीं आये। घर-घर पूँछ रही धाँधू की दुल्हन मेरे पति को किसने रोक लिया है। तेरे पति की क्या कहें दुल्हन मुझसे कही नहीं जाती है। कोई चढ़ावे नीबू नारंगी कोई सुपारी पान। धाँधू ने चढ़ाया शीश अपना केवल के दरबार में। यहाँ से चलकर धाँधू की दुल्हन अपने घर को जावे। गर्म ठंडे पानी रखवाये शीघ्र किया स्नान। होम धूप थाली में रख लिए और सारे सामान। घर से चल दी धाँधू की दुल्हन दूसरे व्यक्ति ढोल बजा रहे हैं। एक बंधन लाँघे दो बंधन लाँघे तीसरे बंधन पहुँच जाये। मंदिर की दाहिनी ओर

कदम-कदम पर होम लगाती। आती हुई देखी देवी जालपा बड़े कठिन दरवाजे लगा दिये। धर्म का दरवाजा खोलो। हे जग को तारने वाली माँ! दुल्हन खड़ी है दरवाजे पर। वीर लंगड़े को आज्ञा दी कि कठिन दरवाजे खोलो। बहुत दिनों में आयी हो दुल्हन हमें क्या भेंट लाई हो। अपनी थाली मंदिर में रख दी और थाली सजा रही है। पहली भेंट मेरे पति की ली है दूसरी भेंट हमारी लो। माँ कालका कहती है। सुना जालपा धाँधू जन को जिन्दा कर दो। आठ दिन नौ रात हो गई हैं। खून से लथपथ शव रखा हुआ उमठ रहा है। कह रही हैं जालपा सुनो कालका सिर कटे शव में सिर को मिला दे तर्जनी को चीर कर अमृत छिटके धाँधू भरभरा कर उठकर खड़े हुए। हाथ जोड़कर धाँधू खड़े हुए और आरती सजाने लगे। राजा रानी ने मिलकर आरती की जिससे सारे जग में उजाला हो गया। पाँच भगत माई तेरा यश गावे जय बोलो हिंगलाज माँ।

राजा जगत

राजा जगत के मामले हो...
 कौने रची पृथ्वी रे दुनिया संसार
 कौने रचे पंडवा कौने कैलाश
 राजा जगत के मामले हो
 ब्रह्मा रची पृथ्वी रे दुनिया संसार
 देवी ने रची पंडवा शम्भू कैलाश
 राजा जगत के मामले हो
 काहे को रची पृथ्वी रे दुनिया संसार
 कहो को रचे पंडवा काहे कैलाश
 राजा जगत के मामले हो
 धरम को रची पृथ्वी रे दुनिया संसार
 रन खो रचे पंडवा तप को कैलाश
 राजा जगत के मामले हो
 कौना खों ल्यावे पखवंलियाँ कौना को झाँझ
 कौना खों ल्यावे रंग चुलना कौना को हार
 राजा जगत के मामले हो
 बाढ़ई को ल्यावे पकवंलियाँ सुनरा को झाँझ
 छिपिया को ल्यावे रंग चुलना मलिया को हार
 राजा जगत के मामले हो
 कैसे के आवे पखवंलियाँ कैसे के झाँझ
 कैसे के आवे रंग चुलना कैसे के हार
 राजा जगत के मामले हो
 बाजत आवे पखवंलियाँ झंकारत झाँझ

दमकत आवे रंग चुलना महकत हार
 राजा जगत के मामले हो
 काहे को तोरो पखवंलियाँ काहे को झाँझ
 काहे को तोरो रंगचूलना काहे को हार
 राजा जगत के मामले हो
 चन्दन को माई पखवंलियाँ सोने को झाँझ
 हरे कुसम रंग चुलना लोंगन के हार
 राजा जगत के मामले हो
 कौन को सोहे पखवंलियाँ कौना खों झाँझ
 कौना को सोहे रंग चुलना कौना खों हार
 राजा जगत के मामले हो
 लंगड़े खों सोहे पखवंलियाँ हनु को सोहे झाँझ
 देवी खों सोहे रंग चुलना उनई खों सोहे हार
 राजा जगत के मामले हो.....
 कौना ने लगाये आम नीम महुआ गुलजार
 बेला चमेली रूच केवरो दरमा और दाख
 पाँच पेड़ नरियल के लोंगन के झाड़
 धुंधचों फरी सुपारी खारक बादाम
 कोना ने ताल खुदाये को पिये पानी करे असनान
 राजा जगत के मामले हो
 राजा लगाये नीम महुआ आम गुलजार
 बेला चमेली रूच केवरो दरमा और दाख
 पाँच पेड़ नरियल के लोंगन के झाड़
 धुंधचों फरी सुपारी खारक बादाम
 जगदेव ताल खुदाये गऊँये पिये पानी वम्मन करें असनान
 राजा जगत के मामले हो
 कटन लगे तोरे आम नीम महुआ गुलजार
 बेला चमेली रूच केवरो दरमा और दाख
 पाँच पेड़ नरियल के लोंगन के झाड़
 धुंधचों फरी सुपारी खारक बादाम
 कौना ने ताल पुराये गऊँये मरे प्यासी वम्मन विन असनान
 राजा जगत के मामले हो
 मुगल कटाये आम नीम महुआ गुलजार
 बेला चमेली रूच केवरो दरमा और दाख
 पाँच पेड़ नरियल के लोंगन के झाड़
 धुंधचों फरी सुपारी खारक बादाम
 उनई के ताल पुराये गऊँये मरी प्यासी वम्मन विन असनान
 राजा जगत के मामले हो

एक लख सजो मुगलवारे दो लख सजो पठान
 दिल्ली को सजो बादशा दिल्ली सुलतान
 राजा जगत के मामले हो
 पाती भेज मुगल ने बादशा दरबार
 जगदेव जवर मुवासी तुम मुजरो बात
 बेटी व्यादे जगदेव न हुईये रार
 राजा जगत के मामले हो
 पतियाँ उल्टी लिखो जगदेव दरबार
 मोरें नैया चकखा रे मुजरें बात
 बेटी ने ब्याहें चौहान, हो जावे रार
 राजा जगत के मामले हो
 माता बोली जगत की सुन जगत कुँवार
 कुखियन पथरा परते मैं होती बाँझ
 मोरे जगत अकेलो कोऊ नैया पीठ रखवार
 राजा जगत के मामले हो
 हीन बात जिन बोलो माता छत्री धरम नसाय
 एक लाख मोरो मुगलवा दो लख मारो पठान
 दिल्ली को मारो बादशा दिल्ली सुलतान
 दिल्ली की हनो किवरियाँ जगदेव मोरो नाव
 राजा जगत के मामले हो
 काहे को वामन बसायेते काहे की खुदाये ताल
 काहे को रईयत बसाई रईयत गुलजार
 राजा जगत के मामले हो
 पुजवे खो वामन बसायेते पानी पीवे ताल
 सुख खों रईयत बसाई रईयत गुलजार
 राजा जगत के मामले हो
 बेटी बोली जगत की रे सुन बाबुल बात
 हरे हरे डोला सजा दे पचरगिया कहार
 हमें ब्याह दे मुगलों में तुम तुम भुगतो राज
 राजा जगत के मामले हो
 हीन बात मत बोल बेटी छत्री धरम नसाय
 तोय ब्याहों राजपूतों में ले हो कन्यादान
 पाँव पखारूँ मडवा में गज हाथी टीके दऊँ
 पुन्न मिल जाये दऊँ कपिला गाय
 राजा जगत के मामले हो
 गढ़ से उतरी रानी सखियाँ लयें
 गुना पपरियाँ बनवाने खप्पर में आग
 मेडें मंगावे बुकरा नरियल असवार

पूजन चली कालका दोई कर जोरें हाथ
 अबकी अरज जा मानो सुनियो बात
 राजा जगत के मामले हो
 गढ़ से ऊतरो राजा तेगा लय हाथ
 पाँच पान को बीरा पाँचों पद्म लिलार
 डेरी सोहे कटरिया दायनी तलवार
 डेरी सोहे लंगड़वा दायनों हनूमान
 सनमुख खड़ी भुवानी त्रिशूलों मार
 ऊपर भुवत जोगने खप्पर लय हाथ
 राजा जगत के मामले हो
 एक लख लड़े मुगलवा दो लख लड़ पठान
 दिल्ली को लड़ो बादशा दिल्ली सुलतान
 राजा जगत के मामले हो
 बरछी चली जगत कीरे ज्यों परियत गाज
 पेज पेज पर पैदल दो पेज असवार
 विसै विसै पार हाथी रैयत चिंधार
 राजा जगत के मामले हो
 मुगल जुनरी हो गये जगदेव किसान
 भुटई भुटई नून लये नरवाई फरिय
 रक्त नरईयाँ वे गई लोथों गजे पहार
 राजा जगत के मामले हो
 छुरी बगुरदा बगुला भये गेंडा भये ढाल तलवार
 मारत मारत ले गओ नदी सतरज पेलो पार
 राजा जगत के मामले हो
 भगो मुगल हेरे ने जगदेव मार
 पंचा भगत माई तोरो जस गावे जय बालो हिंगलाज

राजा जगत का वृतांत। किसने यह पृथ्वी और संसार बनाया है। किसने पाँडव और कैलाश पर्वत बनाया है। ब्रह्मा ने पृथ्वी और दुनिया संसार बनाये हैं। देवी ने पाँडव और शम्भू कैलाश बनाये हैं। किसलिए पृथ्वी और दुनिया और संसार बनाये हैं। किसलिए पाँडव और किसलिए कैलाश बनाये हैं। धर्म को बनायी है पृथ्वी और दुनिया और संसार युद्ध को बनाये हैं। पाँडव तप करने को कैलाश बनाये हैं। किस का लावें पखवलियाँ किस को झाँझ। किस को लावें रंगचुलना किस का हार। बाढ़ई का लावें पखवलियाँ सोनी का झाँझ। रंगरेज का लावें रंगचुलना माली का हार किस प्रकार आवे पखवलियाँ किस प्रकार से झाँझ। किस प्रकार आवे रंग चुलना किस प्रकार से हार। बाजता हुआ आवे पखवलियाँ झँकारता हुआ झाँझ। चमकता

हुआ आवे रंग चुलना महकता हुआ हार। किस वस्तु का बना तेरा पखवलियाँ, किस वस्तु का झाँझ। किस वस्तु का बना रंग चुलना किस वस्तु का हार। चंदन का बना पखवलियाँ सोने के झाँझ। हेरे कुसुम रंग का रंग चुलना और लोंगो का हार। किस को शोभा देगा रंगचुलना किस को हार।

किस को शोभा देगा पखवलियाँ किस को झाँझ। लंगडे को शोभ देगा पखवलियाँ हनुमान को झाँझ। देवी को शोभा देगा रंग चुलना और उन्हीं को हार। किसने लगाये आम नीम महुआ सदाबहार। बेला चमेली केवड़ा अनार और अंगूर पाँच पेड़ नारियल के लोंगो के झाड़ू गुच्छों में फली सुपाड़ी खारक और बादाम। किसने खुदाये तालाब कौन पानी पियेगा कौन स्नान करेगा। राजा ने लगाये आम नीम महुआ सदाबहार बेला चमेली केवड़ा अनार और अंगूर पाँच पेड़ नारियल के लोंगो के झाड़ू गुच्छों में फली सुपाड़ी खारक और बादाम जगदेव ने तालाब खुदाये गाये पानी पिये ब्रह्मण स्नान करें हे राजा तेरे आम नीम महुआ सदाबहार कटने लगे हैं। बेला चमेली केवड़ा अनार और अंगूर पाँच पेड़ नारियल के लोंगो के झाड़ू गुच्छों में फली सुपाड़ी खारक और बादाम किसने तालाब पूर दिये हैं। जिससे गाये प्यासी मरने लगी है और ब्राह्मण बिना स्नान के। मुगलों ने कटाये आम नीम महुआ सदाबहार बेला चमेली केवड़ा अनार और अंगूर पाँच पेड़ नारियल के लोंगो के झाड़ू गुच्छों में फली सुपाड़ी खारक और बादाम उन्हीं ने तालाब पूर दिये जिससे गाये प्यासी मरने लगीं और ब्राह्मण बिना स्नान के हैं।

एक लाख मुगल और दो लाख पठान सज गये हैं। दिल्ली का बादशाह दिल्ली का सुल्तान। पत्र भेजा मुगल बादशाह ने राजा के दरबार जगदेव कठिन राजा है। तुम मेरी बात मान लो अपनी बेटी का विवाह कर दो नहीं तो झगड़ा होगा। पत्र पलट कर लिखा जगदेव मेरे यहाँ नौकर नहीं है। मैं बात नहीं करूँगा, चौहान बेटी का विवाह नहीं करेगा चाहे झगड़ा हो जावे। माता बोली जगत की सुनो जगत कुँवर मेरी कोख पर पत्थर पड़ जाते मैं बाँझ होती क्योंकि मेरा जगत अकेला है उसकी पीठ पर रखवाली नहीं है। राजा

बोला छोटी बात मत बोलो माता क्षत्रिय धर्म नष्ट होता है। एक लाख मुगलों को मारूँ। दो लाख पठान और दिल्ली के बादशाह को मारूँ। दिल्ली का सुलतान मारूँ। दिल्ली के दरवाजे बंद कर दूँगा। जगदेव मेरा नाम है। किसलिए ब्राह्मण बसाये थे किसलिए खुदवाये तालाब किसलिए प्रजा बसाई प्रजा सदाबहार। पूजा के लिए ब्राह्मण बसाये पानी पीने के लिए ताल सुख के लिए प्रजा बसाई प्रजा सदाबहार। जगत की बेटी बोली रे बाबुल मेरी बात सुनो। हरी डोली सजवा दो और पंचरंग के कहार। मेरा विवाह मुगल से कर दो और तुम अपना राज्य भोगो। छोटी बात मत बोलो बेटी क्षत्रिय धर्म नष्ट होता है। तेरा विवाह राजपूतों में करके कन्यादान लूँगा पैर पखारूँगा मंडप में हाथी टीके में दूँगा। पुण्य मिल जावेगा। जब कपिला गाय दूँगा।

महल से रानी उतरती है। सखियों के साथ गुनी पपरियाँ बनाने के लिए खप्पर में आग लिए। मेड़ पर बकरा नारियल आदि मँगाती है। कालका की पूजा करती है और दोनों हाथ जोड़कर चलती है। अब की बार मेरी प्रार्थना मानना ये बात सुन लेना। मडल से राजा उतरा तलवार लिए हाथ में पांच पान का बीड़ा माथे पार पाँच पदम लगाये। बाँये शोभा दे रही कटार दाहिने तलवार। बाँये शोभा दे रहा लंगडा दाहिने हनुमान। सामने खड़ी भवानी त्रिशूल लिए ऊपर जोगने हाथ में खप्पर लिए मँडरा रही है। एक लाख मुगल लड़े दो लाख पठान लड़े दिल्ली का बादशाह लड़ा दिल्ली का सुलतान। भाला चला जगत का जैसे बिजली गिरती है। पैदल पर पैदल और एक सवार पर दो दो सवार हो गये। समय समय पर हाथी चिंघाड़ रहे है मुगल ज्वार का खेत हो गये हैं और जगदेव किसान। सिर रूपी भुंटा भुंटा काट लिए हैं। डंठल खड़े फहरा रहे हैं। रक्त की नदियाँ बह गई हैं। माँस के लोथड़ों के पहाड़ लग गये हैं। छुरा वरगुदा बगुला जैसे हो गये गेंडा जैसे ढाल बन गये हैं। मारते-मारते ले गया नदी सतलज के उस पार। भागा मुगल देखे नहीं जगदेव की मार। पाँच भगत माई तोरे यश गावे जय बोलो हिंगलाज।

तांत्रिक बौद्ध साधना और उसकी दार्शनिक पीठिका

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

बौद्ध धर्म में जीवन के संबंध में प्राचीनकाल से ही दो मत हैं- पहला, वासना-क्षय का और दूसरा वासना शोधन का। हीनयान मलिन वासना का क्षय कहता है क्योंकि वह व्यक्ति 'निर्वाण' कामी होता है। वासना तेल की तरह चित्त दीप में अनादिकाल से उपस्थित है- अष्टांगिक मार्गी साधना से यदि उसे सुखा दिया जाये तो क्लेशावरण की निवृत्ति हो जायेगी और निर्वाण प्राप्त हो जायेगा। इसे 'मुक्ति' कहा गया है। इस धर्म का दूसरा आदर्श व्यक्ति कल्याण के साथ साथ विश्व कल्याण की कामना से किया जाने वाला वासना शोधन है। क्लिष्ट वासना के शोधन से अक्लिष्ट वासना, शुद्ध वासना उदित होती है। इस शुद्ध वासना से विश्व कल्याण किया जाता है- फलतः बोधिसत्व की भिन्न-भिन्न भूमियों को पार करके शुद्ध वासना की भी निवृत्ति हो जाती है- अक्लिष्ट वासना भी शांत हो जाती है- तब पुद्गल नैरात्म्य ही नहीं, धर्म नैरात्म्य सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार नैरात्म्य दृष्टि से ज्ञाता और ज्ञेय समरस हो जाते हैं। यही पूर्ण नैरात्म्य है। यही बुद्धत्व की उपलब्धि है। यही महायान का लक्ष्य है।

महायान की भी मुख्यतः दो धाराएँ हैं- पारमितानय तथा मंत्रनय। मंत्रनय अत्यन्त गंभीर एवं विशिष्ट है। बौद्ध तांत्रिकों का विश्वास है कि स्वयं भगवान बुद्ध ने वान्य कटक में मंत्रनय का तृतीय धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।

मंत्रयान का लक्ष्य है- वज्रयोग सिद्धि। जब तक साधन का आधार योग्य नहीं होता, तब तक इसकी साधना नहीं होती। पारमितानय की साधना भीति तथा चर्या की शुद्धि पर किन्तु मंत्रनय की साधना आध्यात्मिक योग्यता पर निर्भर है। पारमितानय की दार्शनिक भूमि सांत्रान्तिक है और मंत्रनय की योगाचार-माध्यमिक। जहाँ तक बौद्ध धर्म में तांत्रिकता के प्रवेश का संबंध है- कई प्रकार की मान्यताएँ एवं धारणाएँ प्रचलित हैं। पौराणिक मान्यताएँ। अथवा श्रद्धा और विश्वास पर आधारित धारणाएँ इस तांत्रिकता के उद्भावकों को बहुत पीछे खींच ले जाती हैं। आस्थावान तांत्रिक बौद्धों का कहना है कि तांत्रिक देशना स्वयं भगवान शाक्य मुनि ने दी है। इनके अनुसार (आन्ध्र राज्यान्तर्गत गंटूर जिले में स्थित) धान्यकूट अथवा धान्यकटक नामक स्थान पर अनुचर तंत्रमय का तृतीय धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। माना तो यह भी गया है कि श्री पर्वत एवं मलय पर्वत पर भी छोटी-मोटी देशना (तांत्रिक) हुई थी। 'विमलप्रभा' के अनुसार माना जाता है

कि उक्त तृतीय धर्मचक्र का प्रवर्तन भगवान बुद्ध ने महापरिनिर्वाण से एक वर्ष पूर्व स्वयं किया था। बाद का परम्परा प्रवाह सुचन्द्र एवं इन्द्रभूति आदि आचार्यों के माध्यम से चलता रहा।

ऐतिहासिक दृष्टि से तांत्रिक विकासक्रम के स्रोतों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि ईसा पूर्व तृतीय शती तक महायान की दिशा में बौद्ध साधना का प्रारंभ हो चुका था। कारण, महायान का उद्भव महासांघिक सम्प्रदाय से है और इस सम्प्रदाय का उद्गम भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के लगभग सौ वर्ष पश्चात् वैशाली की द्वितीय संगीति के ऐतिहासिक अवसर पर ही हो चुका था। इसी महायान के अन्तर्गत तंत्रयान भी एक यान समझा जाता है। 'अद्वय वज्र सिद्धि' में कहा गया है-

'महायानं च द्विविधं पारमितायानं मंत्रयान चेति'

मंत्रयान का ही दूसरा नाम तंत्रयान है। अनुत्तरयोगावतार नामक ग्रन्थ में मंत्रयान, तंत्रयान, वज्रयान, उपाययान- इन सबका पर्यायवाची रूप में प्रयोग हुआ है। 'गुह्यनिर्वचन तंत्र' में इसे 'फलयान' भी कहा गया है। तंत्रयान का मुख्य विषय 'वज्रसत्त्व' समाधि है- अतः इसे वज्रयान भी कहा गया है। इसे मंत्रयोग भी कहा जाता है। मंत्र के प्रवेश से तांत्रिकता के उद्भव का स्पष्ट सम्बन्ध है। मंत्र, धारणा एवं सूत्रों में पूर्व-पूर्व उत्तरोत्तर के संक्षिप्त रूप हैं। यह तो निर्विवाद है कि आचार्य राहुलभद्र एक विख्यात तांत्रिक सिद्ध थे। राहुल नागार्जुन के पूर्ववर्ती आचार्य हैं। नागार्जुन स्वयं उनके शिष्य थे। मंत्रेयनाथ के समय भी इन तंत्रों का आभास मिलता है। नागार्जुन से लेकर लगभग तीन-चार शताब्दियों तक तांत्रिक साधना गुप्त रही। धर्म कीर्ति युग से विशेष कर पाल नरेशों के युग से यह साधना प्रकट हो गई।

जहाँ तक तांत्रिक बौद्धों के वैचारिक और साधनात्मक पक्षों का संबंध है- उनके आधारभूत ग्रन्थों तथा रचनाओं के देखने से स्पष्ट है कि उनकी दार्शनिक संगति 'योगाचार माध्यमिक' से ही लग जाती है। म.म. गोपीनाथ कविराज तथा राहुल सांकृत्यायन दोनों ही इस पक्ष के हैं। अन्य विचारकों ने भी इस पक्ष में आस्था व्यक्त की है। शशिभूषण दास गुप्त ने माना है कि चर्यापदों का दर्शन वास्तव में माध्यमिक, योगाचार और वेदान्त का समन्वय है। कतिपय अनुसंधायकों की धारणा दासगुप्त से अंशतः भिन्न है और वे मानते हैं कि वज्रयान (सहजयान रूप में) माध्यमिक और योगाचार के साथ अद्वैतवादी तांत्रिक शैवमत का समन्वय किया, औपनिषद परम्परा से प्राप्त अद्वैत वेदान्त का नहीं। पं. बलदेव

उपाध्याय का मत है कि वज्रयान की दार्शनिक दृष्टि शून्यवाद की है। डॉ. धर्मवीर भारती की मान्यता है कि सिद्धों और मान्य भव और निर्वाण की परिकल्पना का मुख्य आधार विज्ञानवाद है और अपने तत्त्वदर्शन के मूल सिद्धांत उन्होंने विज्ञानवाद से लिए हैं। सिद्धों का तत्त्वदर्शन चित्तपरक है, वाह्य जगत की सत्ता अस्वीकार करता है किन्तु वह शून्यवाद की भाँति शुद्ध निषेधात्मक नहीं है। डॉ. भारती ने सिद्ध साहित्य में उपलब्ध 'अनेकत्र शून्यता' को देखकर शून्यवाद के प्रभाव की आशंका रखते हुए सिद्धांततः यही स्वीकार किया है कि 'शून्यता' की स्थिति विज्ञानवादियों ने भी मानी है। विज्ञानवादियों ने तथता ज्ञान को शून्यता-ज्ञान ही माना है और तथता या चरमसत् को 'शून्यता' कहा है। तथापि शून्यतावादियों की 'शून्यता' विषयक धारणा से विज्ञानवादियों की 'शून्यता' विषयक धारणा भिन्न है। आगे अपने को स्पष्ट करते हुए उन्होंने यह भी कहा है कि विज्ञानवादियों ने शून्य को शून्यवादियों से भी विस्तृत अर्थ में ग्रहण किया है- कारण, शून्यवाद में तो प्रतीत्य-समुत्पाद के द्वारा केवल धर्म और पुद्गल का अभाव प्रतिपादित कर उनके भाव का निषेध किया गया था, तथतावाद में धर्म और पुद्गल नैरात्म्य को स्वीकार कर भाव की शून्यता तो बताई ही गई थी किन्तु तथता तथा चित्त विज्ञप्ति व्यवस्था स्वीकार कर अभाव की भी शून्यता मान ली गई थी। फलतः वे इस तथता को शून्यता कहते थे। इस प्रकार उनके मत में सिद्धों ने शून्य के संबंध में जो कुछ कहा है सभी विज्ञानवाद में 'तथता' के लिए कहा जा चुका है। शून्यता ज्ञान में चित्त का भी निषेध है और अचित्त का भी, भाव का भी, अभाव का भी, ग्राह्य का भी और ग्रहिक का भी, भाव का भी, निर्वाण का भी- यहाँ तक कि शून्य का भी और अशून्य का भी। समस्त द्वयता का निषेध। पर इससे उस मूल तत्व का स्वरूप अभावात्मक नहीं हो जाता क्योंकि वहाँ अभाव का भी निषेध है। वस्तुतः शब्दों से जो कुछ कहा जाता है- वह द्वंद्वात्मक तथा सापेक्ष है और यहाँ उसी द्वंद्वात्मकता या द्वयात्मकता का निषेध है। यहाँ तक तो योगाचार का प्रभाव माना जा सकता है और यहाँ तक उसी 'प्रतीत्य-समुत्पाद' के रास्ते से ही चलकर आया गया है- फलतः वह इसमें समाहित माना जा सकता है। पं. परशुराम चतुर्वेदी का विचार है कि जिन दार्शनिक बातों का उल्लेख यहाँ पर किसी न किसी रूप में किया गया दीखता है, उनका भी संबंध या तो विशेषकर शून्यवाद के साथ जोड़ा जा सकता है अथवा ये वे हैं जो योगाचार से संबद्ध कही जा सकती हैं- परन्तु फिर भी उनके मतानुसार ऐसे स्थल बहुत ही कम मिल सकते हैं जहाँ इन दोनों के बीच कोई स्पष्ट भेदपरक रेखा खींची जा सके, जिसका एक

कारण यह भी हो सकता है कि इन सिद्धों का अपना लक्ष्य कभी किसी शास्त्रीय विवेचन का नहीं रहा।

मेरा विचार इस संदर्भ में यही है कि ऊपर जो भी मत प्रस्तुत किये गये हैं वे सिद्धों की पंक्तियों के साक्ष्य पर निश्चय ही प्रतिभासित होते हैं- पर असलियत यही है कि सिद्धों पर एक तरफ शून्यवादियों की 'प्रतीत्य समुत्पाद' पद्धति से जगत को शून्य या निःस्वभाव बताते हुए चरम तत्व को योगाचारों की 'शून्यता' विषयक धारणा से एक मान लें। चित्त अपने संस्कार-संबलित 'आलय विज्ञान' के रूप में समस्त प्रवृत्ति विज्ञानों का आधार है- पर यदि साधनावश समस्त संस्कार घुल जायें तो न आलयविज्ञान ही रहेगा और न प्रवृत्ति ही। जो रह जायेगा- वह जैसा है वैसा है- उसका शब्द द्वारा कथन संभव नहीं। इस प्रकार एक तरफ परतत्व की यह मौन पर्यवसायी व्याख्या बौद्ध धारा से सम्बद्ध है तो दूसरी ओर जब उसे स्पष्ट ही 'भव-निर्वाणात्मक' या 'द्वयात्मक' कहा जाता है तो तांत्रिक धारणा भी संक्रान्त हो जाती है। 'अद्वयवज्रसंग्रह' में स्पष्ट ही प्रज्ञा की शक्ति और उपाय का शिव कहा गया है और इन्हीं तीनों के समायोग से अनुभूत सुख को महासुख या अद्भुत सुख कहा गया है। वहाँ तो 'शक्ति स्तुशून्यता दृष्टि' कहा गया है अर्थात् योगाचारों की 'शून्यता दृष्टि' तंत्रों की शक्ति ही है और स्वयं शैवागम का शब्द है- विशेषतः शिव की अपेक्षा में प्रयुक्त होकर और अद्वयवज्र संग्रह में ऐसा है। इतिहास भी बौद्धों एवं अद्वयी शैवों के संपर्क प्रभाव का समर्थन करता है। रही शांकर वेदान्त की बात, वह केवल शून्यवादी बौद्धों के अनुरूप जगत की सांवृतिक सत्ता को लेकर ही कही जा सकती है। इस प्रकार सिद्धों की दार्शनिक भूमिका का विचार करते हुए जितने भी विभिन्न मत उठ खड़े हुए हैं- उनका अविरोध हो जाता है- पर अन्ततः योगाचार तथा शैवों की तांत्रिक धारणा की स्वीकृति यहाँ निभ्रान्त जान पड़ती है। इस प्रकाश में सरहपाद की पंक्ति लें 'चितेक चित सअल वीअमवणि व्वाणा जम्म विप्फुरन्ति। तं चिंतामणिरुअं पणमह इच्छाफलन्देह॥' अर्थात् एक चित्त तत्व ही है- वहीं से सकलवाज, भव, निर्वाण- सभी विस्फुरित होते रहते हैं। वही चिन्तामणि है, वही प्रणम्य है- वही वांछित फल प्रदान करता है। एक तरफ इस प्रकार जहाँ 'चित्त' तत्व की पारमार्थिक भावात्मक सत्ता मानी गई, दूसरी तरफ वहीं उसकी वाग-गोचर स्थिति को ध्वनित करने के लिए निरपेक्ष रूप को संकेतित करने के लिए उसकी 'शून्यरूपता' का भी संकेत मिलता है--

सुण्ण णिरंजण परमपउ सुइणो मान सहाव।

भावु चित्त सहावता णउ णासिज्जइ जाव॥

अर्थात् वह परम पद शून्यात्मा तथा निरंजन है- वह स्वप्नोपम है। चित्त के इस स्वभाव की भावना तब तक करता रहे जब तक कि उसका चांचल्य नष्ट न हो जाये। उपनिषद् भी तो कहते हैं- 'निरंजन परमं साम्यमुपैति' वह तत्व निरंजन तथा समरस है। निष्कर्ष यह कि इनका दार्शनिक पक्ष उनकी रचनाओं का मंथन आलोड़न करने से स्पष्ट ही विज्ञानवादी तथा तांत्रिक धारा का है।

इस मंत्रनय या वज्रयान के मुख्यतः चार भेद हैं- जो लक्ष्य प्राप्ति की दृष्टि से पद्धतिगत माने गये हैं। वे भेद हैं- क्रिया, चर्या, योग और अनुत्तरयोग। यद्यपि कुछ परम्पराओं में महायोग, अनुयोग और अतियोग तंत्र आदि का व्यवहार होता है पर वे सब उपर्युक्त चार के ही अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते हैं। सहजयान जैसे भेद के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ लोगों का विचार है कि सहजिया वैष्णवों के पूर्व रूप में इसकी परवर्ती कल्पना है। साधना की ही दृष्टि से अनुत्तर तंत्र के दो भेद हैं- मातृ तंत्र। इन तंत्रों में साधना की विविध विधियाँ दिखलायी गयी हैं। ये सब संक्षेप में चार भागों में विभक्त की गई हैं- विशुद्धयोग, धर्मयोग, मंत्रयोग और संस्थानयोग। इन्हें वज्रयोग भी कहते हैं। प्रत्येक योग से एक प्रकार की शक्ति प्राप्त होती है और इस प्रकार पूर्ण विकास से वज्रभाव का उदय होता है। इन सब योगों का साधन 'उत्पत्ति-क्रम' तथा 'निष्पन्न-क्रम' द्वारा होता है।

तांत्रिक बौद्ध साधना बिन्दु साधना है। तंत्रों में यह बिन्दु शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त मिलता है- प्रस्तुत संदर्भ में यह 'चित्त' तत्व का संवृत रूप, अन्नमय कोश का सार शुक्र है। वास्तव में बद्ध जीवात्माओं के मन, प्राण एवं शुक्र- तीनों ही चंचल होते हैं और तीनों ही परस्पर इस प्रकार संबद्ध हैं कि इनमें से किसी एक के स्थिर होने से शेष दो लगभग निष्प्रयास स्थिर हो जाते हैं। मन को स्थिर करने में श्वास निष्प्रयास स्थिर हो जाती है। प्राण को मन का पलना तक इसी आशय से कहा जाता है। साधक-गण इन्हीं तीनों में से किसी एक पर बल देते हैं और उसी की प्रधानतया साधना करते हैं। तांत्रिक बौद्ध चित्त को, संवृत रूप शुक्र के स्थिरीकरण द्वारा 'बोधिचित्त' रूप (पारमार्थिक स्थिति में) प्रतिष्ठापित करता है। चित्त का ही सांवृतिक रूप 'शुक्र' है और पारमार्थिक रूप 'बोधिचित्त'। यह 'बोधिचित्त' द्वयात्मक अद्वय है। इसी के लिए कहा गया है- 'शून्यताकरूणा भिन्न बोधिचित्तं तदुच्यते' चित्त को बोधिचित्त के रूप में परिणत करना ही महाराग, महासुख, निरावरण प्रकाश, अनुत्तर बोधि या बुद्धत्व की उपलब्धि है।

मध्ययुग के इस पूर्वार्द्ध में बिन्दु साधना की न जाने कितनी

प्रणालियाँ प्रचलित थीं। बिन्दु या शुक्र के ऊर्ध्वीकरण की हठयोगियों में एक वज्राली नामक प्रक्रिया भी प्रसिद्ध है- पर वह कृच्छ्र प्रक्रिया है। 'नाथ योग' में बिन्दु के ऊर्ध्वीकरण को 'कालाग्निरुद्रीकरण' योग कहा जाता है। हठयोग में प्राण के स्वायत्तीकरण से बिन्दु में स्थिरता आती है। वैष्णवों में विशेष कर सहजिया तथा गोड़ी सम्प्रदाय में भी बिन्दुशोधन, बिन्दुस्थिरीकरण तथा ऊर्ध्वीकरण पर विशेष जोर दिया गया है। वस्तुतः द्वायात्मक अद्वय क्रीड़ा के लिए अपने को परस्पर दो विपरीत धाराओं में प्रपंचार्थ विभक्त कर देता है- वे ही दोनों तत्व एक दूसरे से पुनः समरस होने के लिए निरन्तर तड़पते रहते हैं- दोनों का मिलन महामिलन कहा जाता है। एतदर्थ स्थूल प्रकृति के आलम्बन से भाव द्वारा स्थिर चित्त होकर समरस स्थिति प्राप्त करना ही परम लक्ष्य की प्राप्ति है। कौल भी बिन्दु साधन की इसी प्रक्रिया का सहारा लेते हैं। कोलों की यह चर्चा भोग अथवा वासनामूलक नहीं, योग-मूलक है।

एक तरफ यह भी सत्य है कि इन्द्रियाँ विषय-भोग से तृप्त न होकर और भी अतृप्त होती रहती हैं- अर्थात् इस रास्ते शांति मिलनी संभव नहीं है। अतः पातंजल दर्शन ने 'संयम' द्वारा वासना के दमन की बात बतायी है। लेकिन एक मनोवैज्ञानिक सत्य यह भी है कि जिसको हम होने या करने से रोकते हैं वह मन में एक सुप्त संस्कार डाल देता है और कालांतर में निमित्त पाकर पुनः उभर आता है। तांत्रिक साधना इस रहस्य को समझती है- अतः कहती है-

*यत्र तत्र मनोगच्छेत् तत्र तत्र शिवः स्वयं।
चलित्वा यास्यति कुत्र सर्व शिवमयं यतः॥*

अतः तांत्रिकों ने कृच्छ्र साधना की जगह सहज साधना निकाली। हठयोगियों की प्रक्रिया वज्राली वैज्ञानिक होने पर भी मनोवैज्ञानिक नहीं है। यह ठीक है कि प्राणायाम द्वारा शुक्र का अधोगामी वेग क्षणभर को रूक सकता है- पर इससे मन में परिवर्तन किस प्रकार संभव है? मनोवेग बड़ा प्रबल है- इसे कौल तथा बौद्ध योगी समझते थे। अतः प्राणायाम का महत्व समझते हुए भी इनका ध्यान मन की शक्ति की तरफ भी गया। उन लोगों ने वेगवती जलधारा में निष्प्रयास एवं सहज ही विपरीत चलने वाली मछली की गति देखी थी। जिस प्रकार मत्स्य जल की प्रकृति को आत्मसात कर उसमें रहकर भी उस पर विजय प्राप्त कर लेती है और सहज ही विपरीत गति करती है- उसी प्रकार इन तांत्रिकों की भी धारणा थी कि विजय प्रवाह में रहकर भी सहज ही विपरीत

गमन हो सकता है, इन्द्रिय स्तर पर जीकर भी इनकी विजय-विद्या सीखी जा सकती है। इसीलिए इन लोगों ने भोग में योग की प्रणाली अपनायी।

कौलों ने बिन्दु सिद्ध की परमावस्था को 'अनुत्तर' कहा है। इस मत में बिन्दु की ऊर्ध्वीकरण की अनन्त प्रक्रियाएँ हैं। बिन्दु साधना के समय साधक चित्त और प्राण को एकाग्र करके कंद भूमि के संकोचविकास क्रम से शक्ति के उन्मेष को सावधानी से करे- यह क्रिया तब तक करता रहे जब तक शक्ति का ऊर्ध्वीकरण न हो। यह वैदवी शक्ति कृन्द-भूमि से द्वादशान्त पर्यन्त प्रसारित होती है और पुनः आवृत्ति पूर्ण करती हुई मूलाधार तक सिंचन करती है। इस प्रकार सिद्धावस्था प्राप्त होती है।

जहाँ तक बौद्ध तांत्रिकों का सम्बन्ध है, उनके हिसाब से भी स्वरूपगत द्वायात्मकता ही परस्पर विरोधी प्रवाहों में प्रपंचात्मक आकार ग्रहण कर गई है। इन्हीं के प्रतीक रूप में झड़ा, पिंगला, कालि, आदि, धवन, चमन, ललना, रसना, बोल, कक्कोल, शून्यता करुणा, प्रज्ञा उपाय, कमलकुलिश आदि का प्रयोग किया जाता है। शरीर के भीतर यह विरुद्ध प्रवाह इड़ा एवं पिंगला के मध्य परस्पर विरोधी दिशा में प्रवाहित प्राण एवं अपान की धाराएँ हैं। तांत्रिकों की तो यह भी धारणा है कि वाम नाड़ियों में रक्त का संबंध है और दक्षिण में शुक्र का। वायु ही चित्त को चंचल कर विषय की ओर प्रवृत्त करता है। यदि रक्तवाही, शुक्रवाही एवं वायुवाही नाड़ियों को मर्माहत कर दिया जाये तो इनका अस्थान-गमन अवरुद्ध हो जाता है- एतदर्थ प्रज्ञोपाय योग किया जाता है। परस्पर विरुद्ध नाड़ियों में श्वास-प्रश्वास के चलने से विकल्पों का अनियंत्रित प्रवाह चलता रहता है।

जननेन्द्रिय में तीन नाड़ियाँ मिलती हैं- ललना एवं रसना अधोवर्तिनी हैं और अवधूति ऊर्ध्ववर्तिनी। इन तीनों के केन्द्र में 'बोधिचित्त' है- जो संवृत दशा में शुक्र के रूप में पड़ा हुआ है। 'वास्तव में शरीर में कामोद्रेक से उत्पन्न होने वाली उष्णता के कारण बिन्दुपात होता है। यह उष्णता शरीर स्थित शुक्र को वीर्यवाही नाड़ी तक ले जाती है। नाभि के नीचे आते ही वह शुक्र बनता है और एतदर्थ साधक गुरु के निर्देश से महामुद्रा या प्रज्ञा (नारी) की अपेक्षा रखता है। यही प्रज्ञोपाय समायोग से उत्पन्न बिन्दु क्षोभ है- बोधिचित्त का उद्भव है- कुण्डलिनी जागरण है- चिदाग्नि का प्रज्वल है। उदबुद्ध बिन्दु कहीं वज्रमणि में स्खलित न हो जाये- फलतः उसे निर्माण चक्र में धारणा करना पड़ता है, पर यह निरोध

कृत्रिम निरोध है। यहाँ के शुक्र में पंचतत्त्वात्मकता होने से गुरुता रहती है और उसके रहने से अधःस्खलन होता है।

बिन्दु के ऊर्ध्व संसार के लिए अवधूति का खुलना आवश्यक है। और यह कार्य प्रज्ञोपाय समायोगवश संपन्न होता है। ललना और रसना के नियंत्रण से प्राणायाम द्वारा श्वास-प्रश्वास का नियंत्रण हो जाता है- मध्यमार्ग या अवधूतिका खुल जाती है। यह अवधूतिका नाभि, हृदय, कण्ठ एवं सहस्रार में प्रवाहित रहती है- इनमें शक्ति स्तर के निरूपक चार कमल हैं- निर्माणचक्र, कर्मचक्र, संभोग एवं उष्णीउचक्र। इनमें क्रमशः 64, 32, 16 एवं 6 पंखुरियाँ हैं, क्षुब्ध बिन्दु इन्हीं चक्रों में क्रमशः प्रवाहित होता हुआ उष्णीव तक आता है।

क्षुब्ध बिन्दु का स्थिरीकरण और फिर ऊर्ध्व संचार- इस क्रिया में शुक्रगत पार्थिवांश एवं जलीय अंश जब कम जाता है तभी स्थिरीकरण संभव है। कामाग्नि की उष्णता से उक्त दोनों अंश सूख जाते हैं और वायु उसे स्थिर रखती है। प्रारंभ में अग्नि और जल की क्रीड़ा चलती रहती है। जब तक इस कामाग्नि का ठीक-ठीक उपयोग करना नहीं आता है, उसको पुनः भीतर के अपूतत्व द्वारा शांत किया जाता है। जब इसका स्वरूप ठीक-ठीक समझ में आ जाता है तब इस अग्नि को प्रज्वलित रखकर शुक्र के पंच भूतों को परिशुद्ध कर लिया जाता है और फिर गगनोपम चित्त का उर्ध्वीकरण होने लगता है। वास्तव में पार्थिव अंश एवं जलीय अंश के शुष्क होते ही तेजामय शुक्र का ऊर्ध्व संचार आरंभ हो जाता है। इस ऊर्ध्व ज्वलनात्मक ऊर्ध्व संचार में उसकी सूक्ष्म शक्ति स्पन्दात्मक शक्ति हो जाती है। इसी सहज शक्ति के प्रादुर्भूत होने से पहले वाह्य शक्ति का सहारा लिया जाता है। यही स्थूल बिन्दु का आजोमय रूपान्तर है। इसको बुद्धकल्प या ईश्वरकल्प अवश्य कहा जाता है। इस स्थिति में बिन्दु सिद्ध योगी अपने शरीरस्थ शक्ति में रमने लगता है। इसी स्तर पर करुणा का उदय होता है। यही बौद्धों की करुणा-पुण्डरीक अवस्था है। इसी को कौल लोग प्रेम की जागृति कहते हैं। ऊर्ध्व संचार में सभी तत्व शुक्र होकर चैतन्य रूप से प्रकाशित होने लगते हैं। इस प्रकार यह कामाग्नि प्रेममय हो जाती है और तब उसका इच्छित संकल्प ओज द्वारा समस्त वायुमंडल में प्रवाहित होने लगता है। इससे योगी में सहज करुणा और प्रेम का उदय होने लगता है। यहाँ काम, प्रेम और करुणा में परिणत हो जाता है। फिर तो ब्रह्माण्ड में मूल में सक्रिय ओज शक्ति बिन्दु सिद्ध योगी के पिण्ड में सक्रिय होने लगती है- वह लोक कल्याणकामी हो जाता है।

बौद्ध वज्रयानी सिद्ध तांत्रिकों की धारणा है कि बिना दीक्षा के सत्य ज्ञान का उदय नहीं होता और बिना अभिषेक के उस ज्ञान का संचार नहीं होता। यह अभिषेक पारमार्थिक और संवृत- दो रूप का होता है। संवृत भी दो प्रकार है- पूर्व एवं उत्तर। पारमार्थिक अभिषेक ही अनुत्तर अभिषेक कहा गया है। कलश, गुप्त, प्रज्ञा एवं अनुत्तर सेक का प्रयोग बिन्दु के आरोह एवं अवरोहपूर्वक समाप्य आवर्तन में होता है। ब्राह्मण तंत्रों में कुण्डलिनी का भी ऊर्ध्व सहस्रार के अधःसहस्रार तक आरोहण-अवरोहण होता है। जैसे इन तंत्रों में जड़त्यागपूर्वक चिद्रूपलब्धि या आरोह के बाद पुनः अवरोहण से त्यक्त का चिन्मयीकरण होता है- फलतः यात्रा पूरी होती है- ठीक यही स्थिति यहाँ भी है।

इस क्रिया में अपेक्षित 'उपाय' का सविस्तार निरूपण गुह्य समाज तंत्र में उपलब्ध होता है। उपाय है- सेवा, उपसाधना, साधन एवं महासाधन। सेवा भी दो प्रकार की होती है- सामान्य और उत्तम। उत्तम सेवा में ही षडंगयोग का स्थान है जिसका प्रयोग बिन्दु के ऊर्ध्व संचार में किया जाता है। षडंग हैं- प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, अनुस्मृति और समाधि। उपाय की चर्चा के संदर्भ में यह भी कह देना आवश्यक है कि अभिषेक के अनन्तर साधक गुरु के निर्देशन में मंडल के भीतर प्रज्ञा के साथ प्रवेश करता है और योग का रहस्यात्मक अंश आरंभ हो जाता है। आसन, बंध तथा मुद्रा आदि के द्वारा गुह्यांग के बीच की नसें और नाड़ियाँ अपेक्षित संकोच और प्रसार प्राप्त करती हैं ताकि उनके द्वारा ऊर्ध्व संचार हो सके। षडंग में प्राणायाम का महत्व इसलिए है कि उसी के द्वारा प्राण एवं अपान की विरोधी धाराओं को एकोन्मुख कर मध्यमार्ग को अनावृत्त किया जाता है और इसी के द्वारा गुरु निर्दिष्ट क्रम से बिन्दु ऊपर की ओर अग्रसर होता है। उत्तर तथा अनुत्तर सेक से जब उसे पुनः नीचे उतरा जाता है तब उसमें इतनी स्थिरता आ जाती है कि निर्माण चक्र में उतरकर भी वह वज्रमणि में स्खलित नहीं होता। इस बिन्दु से जिस दिव्य देह की उपलब्धि होती है- उसी से सहजानन्द धारण किया जाता है चार चक्रों से बिन्दु के ऊर्ध्व संचरण क्रम में जो चार क्षण विचित्र, विपाक, विभर्द और विलक्षण आते हैं उनमें चार प्रकार के आनन्द-प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द तथा सहजानन्द-अनुभूत होते हैं। इन आनन्दों को प्राप्त कराने वाली चार मुद्राएँ हैं- कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा एवं महामुद्रा- सिद्धों में इन मुद्राओं के भिन्न-भिन्न नाम भी मिलते हैं। इन आनन्दों के अनुरूप चारों चक्रों में चतुर्विध काम की भी उत्पत्ति होती है। वज्रयोग के भी चार रूप हैं- इसी प्रकार वज्रयान की साधना का यह सैद्धांतिक स्वरूप है।

सिद्धों ने अपने साहित्य में इस प्रकार की बातें अनेकत्र व्यक्त की हैं साधना और तज्जन्य अनुभूतियों की छटा उनके दोहों एवं चर्या पदों में उपलब्ध होती हैं। यों तो चर्यापदों में बोधि चित्त की चर्या अर्थात् प्रज्ञा को ग्रहण करने की महारागयुक्त चर्या की संध्या या संध्या भाषा में काव्यात्मक वर्णन है और दोहे में उसी तत्व चिन्तन और साधना को प्रचलित करने, साम्प्रदायिक खण्डन-

मण्डन करने, सैद्धांतिक विवेचन करने, साधक को ज्ञान और चेतावनी देने के लिए थे। इस द्विविध साहित्य में गौण, प्रधान रूप में उक्त तत्वों की यथासम्भव चर्चा उपलब्ध होती है। 'चंचल कीअ पइडे काल' से चित्त की उस चांचल्यावस्था की ओर संकेत है जो वज्रोपम नहीं हो पाया है। इसी प्रकार और भी बातें हैं।

राजस्थानी कहावती-कथाएँ

विजयदान देथा

(लेखक की आठ खण्डों में शीघ्र प्रकाशित होने वाली ग्रन्थमाला 'राजस्थानी हिन्दी कहावत-कोश के सौजन्य से-सम्पादक)

मोड़ी लाधौ सरड़ राम।

देर से सुधि आई राम की।

संदर्भ-कथा :

एक किसान कुआँ सींचने का काम करता था। कुआँ गहरा था। इसलिए उसकी लाव भी लंबी थी। काम की व्यस्तता के कारण राम-नाम का कभी खयाल नहीं आया। जब आया तो बहुत देर हो चुकी थी। फिर भी अंतिम समय के पहिले खयाल तो आया। पर कुआँ सींचने की मजबूरी ऐसी थी कि वह राम-नाम के लिए अलग से समय निकालना उसके लिए संभव नहीं था। पर लाव खींचने और डालने के समय वह राम-नाम की रट लगाये रहता था। पिछली कसर निकालने के लिए वह एक नाम भी चूकना नहीं चाहता था।

- जो व्यक्ति किसी काम को देर से करे और बाद में जल्दबाजी दिखाये, तब।

मोरा महला वाळी हार-जीत नी करवी।-भी. ६५४

मोर और इंद्र वाली हार-जीत नहीं करनी चाहिए।

संदर्भ-कथा:

मोर के बोलने पर बरसात होती है, फलस्वरूप मोर को अभिमान हो गया और उसने अपने अभिमान में इंद्र तक को चुनौती दे

डाली कि जब तक वह बोले नहीं, इंद्र भगवान को वर्षा करने का कोई अधिकार नहीं है। इंद्र के अहंकार को मोर की चुनौती से ठेस लगी। उन्होंने भी दर्प के साथ जवाब दिया कि मेरा बरसना तेरे बोलने पर निर्भर नहीं करता। आज से तू चिल्ला-चिल्लाकर बोल, एक बूँद भी पानी बरस जाय तो मेरा नाम इंद्र नहीं। और वास्तव में इंद्र की बाजी रह गई। बारह बरस तक ऐसा सूखा पड़ा कि संसार में त्राहिमाम-त्राहिमाम मच गया। दुनिया तबाह हो गई। एक दिन इंद्र भगवान ने मोर पर तरस खाकर पूछा, 'बावरे की नाई बारह बरस तक गला फाड़ता रहा। एक बूँद भी बरसी? फिर क्यों चिल्ला-चिल्लाकर अपनी हेटी लगा रहा है।' तब मोर ने झुँझलाकर कहा, 'तेरी क्रूरता का मुझे पता चल गया। मैं कोई बरसात की खातिर नहीं बोलता। बोलना मेरी आदत है। कहीं आदत छोड़ने से बोलना भूल नहीं जाऊँ, समझे।' इंद्र भगवान उसके कहते ही समझ गये कि बरसना उनकी खूबी है। यदि नहीं बरसने से उनकी आदत छूट गई तो फिर क्या होगा? और वे गरज-गरजकर इतने बरसे कि पृथ्वी पर सर्वत्र पानी-ही-पानी हो गया।

- दो बड़े व्यक्तियों के अभिमान से दुनिया तबाह हो जाय, ऐसे अभिमान को आग लगा देनी चाहिए।

- नामसझ हस्तियों का दर्प समस्त संसार की तबाही का कारण बन सकता है।

म्याऊँ रौ ठौर कुण अपडै?

म्याऊँ का ठौर कौन पकड़े?

संदर्भ-कथा :

एक बार चूहों की बड़ी भारी पंचायत बैठी। यह तय करने के लिए कि एक हिंसक बिल्ली का अत्याचार बहुत बढ़ गया। पेट भरने के बाद भी चुपके-चुपके आकर खामखाह चूहे मारकर फेंक देती है। इस तरह पंजे दबाकर आती है कि जब तक चूहा मरते समय चूँ-चूँ न करे उसके आने का पता नहीं चलता। यदि उसके गले में घंटी बँध जाये तो टन-टन की आवाज सुनकर चूहे अपने-अपने बिलों में झट से दुबक जायें। किसी ने बिल्ली की पूँछ पकड़ने का जिम्मा लिया तो किसी ने पिछला पाँव पकड़ने का। सारी चर्चा सुनकर एक बूढ़े चूहे ने पूछा, 'यह सब तो ठीक है, बिल्ली का मुँह पकड़े बिना कुछ भी बात नहीं बनेगी। जो शेर उसका मुँह पकड़ना चाहे, वह आगे आये। 'मगर चूहे तो आगे आने की बजाये अंदर अपने बिलों में दुबक गये। बूढ़ा चूहा मुस्कराता हुआ चारों

ओर देखता रहा-पर उसे एक भी चूहा बिल के बाहर नजर नहीं आया।

- खतरनाक काम के लिए कोई आगे नहीं आता।

- असली जोखिम का काम किये बिना सफलता संभव नहीं।

म्हारौ काल तौ कदै ई नीं आवतौ।

मेरा कल तो कभी नहीं आता था

संदर्भ-कथा:

एक खाती साँस तो वर्तमान में ही लेता था, पर जीवन का खास आधार वह आने वाले कल से ग्रहण करता था। चाहे हल की चबू, चाहे चाकी की पाटड़ी या खिली ही क्यों न हो, जो किसी भी सूरत में घड़ी भर से अधिक मेहनत नहीं माँगती पर वह यजमान को कल आने के लिए कहता। और यजमान भी जरूरत की चीजों के लिए तीन दिन पहिले आते थे। वे खाती के स्वभाव के आदी हो गये थे। उसकी बोली में ही शहद घुला था। वक्त पर काम करने का कोई कितना ही उलाहना दे, वह हमेशा मुस्कराता रहता था। गुस्सा तो उसके आसपास भी नहीं फटकता था। तंबाकू की मीठी मनुहार और मीठी बोली। और साथ-ही-साथ हाथ की सफाई ऐसी थी कि यजमानों को किसी भी दूसरे खाती का काम पसंद नहीं आता था। एक खासियत उसमें और थी कि उसके बहाने भी लोगों को सुहाते थे और सच्चाई का आभास देते थे।

एक बार बेटी के ब्याह में उसने गाँव के ही बोहरे से पाँच सौ रुपए उधार लिये। बोहरे ने बिना किसी हील हुज्जत के उसकी जवान पर रुपये गिन दिये। एक साल का कौल हुआ। साल बीतते कोई बरस तो लगते नहीं। कौल के अनुसार बनिया उसकी खतोड़ में आया। खाती ने अशुभ दिन का बहाना बनाकर कल के लिए पुख्ता वादा कर दिया। कुठले में रकम पड़ी है, देने में देर थोड़े ही लगेगी। जब बरस बीतते देर नहीं लगी तो कल बीतने में कैसी ढील! बोहरे के आने पर रंदा लगाते-लगाते ही बोला, 'सेठजी, इतने बरस हो गये आपको बोरगत करते और यह भी पता नहीं कि सोमवती अमावस को रकम लेने पर आपकी सारी उधारी डूब जायेगी। बोहरे ने उलटे असामी का गुण माना और खुशी-खुशी लौट गया। यों कभी नाराजी और कभी खुशी के दौर में तीन महीने चुटकियों में गुजर गये। धीरज वाला बनिया कल के विश्वास पर बिना नागा चक्कर काटता रहा। उसे चक्कर काटने में तनिक हिंसक आनंद की तृप्ति होती थी। असामी की मजबूती उसे बड़प्पन का आभास देती थी। पर बड़ई की घरवाली को पति की बहानेबाजी से

धीरे-धीरे चिढ़ होने लगी थी। एकाध बार कहा-सुनी भी हुई। पर पति मिश्री घुली बोली से कुछ ही देर में उसे खुश कर देता।

एक दिन संयोग की बात ऐसी बनी कि बढ़ई को समधी के बारहवें दिन पर बैठने के लिए जाना पड़ा। बोहरा तो अपनी आदत के अनुसार खतोड़ में आया। मालिक के बाहर होने की वजह से उसने घरवाली को कहा, 'तीन महीने से तू देख ही रही है, इस तरह सभी असामी चक्कर कटवाने लगे तो यह कारोबार कैसे चलेगा! तू पक्का कौल कर, मुझे तेरा भरोसा है।'

घरवाली को सहसा बढ़िया तरकीब सूझी, 'बोली, सेठजी, घर में पैसा तो बचता नहीं। मेरे खेत में तीन महीने का बबूल खड़ा है। खूब बढ़ा होने पर उसकी गाड़ी बेचने से आपकी पूरी रकम चुक जायेगी। मैं कौल करती हूँ कि गाड़ी बिकने पर हाथों-हाथ रुपये वसूल कर दूँगी।' बनिया न जाने किस विचार में उलझा था। उसी वक्त मान गया। बहू के कौल की सराहना करते हुए खुशी-खुशी घर लौट गया। पर बढ़ई ने घरवाली की बात सुनकर माथा ठोका। पछतावे के लहजे में कहने लगा, 'बाबरी, तूने यह क्या कबाड़ा कर डाला? तेरे बीस बरस तो कल आ जायेंगे। पर मेरा कल तो कभी आने वाला ही नहीं था। तू इतना भी नहीं समझती कि मैंने चुकाने के लिए रुपये उधार थोड़े ही लिए थे। बोहरे को उग्र भर कल के भरोसे टरकाता रहता! पर तेरे कौल के अनुसार गाड़ी के रुपये बोहरे को चुकाने ही पड़ेंगे। नहीं तो तेरी जबान मारी जायेगी।'

'और तुम्हारी जबान....।' घरवाली ने प्रतिवाद किया।

'मेरी जबान ऐसी-वैसी नहीं है। मेरा कल कभी आये तो मेरी जबान जाये। खैर, तेरी जबान को बट्टा नहीं लगने दूँगा। बीस बरस चुटकियों में बीत जायेंगे। और बोहरे का खाता साफ हो जायेगा।'

- आदमी का मन ऐसा लचीला है कि वह हर स्थिति के अनुकूल ढल जाता है।

- जो व्यक्ति वचन की मर्यादा नहीं समझता, उसका एतबार करना उचित नहीं है।

म्हारौ गीगौ लाभ बिना भवै ई नीं लुटै।

मेरा बच्चा लाभ के बिना हर्गिज नहीं लौटता।

संदर्भ-कथा:

एक कंजूस बनिये से उसके पड़ोसियों ने शिकायत की कि

उसका बेटा नीम-पागल हो गया है। उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा कि वह घूरे पर इधर-इधर लोट रहा था। सारे कपड़े गंदे हो गये पर वह मुस्कराता रहा। जल्द ही माकूल इलाज करवाइये, वरना पूरा पागल हो जायेगा। बनिया चिंतामग्न हो गया पर दूसरे ही क्षण मुस्कराता बोला, 'पता नहीं कौन पागल है- मेरा लड़का या आप। मेरे लड़के की मैं नस-नस पहिचानता हूँ। वह बिना किसी लाभ के हर्गिज नहीं लौट सकता, यह बात आप गाँठ बाँध लें। वह मेरी इज्जत पर कभी आँच नहीं आने देगा।'

यह विवाद चल ही रहा था कि सेठ का लड़का निःसंकोच उन्हीं मैले कपड़ों में सबके साथ खड़ा हो गया। वह देखते ही सारा माजरा समझ गया। मुस्कराते हुए उसी ने सबसे पहिले बोलना शुरू किया, 'शायद आप पिताजी से शिकायत करने आये हैं कि मेरा दिमाग चल गया है। मैं घूरे पर लोट रहा था। यदि इधर-उधर नहीं लोटता तो ये मोहरें हाथ कब आतीं?' यह कहकर उसने कुरते की जेब से चमचमाती तीन मोहरें निकालीं। मोहरों की चमक देखते ही शिकायत करने वालों के मुँह फीके पड़ गये। उनमें दो आदमी तो मुँह फाड़े घूरे पर ही मौजूद थे। हँसते हुए बनिये के बेटे का पागलपन देख रहे थे। काश! वे भी नीची निगाह किये हुए चलते तो कम-से-कम एक मोहर तो झपट लेते। नीम पागल बेटे का पिता मंद-मंद मुस्कराता शिकायत करने वालों के चेहरे देखता रहा। उन सबका वहाँ से खिसकना भारी पड़ रहा था। शिकायत से पहिले तो बड़े तेज-तेज कदमों से चल रहे थे।

- पाँवों चलते ही बनिये का बच्चा काफी होशियार हो जाता है। उसे तो किसी भी तरह कमाने की जन्म घुट्टी जो पिलायी जाती है।

म्हारौ धन म्हारौ व्हे जावै।

मेरा धन मेरा हो जाये।

संदर्भ-कथा:

एक कंजूस सेठ के पास माया का कोई पार नहीं था। फिर भी कमाई की खातिर उसे रोटी खाने की भी फुरसत नहीं मिलती थी। मजदूर या गरीब भरपेट रोटी खाकर आराम की नींद सोते हैं। पर वह सेठ तो नींद में भी बाप-दादों की बहियाँ टटोलता रहता था-शायद किसी असामी का अधूरा खाता ही मिल जाय! इकलौते बेटे को भर-जवानी में ही दिसावर कमाई के लिए भेज दिया था। घर में फकत दो प्राणी। बहू और ससुर। बहू बहुत समझदार, शांत व शालीन थी। लेकिन ससुर की कंजूसी के आगे उसकी छदाम भर

भी नहीं चलती थी। बहू समझाने की चेष्टा करती तो वह एकाध बरस और सब्र करने के लिए कहता। तब बहू हाथ जोड़कर अरदास करती, 'सब्र तो मैं मरते दम-तक कर लूँगी। पर मुझे इतना समझा दीजिये कि यह अपार माया किसके लिए, किस दिन के लिए है। हाली-मजूर भी हमारी निस्वत आराम से रहते हैं।'

सेठ का एक ही रटा-रटाया उत्तर होता, 'मुझे तो माया जोड़ने के अलावा न खाना अच्छा लगता है और न पहिनना। पर तुम्हें कब मना किया, मरजी हो सो खाओ, पहिनो और गहने बनवाओ।' बहू का भी निहायत छोटा उत्तर होता कि ससुर कुछ खाये-पिये नहीं, तो वह कैसे चुपड़ी रोटी खा सकती है। ससुर मुँह से कभी बहू की तारीफ नहीं करता, मन-ही-मन उस पर काफी गर्व था। धन तो कोई भी जोड़ सकता है, पर ऐसी सुशील बहू बड़े भाग्य से मिलती है।

एक दिन सेठ के क्या जँची सो बहू को हियायत दी कि वह कल सबेरे बेटे से मिलने दिसावर जायेगा। बहुत बढ़िया मुहूर्त है। इस बार बेटे को भी कुछ दिन के लिए साथ ले आयेगा। बहू के मुँह पर लज्जा की झाँई छा गई। बरबस उसके मुँह से निकल पड़ा, 'मैंने तो जाने-अजाने कभी ऐसा नहीं जतलाया। आप का सोचना-समझना ही मेरे लिए ईश्वर का आदेश है।'

सेठ की खुशी का पार नहीं रहा। सचमुच ऐसी बहू सात जन्म की तपस्या के बाद मिलती है। धीमे से मुस्कराते हुए बोला, 'तुम न कहो तो क्या मैं कुछ समझता ही नहीं!' बहू चुप रही।

दूसरे दिन बहू तीन-घड़ी रात रहते ही उठ गई। ससुर की खातिर पहली बार उनकी इच्छा के खिलाफ झरझरते मालपूवे बनाये। केसर व पिस्ते डालकर खीर बनाई। जब ससुर दिसावर के लिए विदा होने लगा तो बहू ने रेजी के कपड़े में बँधे पाथेय का कटोरदान ससुर को सँभला दिया। अखंड सुहागवती का आशीर्वाद देकर सेठ खुशी-खुशी रवाना हो गया। बेटे की कमाई बटोरने की मंशा से वह दिसावर की राह चलता ही रहा, चलता ही रहा। दोपहर को कड़ाके की भूख लगेगी, तभी खायेगा। एक जून की बचत हो जायेगी। बनिये के घर जन्म लिया है तो हर कदम सोच-विचारकर उठाना चाहिए।

सिर पर चढ़ा सूरज पश्चिम की ओर ढलने ही लगा था कि बनिये को तनिक भूख महसूस हुई। सामने ही नीम का गहर-घुमेर पेड़ नजर आया। मुफ्त में ऐसी घनी छाया का आराम आगे न जाने कब मिले ! बुगती के पानी से हाथ-मुँह धोकर वह खाने के लिए

बैठा। कुदरत की मेहरबानी के बगैर ऐसे पेड़ भला कौन लगा सकता है? आधी भूख तो छाया में बैठते ही मिट गई। पर कटोरदान का ढक्कन खोलते ही खीर मालपूवों की खुशबू और रंगत से उसका माथा ही भन्ना गया। बहू को यह क्या औंधी सूझी? माथा खराब हो गया लगता है? पर उसका माथा तो ठिकाने है। ऐसे भोजन का एक कौर भी गले उतरे तो आदत नहीं बिगड़ जायेगी? तीन दिन तो वह पहिले भी भूखा रह चुका है। आगे किसी बस्ती में परिचित घर आया तो दो रुखी-सूखी रोटियाँ और दाल खा लेगा। छाछ मिल जाये तो दाल की भी जरूरत नहीं। उसने झुँझलाहट के मारे कटोरदान वापस बंद भी नहीं किया। आँखों में नींद महसूस हुई तो वहीं गहरी छाया में लेट गया। लेटते ही खरटि भरने लगा। लेकिन बहू ने नींद में भी पीछा नहीं छोड़ा। चाँदी की थाली में खीर-मालपूवे लिए मुँह उधाड़े सामने खड़ी थी। खाने के लिए थाली आगे बढ़ाई तो थाली झटककर वह तत्काल उठ बैठा। इधर-उधर आँखें फाड़कर देखा- कहाँ बहू और कहाँ चाँदी की थाली में परोसे हुए मालपूवे और खीर? सहसा कटोरदान में खीर-मालपूवे खाते काले साँप पर उसकी नजर अटकी। बहू पर उबलते गुस्से के मारे उसे साँप का तनिक भी डर नहीं लगा। बेचारे की भूख मिटे तो अच्छा ही है। साँप को भी अपने प्राणों का मोह होता है।

कुछ देर बाद साँप ने फन उठाकर बनिये की तरफ देखा। बनिये की निगाह तो उधर ही टिकी थी। उसे साँप की आँखों में कृतज्ञता का भाव नजर आया। बनिया कुछ कहे उसके पहिले ही साँप कहने लगा, 'सेठजी, ऐसे स्वादिष्ट भोजन की मुझे कल्पना भी नहीं थी। जिसके खाने की खुशी में मेरी दाढ़ों का जहर अमृत में बदल गया। जो इच्छा हो सो माँगो, आपको वरदान देकर मैं कृतज्ञता के भार से मुक्त होना चाहता हूँ।'

सेठ की खुशी का पार नहीं रहा। अकूत माया जोड़ने का सपना शायद पूरा हो जाये! वचन में बाँधने की नीयत से पूछा, 'जो इच्छा हो-सो माँगू?'

'सिर्फ धन और माया को छोड़कर।' साँप मुस्कराते कहने लगा, 'धन और माया के कचरे का यों ही आपकी हवेली में ढेर लगा है। अधिक कचरा जोड़ने का कुछ भी अर्थ नहीं है। रुखी-सूखी रोटियाँ भी भरपेट खाते नहीं, फिर माया के इस कूड़े-करकट का उपयोग क्या है? आपकी बहू बहुत समझदार है। वह जो कहेगी मान लूँगा। अब एक पल की भी ढील मत करिये। मैं यहीं नीम की खोखल में आपकी प्रतीक्षा करूँगा। पाँवों की आहट सुनते ही

बाहर आ जाऊंगा।’

बहू तो उसकी आज्ञा सपने में भी टाल नहीं सकती। यदि वह खीर-मालपूवे नहीं रखती तो साँप वरदान देता भला! अब उसका सपना जरूर फलेगा- अनंत माया का सपना!

बहू को पुख्ता विश्वास था कि ससुर बड़बड़ाते हुए वापस जरूर आयेंगे। तब वह भी अफरा झाड़ने में कोई कसर नहीं रखेगी। धीरज की भी एक सीमा होती है। ससुर ने दरवाजे की कुंडी खड़खड़ाई तो वह अविलंब खुल गया। बहू इसी प्रतीक्षा में खड़ी थी। पर आश्चर्य कि ससुर ने किंचित् भी खीज प्रकट नहीं की। खुश होकर काले साँप के वरदान की सारी बात सुना दी। अंत में अत्यंत विनम्रतापूर्वक कहा, ‘बहू, आखिर तेरी समझदारी से ही मेरा सपना साकार होगा। अकूत माया के वरदान को छोड़कर हमें दूसरा वरदान माँगना ही नहीं है।’

बहू ने हाथ जोड़कर कहा, ‘इतने बरस आपके साथ रहकर दूसरे वरदान की बात सोच सकती हूँ भला! लेकिन एक शर्त है, आपके साथ चलकर मैं अपने मुँह से ही वरदान माँगूगी। आप निश्चित रहें, आपका कहना मैंने कभी टाला है?’

ससुर को बहू पर पूरा विश्वास था! वह भूखे पेट ही तेज-तेज कदमों से चलने लगा।

चार पाँवों की आहट सुनते ही साँप खोखल से बाहर आया। उनकी ओर थोड़ी दूर आगे बढ़ा ही था कि बहू ने साँप का फन छूकर उसे प्रणाम किया। साँप को वरदान देने की और भी अधिक उतावली थी। उसके आग्रह करते ही बहू ने चुँदड़ी का पल्लू झोली की तरह फैलाते कहा, ‘बस, मुझे तो एक ही वरदान की बरसों से चाहना है कि मेरा धन मेरा हो जाये।’

एक क्षण भर के लिए ससुर का माथा ठनका तो जरूर किन्तु दूसरे ही पल उसके अंतस में अलौकिक आनंद लहराने लगा। असीम शांति की छाया भीतर झूलने लगी। उसने कृतज्ञता भरी आँखों से साँप को देखा। और उसके फन का परस करने के लिए नीचे झुका ही था कि वह न जाने कहाँ अंतर्ध्यान हो गया। चिर-प्रतीक्षित पाँवों की भनक सुनते ही बहू ने आँखें उठाकर ऊपर देखा तो सामने की राह पर उसका पति चला आ रहा है। बहू के मिलने की चिर-उमंग में सराबोर। वात्सल्य से विह्वल होकर बाप ने बेटे को कसकर गले लगाया। बेइंतहा खुशी के आवेग में हकलाते बोला, ‘तेरी सुलक्षणा बहू ने वरदान माँगा तो हमारी माया हमारी

हो गई। मैं बरसों तक परायी माया जोड़ता रहा और मुझ में इतनी भी समझ नहीं आयी। आज से हर दिन-दुखियारे का हमारी माया में साझा है। इस बात को भूलना नहीं! मैं कितने दिन याद रख सकूँगा।’

बहू ने पाँव छूकर ससुर को प्रणाम किया तो ससुर का दाहिना हाथ आशीर्वाद के लिए ऊपर उठना ही था।

- बहुधा सभी मायापतियों का धन उनका अपना नहीं होता, वे तो फकत परायी अमानत के पहरेदार होते हैं। जब तक माया अंतरात्मा से अपनी नहीं हो तो उसके संचय और उपयोग का असली आनंद ही नहीं मिलता।

मैं आप गधेड़ै चढ़ूँ, थनै घोड़ै कठा सूँ दूँ?

मैं स्वयं गधे की सवारी करती हूँ, तुझे घोड़ा कहाँ से दूँ?

संदर्भ-कथा:

चेचक की देवी शीतला-माँ का वाहन गधा है। किसी भक्त ने हाथ जोड़कर कहा, ‘शीतला-माँ, लंबी यात्रा पर जाना है, कड़ी धूप है, यदि सवारी के लिए घोड़ा बख्श दे तो आजीवन तेरा एहसान मानूँगा।’ शीतला-माँ ने आह भरकर कहा, ‘बेटा, मैं तो खुद गधे पर चढ़ी हूँ, तुझे घोड़ा कहाँ से दूँ! ऐसा ही चमत्कार होता तो मैं घोड़े की सवारी नहीं करती?’

- जो व्यक्ति स्वयं असमर्थ हो वह भला दूसरों को क्या सहयोग दे सकता है।

मैं ई मावड़ी तद जी लिया पूत-खसमड़ा।

मैं ही माँ, तब तू जी लिया पूत-खसम।

संदर्भ-कथा:

जिस व्यक्ति का यह किस्सा है, वह यों भी नीम-पागल तो था ही। दुर्योग से वह सन्निपात का शिकार हो गया। बिस्तर पर पड़ा-पड़ा आँय-बाँय बकने लगा। उसकी पत्नी बड़ी घबराई। पास जाकर पूछा, ‘मुझे पहिचानते हो, मैं कौन हूँ?’ सन्निपात में ग्रस्त होकर भी वह था तो उसका पति ही। पतिदेव के मुँह से जो भी निकल जाय, वह अमृत वाणी है। उसने पत्नी के मुँह पर नजर गड़ाकर विश्वास के साथ कहा, ‘क्या मैं जन्म देने वाली अपनी माँ को भी नहीं पहिचानूँगा? तू मेरी माँ है, माँ!’ पत्नी ने माथा ठोक लिया। हिम्मत करके बोली, ‘जब मैं ही माँ हूँ, तो मेरे पूत-खसम

अब तेरे बचने की कोई उम्मीद नहीं है! मुझे विधवा करने से तेरा क्या लाभ होगा?’

- बेसुध या अबूझ व्यक्ति के मुँह से जो निकल जाय, वह कम है।

म्हैं गलौ वढ़ावै।
मैं गला कटवाता हूँ।

संदर्भ-कथा:

किसी शहर में एक मूर्तिकार इतना प्रवीण था कि देश-विदेश से मूर्तियों की माँग आती थी। दिन भर ठक-ठक की आवाज से उसका आँगन गूँजता रहता था। उसके लिए लोगों की जबान पर एक बात रहती थी कि विधाता ने उसके हाथ में कैसा जादू भरा है कि उसकी मूर्तियाँ असली-नकली का विभेद मिटा देती हैं। उसमें फकत एक ही स्वाभाविक कमजोरी थी कि वह अपनी सुंदरता पर ही मुग्ध था। जब दूसरों की मूर्तियों से अवकाश मिलता तो वह स्वयं अपनी ही मूर्ति बनाने में मशगूल हो जाता। यों एक के बाद एक मूर्ति गढ़ते-गढ़ते उसने अपनी एक सौ पाँच मूर्तियाँ गढ़ डालीं। तीन मूर्तियाँ और बनाते ही माला के मनकों जितनी मूर्तियाँ हो जायेंगी-पूरी एक सौ आठ। उसने एक बार मूर्तियों के बीच बैठ कर खास पारखियों को शिनाख्त करने के लिए कहा पर वे सचमुच पहिचान नहीं कर सके। तब उसके गर्व का कोई पार नहीं रहा। आखिर मनुष्य जो था। अपनी कला पर उतना गर्व होना बेजा बात नहीं थी। एक दिन उसके अभिन्न साथी ने मजाक करते कहा, ‘भाई, तू तो अमर हो गया। जब स्वर्ग के दूत तुझे लेने आयेंगे तो वे भी शिनाख्त नहीं कर सकेंगे।’

मित्र की जबान सच्ची निकली या संयोग ही ऐसा घटित हुआ कि एक दिन सचमुच स्वर्ग के तीन दूत उसे लेने आ गये। और वह वाकई मूर्तियों के बीच छिपा हुआ था। मूर्तियाँ पलकें झपाएँ तो कलाकार भी पलकें झपाए। नजर गड़ा-गड़ाकर हार थके पर वे असली-नकली की पहिचान नहीं कर सके। हताश होकर वे स्वर्ग के देवता धर्मराज के पास गये। अपनी दुविधा बताई। तब धर्मराज ने एक वरिष्ठ-दूत के कान में कुछ कहा।

जब एक बार उनके आने का समय निर्धारित हो गया तो मूर्तिकार क्योंकर भूल करता! जब वे दूसरे दिन उसे लेने आये तो वे फिर तनिक असमंजस में फँस गये। शायद किसी मूर्ति की पलक झपे और वे असली की पहिचान कर सके। हर मूर्ति को छूकर देखना उनके लिए वाकई निषिद्ध था। जब पहिचान करने में उनकी

आँखें दुखने लगीं तो वरिष्ठ दूत ने प्रशंसा करते कहा, ‘हम तो केवल मूर्तिकार के दर्शन करने आये हैं। स्वर्ग में उसके नाम की धूम मची है कि उसकी सृष्टि ब्रह्मा से इक्कीस है पर उन्नीस नहीं। एक बार दर्शन हो जाते तो आँखें धन्य हो जातीं। कलाकार के लिए यह कम स्तुति की बात नहीं थी। ऐसी प्रशंसा सुनकर तो पत्थर भी दरक जाता, फिर वह तो मनुष्य था। केवल मनुष्य ही नहीं, एक कलाकार भी था। सहसा एक मूर्ति के होंठों पर मुस्कान दीप्त हो उठी। मुस्कान के साथ आवाज भी सुनाई दी, ‘मैंने ही इन मूर्तियों का सृजन किया है।’ बस इतना सुनते ही मूर्तियों के बीच से उनका सृष्टा अंतर्धान हो गया। पीछे रह गई कलाकार की एक सौ आठ हम-शकल निर्जीव मूर्तियाँ। गर्व करने का यही परिणाम होता है।

- अहंकार का परिणाम अंततोगत्वा घातक ही होता है। जहाँ तक हो उससे बचकर रहना चाहिए।

- मौत का दूसरा नाम अहंकार ही है।

म्हैं तौ छोड़ू पण कंबल नीं छोडै।

मैं तो छोड़ने को तैयार हूँ पर कंबल मुझे नीं छोड़ती।

संदर्भ-कथा:

एक बार दो मित्र चाँदनी रात में नदी के किनारे घूम रहे थे। एक मित्र को अचानक नदी के बहाव में काला-स्याह कंबल तैरता नजर आया तो वह धीरज नहीं रख सका। लालची भी कुछ जरूरत से ज्यादा था। कपड़ों सहित नदी में छलाँग मारी और कंबल को बाएँ हाथ से पकड़ लिया। पर आश्चर्य कि दूसरे ही क्षण कंबल ने भी उसे जकड़ लिया। तब वह जोर-जोर से चिल्लाया-रीछ...रीछ...। मित्र ने किनारे पर खड़े-खड़े ही जोर से सलाह दी- छोड़ दे, छोड़ दे। तब मित्र ने हताश होकर कहा, ‘मैं तो छोड़ने को तैयार हूँ, पर यह कंबल मुझे नहीं छोड़ता।

- लालच में फँसने के बाद छुटकारा पाना आसान नहीं है।

- अपनी विकास यात्रा के दौरान मनुष्य ने ज्ञान-विज्ञान, धर्म, संप्रदाय और जाति रिश्तों को आवश्यकतानुसार उन्हें ईजाद किया, पर एक बार अस्तित्व में आने के बाद मनुष्य की तमाम सृष्टि ने कंबल की नाई उसे जकड़ लिया है। वह छोड़ना चाहे, तब भी कंबल उसे नहीं छोड़ता।

- मनुष्य अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए कोई भी पेशा चुनता है, किन्तु कुछ समय बाद वह ऐसे ही नाग-पाश में उसे

बाँध लेता है। अधिकांश व्यक्तियों की यही त्रासदी है।

संभवतया इस दोहे का स्रोत भी यही उक्ति हो:
कर तो गह्रौ लख कंबली, तिकौ विलूमी तन्न।
जळ ऊंडौ थळ है नहिं, हुई सो जाणै मन्न॥

मैं तौ जावूं बेरा में पड़ण सारू, थूं राब में लूण न्हाक दीजै।
मैं तो जाऊँ कुएँ में गिरने के लिए, तू राब में नमक डाल देना।
संदर्भ-कथा:

यह एक दम्पति की छोटी-सी कथा है जो दोनों ही गुस्सैल थे। उनमें हमेशा कुछ-न-कुछ रार होती ही रहती थी। एक दिन बात-बेबात झगड़ा कुछ अधिक ही बढ़ गया। पत्नी चूल्हे पर चढ़ी हैंडिया में उबलती राब के उनमान खौल उठी। कुएँ में गिरकर आत्महत्या किये बिना यह अनबन बुझने वाली नहीं। वह दृढ़ निश्चय करके घर से भागी। आँगन को पार करते ही उसे अपनी भूल याद आयी-अरे! राब में नमक डालना तो भूल ही गई। पति को अच्छी नहीं लगेगी। वे तेज नमक खाते हैं। वह तत्काल वापस लौटी। पति को हिदायत दी- मैं तो कुएँ में गिरने जा रही हूँ, तुम राब में नमक डाल लेना। देखो भूलना नहीं। तब पति ने मुस्कराते कहा, 'मैंने कभी नमक डाला भी है? तेरा काम तू जाने? मुझे पता नहीं।' पत्नी का गुस्सा टंडा हो गया और वह राब में नमक डालने के साथ-साथ डोई भी हिलाने लगी।

- गहरा पारिवारिक प्रेम जो कभी-कभार गुस्से के माध्यम से भी व्यक्त होता है।

- छद्म क्रोध के बहाने प्रेम-प्रदर्शन।

मैं पड़ी चूल्हा में।
मैं पड़ी चूल्हे में।

संदर्भ-कथा:

एक जाट को चिलम पीने का बहुत शौक था। वह चूल्हे के पास बैठकर तंबाकू फूँकता ही रहता था। पत्नी की सुविधा के लिए वह नागौर के मेले से एक लोहे का चूल्हा ले आया था। मिट्टी के चूल्हे की बजाये उसे लोहे का चूल्हा काफी-सुविधाजनक लगा। चौधराइन बड़े प्रेम से पति को गर्म-गर्म खाना खिलाती। पति चल्लू करते हुए उसे बार-बार आग्रह करता कि वह भी अबेर न करे, गर्म-गर्म खाना खा ले। वह मुस्कराकर जवाब देती, 'मैं पड़ी चूल्हे में। तुम्हारा पेट भर जाय तो मेरी भूख अपने-आप मिट जाती है।'

पति फिर आग्रह नहीं करता। दोनों के बीच यह संवाद अमूमन चलता रहता। एक दिन सर्दियों के दिनों में पत्नी बाड़े में गई तो पति को बिल्ली की भोलावन देकर गई। संयोग की बात ऐसी बनी कि चिलम की कंकरी चूल्हे के नीचे लुढ़क गई। चौधरी हाथ फिराने लगा तो कंकरी की बजाय एक कटोरा हाथ लगा। बाहर निकालकर देखा तो मोटे सोगरे का कचकचता चूरमा। चौधराइन बाड़े से आयी, तब तक वह सारा चूरमा डकार गया। गाय के ताजे घी और मालवी गुड़ से चूरमा बहुत स्वादिष्ट बना था।... तो, यह हमेशा यों चूल्हे में पड़ती है! फिर कंकरी खोजकर मजे से चिलम फूँकी। ऐसा आनंद तो कभी नहीं आया। चौधराइन लौटकर आयी तो उसने पति से गर्म-गर्म खाने का आग्रह किया। उसने पेट पर हाथ फिराते कहा, 'आज पेट में कुछ गड़बड़ है। डेढ़ सोगरा ही खाऊँगा।' पत्नी ने बड़े प्यार से काँसे की थाली में खाना परोसा। घी से चुपड़ा सोगरा, ऊपर गवार फली का साग और दही की कटोरी। चौधरी ने चल्लू करते समय हमेशा की तरह कहा, 'अब तू भी खाले, कभी-कभार तो मेरा कहा मान।'

चौधराइन मुस्कराकर बोली, 'मैं पड़ी चूल्हे में, मेरी बेकार चिंता क्यों करते हो?' चौधरी ने एक गहरी फूँक खींचकर कहा, 'आज तेरे बदले मैं चूल्हे में पड़ गया। चूल्हे में पड़ने का तो आनंद ही दूसरा है।' फिर उसने खाली कटोरा बाहर खींचकर उसके सामने करते कहा, 'अब तेरे साथ मैं भी इस चूल्हे में पडूँगा, अकेली पड़ी तो सचमुच चूल्हे में पटककर ही मारूँगा। मैंने तुझे खाने-पहिनने का कब मना किया सो मुझसे ऐसी चालबाजी की। अब ध्यान रखना।'

- पारस्परिक दुराव का परिणाम अच्छा नहीं होता।

- एक छोटे-से परिवार में भीतर-ही-भीतर जाने कितना दुराव छिपा रहता है।

मैं म्हारौ भालौ खेंच्यौ।
मैंने अपना भाला खींचा।

संदर्भ-कथा:

मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह और उनके छोटे भाई सगत सिंह की एक ऐतिहासिक घटना ने इस कहावत का रूप गढ़ा है। राजा-महाराजाओं को शिकार का शौक तो होता ही है, पर विशेष आनंद उन्हें सिंह या सूअर का शिकार करने से मिलता है। दोनों भाई सूअर के शिकार की खातिर घोड़ों पर चढ़कर गये। संयोग से

पास ही के जंगल में उन्हें जबरदस्त मोटा एक सूअर नजर आया। कुछ ही देर में सूअर घोड़ों के बीच में आ गया। दोनों भाइयों ने एक साथ ही भालों का कसकर वार किया। भाले इतने गहरे लगे कि जब सूअर ने भागने की चेष्टा की तो उसका सारा पेट फट गया। पचासेक कदम दौड़कर वह ढेर हो गया। तब तक पीछे का लवाजमा भी शामिल हो गया। सभी घोड़ों पर सवार थे। महाराणा प्रताप एक विश्वस्त पुरोहित को शिकार में भी साथ रखते थे। पुरोहित ने देखा दोनों भाई आवेश में आकर तकरार कर रहे हैं। विवेकशून्य हठ क्रोध को बहुत अधिक बढ़ाता है। महाराणा प्रताप आग बबूला होकर कह रहे थे कि उनके भाले से सूअर मरा है। और उधर छोटा भाई सगत सिंह भी अड़ा था कि उसके भाले से सूअर का प्राणांत हुआ है। तकरार यहाँ तक बढ़ी कि दोनों भाइयों ने म्यान से चमचमाती तलवारें निकाल लीं। एक-दूसरे पर वार करने के पहिले ही पुरोहित बीच में खड़ा होकर कहने लगा, 'यदि मेवाड़ की शान इस तरह आपस में लड़कर मिटा देंगे तो कौन अकबर का सामना करेगा। आप शांत नहीं हुए तो कटार खाकर यहीं प्राण त्याग दूँगा।' पुरोहित की धमकी उनके कानों से नीचे नहीं उतरी। उधर दोनों भाइयों की तलवारें आपस में टकराई और इधर पुरोहित पाँवों के पास नीचे लुढ़कता ही नजर आया। दोनों की तलवारें नीची हो गई। पुरोहित के पेट से खून की धारा फूटी। अँतड़ियाँ बाहर आ गई। कुछ ही देर में वह छटपटाकर निर्जीव हो गया। भाइयों के क्रोध को पलीता लगा। तकरार ने एक दूसरा रूप धारण कर लिया। एक-दूसरे के मत्थे ब्राह्मण की हत्या का आरोप लगाने लगे! दोनों के मुँह तो फीके पड़ने ही थे। उनकी चेतना के अजाने ही तलवारें म्यान में घुस गई। माथे झुक गये। सगत सिंह ने चुपचाप आगे बढ़कर सूअर की देह से भाला खींचते हुए, पछतावे के सुर में कहा, 'मैं अपना भाला खींचता हूँ। बड़ी भारी भूल हुई। माफ करें, तब महाराणा प्रताप ने भी काँपते हाथ से अपना भाला खींच लिया। तब से किसी भी तकरार में सब्र की पहल करने वाला अपने मुँह से कबूल करता है कि उसने अपना भाला खींचा।

- सब्र रखने से बिगड़ी हुई स्थिति भी सुधर सकती है।

रांड सेठों झालजै के औ छोड़्यौ!

रांड, जोर से पकड़ना कि यह छोड़ा!

संदर्भ-कथा:

एक आदमी को प्रौढ़ावस्था में पत्नी तो खूबसूरत मिली, पर

एकदम औंधे स्वभाव की। वह जो भी कहता, ठीक उसका उलटा करती। चूल्हा जलाने के लिए कहता तो चूल्हे में पानी डाल देती। रोटी खाने के लिए कहता तो उपवास करती। पति ने आखिर हैरान होकर नयी तरकीब सोची। वह पहिले से ही उलटी बात कहता तो वह चाहता वही काम करती। जब वह उपवास करने के लिए कहता वह डटकर खाती। कुछ दिन आराम से बीते। जब पत्नी को नयी तरकीब का पता चला तो वह कहे अनुसार काम करने लगी। रोटी बनाने के लिए कहता तो दिन भर रोटियाँ बनाती। उपवास के लिए कहता तो तीन-चार दिन खाना नहीं खाती। पति हैरान हो गया। भगवान ने स्त्री की साध तो पूरी की, पर स्वभाव तीन लोक से अलग। इससे तो अकेला ज्यादा सुखी था। अब तो जस-तस उससे पिंड छूट जाय तो चैन मिले। अब पत्नी का चक्र घूमते-घूमते फिर उलटे काम करने पर उतारू हो गया था। एक दिन दोनों गाँव के भीम तालाब पर गये। एक भैंस किनारे ही पानी में खड़ी थी। पति ने कहा, 'देख, भैंस की पूँछ मत पकड़ना।' पत्नी ने उतने ही जोर से कहा, 'कोई बात नहीं तेरी इच्छा हो सो कर। लेकिन पानी में गहरे मत जाना। मुझे भी तैरना नहीं आता और तुझे तो पानी के नाम से ही डर लगता है। आगे मत जाना।' पत्नी ने मुँह बनाकर कहा, 'मुझे तो पानी का कहीं डर नहीं लगता। कहे तो भैंस की पूँछ पकड़े-पकड़े तालाब के दो चक्कर काट आऊँ।' पति ने घबराकर प्रतिवाद किया, 'नहीं, ऐसा हरगिज मत करना।' जरूर करूँगी मुझे तुम्हारी तरह मरने का डर नहीं लगता। इतना कहकर उसने जोर से टचकारी दी तो भैंस पानी में आगे बढ़ने लगी। पत्नी को बड़ा मजा आया। उसने सोचा तैरना तो बहुत ही आसान है। कुछ जोर नहीं पड़ता। वह बच्चे की नाई किलकारियाँ करते ऐन तालाब के बीच तक आ गई। पति असमंजस में पड़ गया। सोचा, अपने प्राण सबको ही प्यारे होते हैं। डूबने के डर से पूँछ थोड़े ही छोड़ेगी। जोर से कहा, 'अब वापस लौट आ। ऐसा न हो कि पूँछ छूट जाय, जोर से पकड़ रखना।' वह आगे भी कुछ बोली पर पति को साफ सुनाई नहीं पड़ा। किनारे पर खड़े-खड़े ही उसने देखा कि वह बचने के लिए अंधाधुंध हाथ-पाँव मार रही है। पर पानी का दिल पत्थर से भी अधिक कठोर होता है उसकी लहरों में कहीं भी लिहाज मुरौवत नहीं होती। पत्नी के बाल तीन बार पानी पर कुछ-कुछ नजर आये, फिर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। वह अवलचंडी औरत अपने स्वभाव और अपनी देह के साथ ठेठ गहरे तक डूब गई। पति की आँखें भर आईं। उसका सोचना गलत साबित हुआ।

- अपने बुरे स्वभाव का फल खुद को ही भुगतना पड़ता है।

राम नीं करै जित्ती राँड कर बतावै।

राम नहीं कर सकता, जितना वेश्या कर बताती है।

संदर्भ-कथा:

किसी एक बनिये को अपने गाँव में पर्याप्त कमाई की गुँजाइश नजर नहीं आयी तो उसने दिसावर जाने का पुख्ता निर्णय कर लिया। आस-पास का इलाका चोर डाकुओं के मारे बड़ा परेशान था। गाँव में एक पक्का रामद्वारा था। उसके महंत की काफी मान्यता थी। रामद्वारे के भीतर का हाल राम महंत ही जानें, पर औरतें उनकी प्रशंसा करते थकती नहीं थी। चरणों में दंडवत करतीं। रामद्वारे के सभी मुस्टंडों को प्रसाद खिलाने की खातिर परस्पर होड़ लगी रहती थी। रामनाम की ऐसी ही महिमा होती है। दिसावर जाने वाले बनिये ने पानी के पहिले मेढ़ बाँधने की बढिया तरकीब सोच ली। एक लोहे की पेटी में घर का सारा गहना और जमा- पूँजी भरी। विदा होने से एक दिन पहिले सिर पर पेटी उठाये वह रामद्वारे में पहुँचा। महंतजी को दंडवत् करके तनिक कृपा की खातिर अरदास की। चेलों के समझाने से महंतजी आखिर मान गये। बोले, 'तूने रामदुआरे में माया लाकर अच्छा काम नहीं किया। फिर भी राम का भगत होने के कारण तुझे निराश नहीं करूँगा। अपने हाथ से ही आँगन में गड्ढा खोदकर तेरा प्रपंच गाड़ दे। राम की इच्छा होगी तो मिट्टी नहीं होगा।'

सेठानी ने भीगी आँखों से पति को विदाई दी। और पति लोटा-डोर लेकर बड़ी खुशी-खुशी दिसावर के लिए रवाना हो गया। शकुल भी अच्छे हुए। गाँव की एक मात्र सुंदर वेश्या रामद्वारे से लौट रही थी। हरे वेश पर सोने के गहने दमक रहे थे। मुस्कराकर बनिये को मुजरा किया। बोली, 'दिसावर में तो अनाप-शनाप कमाई करके लौटेंगे। पर रामदुआरे में जमा-पूँजी सौंपकर अच्छा नहीं किया। महंत बहुत ही कुटिल और लोभी हैं पुरुषों की पहिचान में मुझसे कभी भूल नहीं होती। इसकी बजाय तो मेरे घर में आपकी माया ज्यादा सुरक्षित रहती। मैं हराम की कमाई से हमेशा दूर रहती हूँ। और ये महंत व साधु संन्यासी हराम का ही खाते हैं। खैर, हुआ सो हुआ। आप खुशी-खुशी जाइये और टाट से माया बटोरिये।'

पहिले भी एकाध बार वेश्या के शकुन से उसकी डूबती उधारी बच गई थी। एक ठाकुर ने नशे की रौ में ब्याज सहित पूरी रकम चुका दी थी। आवाज देकर गढ़ में बुलाया था। होश रहते तो वह कई बार भला-बुरा सुनकर लौटा था।

पूरे बरस तक बनिये ने दिसावर में आशा से अधिक कमाई की। मिट्टी में भी हाथ डाला तो वह सोना बन गयी। एक विश्वस्त नौकर को साथ लेकर अपने गाँव लोटा। सेठानी की बायीं आँख फड़कने का प्रत्यक्ष चमत्कार हुआ। पर दूसरे दिन महंत के पास जमा पूँजी की पेटी लेने गया तो उसमें मिट्टी के ढेले भरे थे। बनिया बलि के बकरे की तरह काँपने लगा। हकलाते पूछा, 'खरे गहने और नकदी भरकर पेटी गाड़ी थी। इसमें तो केवल ढेले भरे हैं।' महंत की आँखें अंगारों-सी दहक उठीं। 'हराम की कमाई का यही फल मिलता है। मैंने तो पहिले ही मना किया था।' बनिया बहुत गिड़गिड़ाया। हाथ जोड़े। पर महंत के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। अनर्गल प्रलाप करने लगा तो चेलों ने धक्के देकर बाहर निकाल दिया। उसने वापस घुसने की चेष्टा की तो भारी-भरकम कपाट बंद हो चुके थे। घर जाने की बजाय वह सीधा उसी वेश्या के घर पहुँचा। आँसू बहाते भीगे स्वर में बोला, 'तूने जो कहा, वही हुआ। पेटी का ताला तो वैसा ही लगा था। पर उसके भीतर ढेलों के अलावा सोने का एक तुस भी नहीं मिला। तूने पहिले क्यों नहीं बताया?'

'पहिले बताती तो मानते थोड़े ही। हाथों से कमाई माया के लिए रोते शर्म नहीं आती। खर्च तो कुछ करते नहीं, चुपड़ी रोटी तक नहीं खाते। पेटी में ढेले हों या सोना तुम्हारे लिए क्या फर्क पड़ता है। समझ लेना कि सोना ही भरा है।'

सेठ को वेश्या की बात तनिक चुभ गई। बोला, 'वाह! मिट्टी को सोना कैसे समझ लूँ। मेरे दिल में तो आग लगी है और तू मजाक कर रही है? तू जुगत लड़ाये तो काम बन सकता है। आधा धन तू रख लेना। वेश्या ने तुनककर कहा, 'मुझे हराम की कमाई नहीं चाहिए। मर्द होकर रोते हो तो कुछ तकरीब भिड़ाऊँगी। फिर उसने बनिये को सारी तरकीब अच्छी तरह समझा दी। बनिये को तो इशारा ही काफी होता है। सो दूसरे दिन सूरज भगवान के आलोक की पहली किरण फूटी तो वह वेश्या चाँदी की बड़ी पेटी सिर पर उठाये रामद्वारे पहुँची, तब महंत और सेठ में मार हुज्जत हो रही थी। हुज्जत के बीच महंत की पैनी नजर से शुद्ध चाँदी की पेटी छिपी नहीं रही। वह निराश होकर लौटने लगी तो महंत ने टोका, 'न कुछ बात न कुछ चीत, चुपचाप आयी और चुपचाप चल दी। कुछ जरूरी काम हो तो बता, राम के दरबार में सभी बराबर हैं।' वेश्या ने गहरा निश्वास भरकर कहा, 'माँ कल आने वाली थी। एक बार समाचार भेजने के बाद वह रुकती नहीं। शायद तबियत कुछ खराब हो गई हो। उसे संभालने जा रही हूँ। घर पर

बैलगाड़ी आ गई होगी। पाँच-सात रोज माँ की सेवा करूँगी। चोर लुटारों के डर से इस पेटी की खरी माया आपको सौंपकर, निश्चित होना चाहती थी। पर यहाँ तो पहिले से झमेला चल रहा है।' इतना कहकर उसने पेटी खोलकर खरी माया बताई तो महंत की आँखें ऊँची ललाट में चढ़ गई। इतनी माया का तो वह सपना भी नहीं देख सकता था। एक-से-एक बहुमूल्य जवाहरात भरे पड़े थे। बनिये की पेटी से बीस गुनी अधिक माया। राम है तो सही। भगतों का भला वह नहीं सोचेगा तो और कौन सोचेगा? पर हरामी बनिये ने ऐन वक्त पर कैसा कबाड़ा कर दिया। बनिये ने वेश्या की मौजूदगी को अनदेखा करके जोर से पूछा, 'तो मेरी पेटी की जमा-पूँजी आप मुझे नहीं सौंपेंगे?

महंतजी मुस्कराकर कहने लगे, 'मैं सौंपने वाला कौन होता हूँ? यहाँ रामदुआरे में तो राम ही लेते हैं और राम ही देते हैं। मैं तो तेरा आपा परखना चाहता था। तू परेशान हुआ, उसके लिए रामजी तुझे सौ मोहरों का पुरस्कार देंगे।' गुरु की सानी का अर्थ समझते ही एक होशियार चेला पेटी की सारी जमा पूँजी ले आया। दूसरे चेले ने बनिये को जबरन सौ मोहरें सौंप दी। फिर भी वह खुश नहीं हुआ। मुँह चढ़ाये-चढ़ाये ही रामदुआरे से बाहर निकल गया। महंत ने बार-बार आग्रह किया तो वह नगीनों की फर्द बनवाने के लिए मान गई। एक मुस्टंड चेले ने फकत तीन नौलखे हारों की फर्द खुशी के मारे काँपते हाथों से बनाई थी कि वेश्या की दासी भीमकाय गाड़ीवान को लेकर रामद्वारे में आ धमकी। गाड़ीवान के हाथ में तेल से चुपड़ा भरकम लट्ठ था। बेताब दासी ने पूरे जोर से खुशी की बधाई सुनाते समय महंतजी की ओर देखते कहा, 'माजी आ गई है! अब आपको तकलीफ करने की जरूरत नहीं। मालकिन को जल्दी बुलाया है।' फिर उसने मालकिन की ओर आँखें नचाते कहा, 'चलिये, फुरती करिये। नहीं तो वे स्वयं चली आयेंगी।'

गाड़ीवान को दासी से भी कहीं ज्यादा उतावली थी। ज्यों ही मालकिन ने तीनों हार चाँदी की पेटी में रखे, उसने तत्काल पेटी अपने हाथ में ले ली और दूसरे हाथ से लट्ठ बजाते हुए रामद्वारे के बाहर निकल आया। वेश्या ने माफी माँगते हुए महंत को विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़े। तब दासी ने मुस्कराते कहा, 'इसमें माफी माँगने की क्या जरूरत है। रामजी की मेहरबानी से महंतजी भ्रष्ट होते-होते बच गये।' महंतजी ने बड़ी मुश्किल से गुस्से को रोका। बरबस उनके होंठों से विदग्ध फुसफुसाहट निकल पड़ी-राम नीं करै जिती राँड कर बतावै।

- कुछ विशिष्ट विभूतियों की कारगुजारी का मुकाबला ईश्वर

भी नहीं कर सकता। केवल वेश्या ही कर सकती है।

राजा रै अदीठ वागा, तौ ई कुण कैवै नागो?

राजा के अदीठ वागा, फिर भी कौन कहे नागा?

संदर्भ-कथा:

किसी एक राज का राजा बड़ा सनकी था। उसकी सनक के मारे रानी, राजकुँअर, दीवान और दरबारी सभी हैरान थे। राजा का खजाना उसकी सनक की वजह से खाली होता जा रहा था। उसे बस एक ही सनक थी। नये-नये और अत्यंत मँहगे वस्त्र पहिने बिना उसे चैन नहीं मिलता था। कई ठग उसे ठगकर चलते बने, पर वह अपनी सनक से बाज नहीं आया। पर आखिरी ठग तो पिछले सारे ठगों के बाप निकले। उनकी कारीगरी का ऐसा कमाल कि जो झूठा, दुराचारी और दोगला हो, उसको ही राजा के अदीठ वस्त्र नजर नहीं आते, बाकी सब तो उन विचित्र वस्त्रों की कला निहारकर झूम उठते हैं। कई महीनों तक उसके अदीठ वस्त्र तैयार होते रहे। खजाना कपूर की नाई उड़ने लगा। रानी के बार-बार तकाजा करने पर आखिर अदीठ लिबास तैयार हुआ। राजा को पुराना वेश उतारने के लिए कहा और नया लिबास पहिनाया तो सभी दरबारी, दीवान, राजकुँअर और रानी वाह-वाह कर उठे। कोई भी भ्रष्ट, झूठा और दोगला नहीं बनना चाहता था। तब राजा ने भी अच्छी तरह नये लिबास की प्रशंसा की। झूठे और दोगले को दरबारियों ने राजा नहीं माना तो उसकी कैसी दुर्गति होगी, जिसकी दुर्दांत कल्पना से भी वह सिहर उठा। रानी तो खुशी के मारे नाचने सी लगी। तब राजा को पुख्ता विश्वास हो गया कि उसके अलावा सभी को नया लिबास बहुत पसंद आया है। लाखों रुपये जो खर्च हुए हैं। वह झूठा और दोगला साबित हो गया तो उसे कौन राजा मानेगा? रानी की रजामंदी लेकर वह शहरवासियों को भी बहुमूल्य पहिनावा दिखाना चाहता था, सो हाथी के सुनहरे हौदे पर बैठकर उसकी सवारी निकली। सारे शहरवासियों को अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए वाह-वाह करना पड़ा। पर एक अबोध बच्चे ने जब राजा को नितांत नंगा देखा तो वह अँगुली उठाकर तुतलाते बोला- राजा नंगा, राजा नंगा, फिर तो शहर में राजा के नंगेपन का ऐसा हल्ला मचा कि राजा शर्म से सिर झुकाकर महल में लौट आया। निहायत सादे कपड़े पहिने। एक भोले बच्चे ने सच्चाई उजागर करके राजा की पुरानी सनक मिटा दी। राजा का खजाना फिर से भरने लगा।

- पारदर्शी और निःस्वार्थी मनुष्य ही सच्चाई को नहीं छिपाता, उसे सरे आम प्रकट कर ही देता है।

रायां रा भाव रातै ई गया।
राई के भाव तो रात को ही गये।

संदर्भ-कथा:

एक बनिया राई का बड़ा व्यापारी था। धन-माया के भंडार भरे थे। किसी एक तेरस की रात तीन चोर उस सेठ के घर में घुसे। सर्दियों की ठंडी रातें थीं। सेठानी ने लघुशंका के लिए दरवाजा खोला तो चोरों की झलक मिल गई। धीरे से दरवाजा बंद करके पति की बगल में सो गई। चोरों की खबर सुनकर भी वह विचलित नहीं हुआ। फुसफुसाहट की बजाये पत्नी से ऊँची आवाज में बात करने लगा। उन चोरों को कई बार पति-पत्नी की बातों से धन-माल का पता चल गया था। मुखिया ने बातचीत की भनक सुनी तो दरवाजे से कान लगाकर सुनने लगा। बातचीत साफ सुनाई दे रही थी। सेठ ने पूछा, 'राई की बोरियाँ कहाँ पड़ी है?' सेठानी ने ऊँची आवाज में जवाब दिया, 'कहाँ क्या, वहीं नोहरे में! इन्हें कौन खाता है, सो रात को चिंता करने की जरूरत पड़ी, जब सोने दो। तुम्हें तो लोभ के मारे नींद ही नहीं आती!' मुखिया सोचने लगा बेचारों को क्या पता कि उनकी बातचीत हलके का नामजद चोर सुन रहा है। सेठ ने झिड़कते पत्नी को कहा, 'तेरे भरोसे तो धन कमा लिया मैंने! तू क्यों ध्यान रखने लगी। पता है कल ही अचानक राई का भाव एक तोले का एक रुपया हो गया। सबेरे ही सारी राई खरीद लूँगा। मैं पास के गाँवों में पेशगी देता रहूँगा। ते नोहरे से सारी बोरियाँ घर के आँगन में डलवा देना। भूलना नहीं।' सेठानी ने झुँझलाते कहा, 'सबेरे-की-सबेरे देखी जायेगी। अब सोने दो मुझे। तुम्हें माया के अलावा दूसरी बात सूझती भी है? 'मुखिया कान लगाये कुछ देर खड़ा रहा। कुछ भी आगे सुनाई नहीं दिया तो मुखिये का इशारा पाकर दोनों साथी चुपचाप सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। वह भी खुशी के मारे छत पर क्या चढ़ा मानो आकाश छू लिया हो।

लेकिन दूसरे दिन राई के भाव का पता किया तो रुपये की डेढ़ धड़ी। मुखिये का दिल बैठ गया। आस-पास के गाँवों में भी पता किया तो वही भाव। सब तरफ से निराश होकर आखिर वह उसी सेठ की हाट पर आया। सेठ ने खुली बही पर लिखते-लिखते ही पूछा, 'मुझे पाँच और बोरियाँ खरीदनी हैं। तुम्हारे पास जितनी भी हों ले आओ!' मुखिया ने खुश होकर कहा, 'मेरे पास तो तीन बोरियाँ हैं, अभी ले आता हूँ।' बनिये ने सबसे पहिले ठाकुर को खबर करने के बाद ही दुकान खोली थी। तीनों चोर सिर पर धरी बोरियाँ उतारकर चुपचाप दुकान पर बैठ गये। मुखिये ने भाव के बारे

में पूछा तो सेठ ने कहा, 'पहिले तुम बताओ।' मुखिये ने सोच-विचारकर जवाब दिया, 'रुपये की सवा तोला।' सेठ ने अब भी बही पर से नजर नहीं उठाई। विस्मय प्रकट करते पूछा, 'क्या कहा, रुपये की सवा तोला? मुझे नहीं लेनी। किसी और दुकान पर चले जाओ।'

तब मुखिये ने दबी जबान से पूछा, 'आप क्या भाव लेंगे?' बनिये के मुँह से रुपये की दो धड़ी का भाव सुनकर मुखिये का साँस थम गया। हकलाते कहा, 'रात को तो एक रुपये में एक तोले का ही भाव था।' बनिये ने हँसते हुए जोर से कहा, 'वह भाव तो घड़ी रात रहते ही खतम हो गया।' तब तक ठाकुर के कारिदों ने तीनों चोरों को पकड़ लिया। मोटी रस्सियों से बाँधते हुए बोले, 'इस भाव से तो हम लेंगे। चलों, गढ़ में चलो तो सही।'

- बड़े-से-बड़ा चोर भी बनिये की चालाकी को नहीं पहुँच सकता।

- समय चूक जाने के बाद पछतावे के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

रावलजी रौ भालौ भंजू।

रावलजी का भाला तोड़ डाला।

संदर्भ-कथा:

जैसलमेर के राजा रावल कहलाते हैं। किसी एक रावल से संबंधित यह कथा है कि उसने आदेश किया कि युद्ध में तोपों के द्वारा ही जीत होती है, सो तोप का आविष्कार करना जरूरी है। रावल के आदेश की पालना से कौन इन्कार करता। कारीगरों ने मेहनत तो काफी की, पर तोप बनी नहीं। तब रावल ने कहा, 'कोई बात नहीं, तोप के भाले ही बना दो, दूर से फेंककर ही दुश्मन को मार डालेंगे।' सो रावल के आदेश से तोप को गलाकर उसके कई नुकीले और लंबे भाले बने। रावल बहुत खुश हुआ। कहा, 'यहाँ बैठकर वहाँ प्रहार करेंगे।' तब एक दूसरे सरदार ने शंका की, 'यदि वहाँ से यहाँ किसी दुश्मन ने प्रहार कर दिया तो...।' वह शंका सुनते ही रावल का माथा ठनका। धीरे से बोला, 'तब तो बहुत ही बुरा होगा। वहाँ से प्रहार करने पर यहाँ काफी नुकसान पहुँचेगा। सारे भाले तोड़कर जमीन में गाड़ दो।' आखिर वही हुआ, जो रावल ने कहा।

- पहिले सोच-विचारकर काम नहीं करने से, बाद में काफी नुकसान उठाना पड़ता है।

रावळी तेल पल्ला में लीजै।

रावले का तेल पल्लू में लेना।

संदर्भ-कथा:

दीवाली के त्यौहार पर प्राचीन प्रथा के अनुसार ठाकुरों के द्वारा दीये जलाने की खातिर तयशुदा मात्रा में तेल मिलता था। एक-एक करके नाम दर्ज हो जाते थे। किसी एक ठिकाने में तेल लेने वालों की पाँत लगी थी। एक औरत के पास तेल लेने का बासन नहीं था। उसने ऐन मौके पर अपनी ओढ़नी का पल्लू ही सामने कर दिया, ताकि भविष्य में उसका हक बना रहे। ठिकाने के कारिदों को इससे कोई मतलब नहीं था कि तेल का सदुपयोग होता है कि नहीं। उन्हें तो प्रथा की अनुपालना करनी थी सो मौजूदा अमले ने पल्लू में ही तेल डाल दिया और उसने घर का नाम दर्ज करवा दिया।

- राज से मिलने वाले लाभ का भले ही दुरुपयोग हो, उसे हर सूरत में ले लेना चाहिए। आजकल इसके लिए कई ज्वलंत उदाहरण हैं जो लोकतंत्र की नींव खोदने के लिए पर्याप्त हैं।

लजवंती घर में वड़ी, छिनाळ जाणै म्हारा सूं डरी।

लाजवंती घर में घुसी, छिनाळ समझे मुझसे डरी।

संदर्भ-कथा:

किसी शीलवती और छिनाळ का घर पास-पास था। पड़ोसियों में अमूमन तकरार हो ही जाती है। एक दिन दोनों में काफी कहा सुनी हो गई। शीलवती की जबान तो मर्यादित थी पर छिनाळ की जबान से चिनगारियाँ छिटकने लगीं। वह लाज के मारे घर में घुस गई। छिनाळ ने समझा कि उससे डर गई। उसका सामना कोई कर सकता है भला! और भी जोर-जोर से उसे चुनौती देने लगी। शीलवती जो घर में एक बार घुसी वापस बाहर ही नहीं आयी।

- हर व्यक्ति की अलग-अलग मान्यताएँ होती हैं, जिनके अनुसार ही उसके कार्य नियंत्रित होते हैं।

लाखाजी वाळी कांबां।

लाखाजी वाली छड़ियाँ।

संदर्भ-कथा:

लाखा भाटी के बारे में एक आख्यान है कि उसे देवी का इष्ट था- प्रत्यक्ष उसकी सहायता करती थी। छोटी फौज का वह सरदार था। छापामार लड़ाई के लिए उसका बड़ा आतंक था। लोग उसके नाम से डरते थे। धीरे-धीरे भी अपने पराक्रम पर अंहकार होने

लगा। किसी एक सूर्यग्रहण की बात है, आधे सूरज पर काली छाया पुत गई थी। सूर्य की उस दुर्दशा पर लाखा भाटी को बड़ा दुख हुआ। वह सूर्य की इस विपदा को समाप्त करना चाहता था। उसने नशे की खुदक में आदेश दिया कि एक सौ आठ घुड़ सवार सूर्य की दिशा की ओर कूच करेंगे। बड़ा लंबा सफर तय करना है। सो घोड़े पाँच बरस की आयु से अधिक न हों और सवार पच्चीस वर्ष से बड़े न हों। उसके हुक्म को टालने वाला तो कोई नहीं था। दो योद्धाओं ने नियम का उल्लंघन किया। एक सवार घोड़े की बजाये घोड़ी लाया, जो तीन दिन पहिले ही ब्याई थी। उसकी बछेरी को जस-तस कोशिश करके पीछे ही छोड़ा। एक दूसरे घुड़सवार का पिता बहुत बूढ़ा था। इकलौता बेटा ही उसकी देख-भाल करता था। वह साथ हो लिया। उसी के आदेशानुसार चमड़े के एक भातड़े में छेद करवाये। उसमें बंद करके घोड़े की पीठ पर बाँध दिया।

सो एक दिन जोशी से शुभ मुहूर्त दिखाकर लाखा भाटी सूर्य का ग्रहण मिटाने हेतु एक सौ आठ घुड़सवारों के साथ जोश-खरोश के साथ खाना हो गया। सात रोज चलने के बाद वे एक अँधेरे जंगल में फँस गये। किसी ओर से उजाला नजर नहीं आ रहा था। रास्तों के निशान बंद हो गये थे। ज्यों-ज्यों पार करने की चेष्टा की तो बुरी तरह दिशा-भ्रमित होते गये। घुड़सवार इधर-उधर बिखर गये तो मुश्किल हो जायेगी। सबको एक जगह इकट्ठे होने का आदेश दिया। तब तक विपत्ति की आशंका जानकर बूढ़े बाप ने बेटे को सारी तरकीब समझा दी थी। पच्चीस बरस के नौजवान साहसी तो खूब थे, पर उनमें अनुभव और बुद्धि की कमी थी। बेटे ने लाखा भाटी को तरकीब बता दी। फिर क्या ढील? ताजी ब्याई घोड़ी की लगाम खोलकर एकदम आजाद कर दी तो उसे एकदम बछेरी की याद आयी। स्तनों से दूध छलकने लगा था। वह हिनहिनाती हुई अपने घर की ओर चलने लगी। घोड़ी से ज्यादा पीछे न रह जाएँ, इसलिए सभी घुड़सवारों ने लाखा के आदेश से पेड़ों की छड़ियों तोड़ ली। घोड़े छड़ियों की मार खाते हुए घोड़ी के पीछे ही लगे रहे। आखिर आठवें रोज वे अँधेरे जंगल से बाहर आये। उन सबकी खुशी और घोड़ों की हिनहिनाहट से सूरज का उजाला अधिक दमकने लगा। एक आश्चर्य की बात और कि घुड़-सवारों की छड़ियाँ सभी सोने की हो गई थीं। लाखा भाटी ने एक बार और अँधेरे जंगल में प्रवेश करने के लिए कहा, पर एक भी घुड़-सवार राजी नहीं हुआ। फिर लाखा ने आग्रह किया तो चमड़े के भातड़े से बूढ़ा बाहर निकला। लाखों ने उसके चरण छूए। एहसान माना। उसे काफी इनाम दिया। वह साथ नहीं होता तो एक भी सवार नहीं बचता। उस दिन से लाखा भाटी के दिल में बूढ़ों के प्रति बहुत सम्मान उमड़ पड़ा।

- अनहोने काम के लिए साहस दिखाने पर कुछ-न-कुछ तो पुरस्कार मिलता ही है, जिस तरह लाखा भाटी को सोने की छड़ियाँ मिलीं।

- बुजुर्गों का अनुभव बहुत ही महत्वपूर्ण और अत्यधिक उपादेय होता है।

लारै भाज-भाज घालती।

पीछे भाग-भागकर डालती थीं।

संदर्भ-कथा:

पश्चिमी राजस्थान में अकाल तो पड़ते ही रहते हैं। भयंकर अकाल के दौरान किसी एक गाँव में एक चौधरी मजबूरी के कारण भीख माँगने लगा। लेकिन उसके द्वारा भीख माँगने में भी एक तरकीब थी। वह किसी के सामने हाथ नहीं पसारता था। पीठ पीछे दोनों हाथों में एक बासन रखता था। मुँह से कुछ भी याचना नहीं करता था। घरों के सामने निकलता तो खाती-पाती औरतें पीछे दौड़कर अनाज या रोटियाँ डाल देती थी। इसलिए कि वह किसी घर के सामने रुकता नहीं था। सामान्य चाल से चलता ही रहता था। जब अगले वर्ष अच्छी बरसात हुई तो चौधरी के खेत में मन-वांछित अनाज हुआ। पर लोग-बाग ताना दिये बिना नहीं रहते थे। तब चौधरी गंभीर बनकर जवाब देता कि उसने किसी के सामने हाथ पसारा हो तो बताओ। औरतों पीछे भाग-भागकर डालती थीं। उसने तो किसी को भी भीख देने के लिए नहीं कहा। बात सही भी थी। चौधरी का उत्तर सुनकर सभी चुप हो जाते।

- मदद लेकर भी जो व्यक्ति एहसान न मानना चाहे उसके लिए।

- जो व्यक्ति एहसान न मानने का कुछ-न-कुछ औचित्य खोज ले।

लिख-लिख भेजूं पत्र में, थू सित्तर में नीं बहत्तर में।

लिख-लिख भेजूं पत्र में, तू सत्तर में न बहत्तर में।

पत्र=पत्र, चिट्ठी।

संदर्भ-कथा:

किसी सेठ का इकलौता बेटा कुसंगति के कारण एक वेश्या पर आसक्त हो गया। और पत्नी के प्रति घोर उपेक्षा बरतने लगा। चोरी-छिपे उसने पत्नी के काफी आभूषण उस वेश्या के हवाले कर दिये। वेश्या ज्यों-ज्यों मना करती, उसके प्रति उसका विश्वास

बढ़ता ही गया। जब उसका प्यार पागलपन की सीमा छूने लगा और पेढ़ी से भी जब-तब रकम मारने लगा, तब बहू ने परिवार के भले की खातिर सास के सामने मन की व्यथा प्रकट की। श्वसुर को संदेह तो होने लगा था पर इकलौते पुत्र की चरित्रहीनता उसके गले उतरना ही नहीं चाहती थी। लेकिन सेठानी के कहने पर उसे विश्वास करना ही पड़ा। पेढ़ी पर खुद बैठना शुरू कर दिया। घर का सारा गहना तिजोरी में रखकर चाबी अपने पास जाबते से रखली। रुपया नहीं मिलने के कारण वेश्या उसके प्रति काफी उदासीन हो गई, पर पीछा भी नहीं छोड़ना चाहती थी। चूहा पिंजरे में रहे, तब तक ठीक ही है। किन्तु बाप को इकलौते चूहे की बहुत चिंता थी। डॉट-फटकारकर दिसावर में कमाई करने भेज दिया। बेटे की मंशा भी यही थी। यहाँ उसका हाथ एकदम तंग हो गया था। अपनी प्रियतमा को समझा-बुझाकर वह राजी-खुशी विदा हो गया। दोनों की आँखें भर आईं।

दिसावर में प्रिया की खातिर उसने खूब मन लगाकर काम किया। मेहनत में भी कसर नहीं रखी। बुद्धिमान तो था ही। पिता का विश्वास अर्जित करने के लिए उसने पहिले उनके पास काफी रुपये भेजे। सेठ बहुत खुश हुआ। इतनी कमाई तो वह भी नहीं कर सका था। तब तो वेश्या के प्यार का नतीजा अच्छा ही हुआ। मर्द का क्या वह तो बाड़ में पेशाब करता ही रहता है। तीन महीने और गुजर गये तो सेठ ने पुत्र के एक खास विश्वस्त मित्र को वहाँ भेजा। दोनों मिलकर बहुत खुश हुए। सेठ के बेटे ने मित्र से प्रिया के समाचार जानने चाहे। मगर व्यवसाय के अलावा उसकी रुचि तो किसी अन्य बात में थी ही नहीं। कुछ दिन बाद मित्र गाँव जाने लगा तो उसने पिता के लिए अलग रुपये भेजे और प्रिया के लिए दस तोले का चंद्रहार दिया। किसी को कानोंकान पता न चले। उसे कहना कि तुम्हें सबसे अधिक प्यार करने वाले ने यह हार भेजा है। नाम बताने के बाद ही उसे हार दे। उसे पूरा विश्वास है कि वह पहिला नाम उसी का ही लेगी। यों चार-पाँच प्रेमियों का उसे पता भी है। पर उन्हें वह ऊपरी मन से प्यार करती है। असली प्रेम तो उसी के साथ है। अंतिम हिदायत पत्र द्वारा पूरे समाचार भेजने की थी। उसे भी कहना कि पत्र दे। मित्र की इच्छा कुछ दिन और रहने की थी। पर सेठ के बेटे ने आग्रह किया तो वह दूसरे दिन खाना हो गया।

पिता को ऐसी आशा नहीं थी कि बेटा इतना जल्दी सुधर जायेगा। सेठानी से भी पुत्र की बड़ी तारीफ की। दूसरे दिन अल्ल सबेरे मित्र का उपहार लेकर वह वेश्या के घर गया। देर से सोने

के कारण वह देरी से ही उठी थी। मित्र ने खूब दरवाजा खटखटाया। वह हताश होकर जाने ही वाला था कि वेश्या ने उनींदी आँखों से दरवाजा खोला। किसी अपरिचित मानुस को सामने देखकर पहिले तो वह हिचकी फिर आदर-भाव से ऊपर ले गई। मित्र को तो अपना कर्तव्य निबाहना था। उसने सहज भाव से कहा, 'सबेरे-सबेरे तुम्हारे लिए एक खुशखबरी लेकर आया हूँ। बताओ, क्या खुश-खबरी हो सकती है।' वेश्या ने दिमाग पर काफी जोर दिया, तब भी वह सुराग नहीं लगा सकी। तब अजनबी व्यक्ति ने कहा, 'तुम्हें सबसे अधिक चाहने वाले ने एक बहुमूल्य चंद्रहार भेजा है। नाम बताओ और अपनी अमानत संभालो।' वेश्या ने तत्काल चार-पाँच नाम बताये, पर आश्चर्य कि मित्र का पहिला नाम तो झूट ही गया। तब वेश्या ने बीस नाम और बताये। मित्र का मुँह उतर गया। क्या पता वह जान-बूझकर उसका नाम नहीं बताना चाहती हो। लेकिन उसका धैर्य तो तब टूटा, जब सत्तर नाम गिनाने पर भी मित्र का नाम उसके होंठों पर नहीं आया। मित्र के मुँह पर हवाएँ उड़ने लगीं। तब वेश्या ने उस पर तरस खाते हुए कहा, 'अब तो पाँच सातेक नाम और हैं। कहें तो बता दूँ। अब न हो तो मेहरबानी करके आप ही बता दें। माँ ने मुझे झूठ न बोलने की कसम दिलवाई थी। धंधे को मैं बुरा नहीं मानती, लेकिन झूठ बोलना मेरे लिए महा पाप है।'

मित्र ने जब नाम बताने के लिए साफ मना कर दिया तो वेश्या ने बहुत सोच-विचार कर दो नाम और बताये। तब मित्र ने बीच में टोकते हुए कहा, 'बस, बस अब एक भी और नाम सुनने का मुझमें धैर्य नहीं है। मुझे आशा है कि इससे मित्र का धोखा सोलह आने दूर हो जायेगा। उसे तो विश्वास था कि तुम्हारे मुँह से पहिला नाम उसी का निकलेगा। पुरुषों की यही तो सबसे बड़ी कमजोरी है कि वे प्रिया की नजर में सबसे ऊँचा रहना चाहते हैं। तकलीफ माफ करियेगा। अब मैं दुबारा नाम पूछने नहीं आऊँगा। और आशा करता हूँ कि आपके प्रेमी का भी मुगालता दूर हो जायेगा।' वेश्या को तनिक भी निराशा नहीं हुई। मुस्कराते कहा, 'यदि मैं झूठ बोलती तो सबसे पहिले आपके मित्र का ही नाम बताती। पर मेरे मुँह से झूठ निकला ही नहीं। आप मेरी बेवकूफी का तनिक भी बुरा नहीं मांगेंगे।'

'भला बुरा क्यों मानूँगा! मैं तो उलटा खुश हुआ हूँ कि उसकी गलतफहमी दूर हो जायेगी।'

जब वेश्या ने व्यंग्य के लहजे में कहा, 'तुम पुरुषों को पैसे के अलावा और किसी से भी प्यार नहीं हो सकता। माँ की यह

सीख कभी भूलूँगी नहीं। जब भी इच्छा हो निःसंकोच आइयेगा। मेरा दरवाजा सभी के लिए खुला है। हम सती-साध्वियों की तरह ढोंग नहीं करतीं। तब मित्र ने खुश होकर दिसावर चिट्ठी भेजी। सिर्फ एक पंक्ति की। उसमें अधिक कुछ भी लिखना बेकार समय बर्बाद करना था- 'लिख-लिख भेजूं पत्र में, थूँ सित्तर में नीं बहत्तर में।'

- पुरुषों को सबसे बड़ा मुगालता यही रहता है कि उसकी प्रिया उसके अलावा किसी दूसरे को प्यार कर ही नहीं सकती।

- औरत अपने अंतःकरण से किसको सच्चा प्यार करती है, उसका भेद शायद वह स्वयं भी नहीं जानती।

लीली लगांम नीं मानै के दै दारीजी रै कानां में।

लीली लगाम नहीं मानती कि दे राँड के कानों पर।

संदर्भ-कथा:

किसी गरीब राजपूत के पुत्र की सगाई के लिए संपन्न मेहमान आये हुए थे। वर-पक्ष के परिवार वाले अपनी आर्थिक स्थिति को बढ़ा-चढ़ाकर बताने की चेष्टा कर रहे थे। जो एक तरह से स्वाभाविक ही था। कन्या पक्ष वाले भी समझने की चेष्टा कर रहे थे। तभी रसोई करते समय एक दुर्योग घटित हो गया। हँडिया में खीच के लिए पानी उबल रहा था ओखली में तैयार की गई अध-भीगी-बाजरी को हँडिया में ऊर (डाल) दिया। हिलाने के लिए काठ की डोई हँडिया के मुँह में डालने की चेष्टा की तो वह उसमें समाई नहीं। कुछ बड़ी थी। अब क्या किया जाये। औरतों को कुछ निदान नहीं सूझा तो उन्होंने एक किशोर को समझा कर भेजा कि लीली घोड़ी लगाम नहीं मान रही है। उसने बैठक में जाकर वही बात दोहरा दी। घरवाले इशारे को ताड़ गये। वापस वैसा ही गोलमोल जवाब दिया कि लगाम न माने तो राँड के कानों पर डंडा मारो। किशोर ने रसोई में आकर कहा तो माँ भी इशारे में समझ गई। काठ की डोई से हँडिया के किनारे ठोककर चौड़े कर दिये तो तत्काल समाधान निकल आया। वह सलीके से डोई हँडिया में हिलाने लगी! उन दिनों घोड़ी या घोड़ा खुशहाली का सूचक था। कन्या पक्ष वालों ने बच्ची की सगाई का दस्तूर कर दिया।

- जो व्यक्ति बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति को बढ़ा-चढ़ाकर बताने का दिखावा करे।

लीली=घोड़ी के लिए संबोधन।

लूकी चढ़गी बाँस, उतरै चौथे मास।
लोमड़ी चढ़ गई बाँस, उतरेगी चौथे मास।

संदर्भ-कथा:

एक लोमड़ी किसी तालाब पर पानी पीने गई तो वहाँ एक सियार पद्मासन लगाये बैठा था। धूर्त का क्या भरोसा! कब अचीता झपट पड़े! उसने विनम्रता से अगले पाँव जोड़ते कहा, 'सियार मामा, प्यार के मारे गला सूख रहा है, पानी पीने की इजाजत दे तो आपके नाम की माला जपूँगी।' उस सियार को अपनी प्रशंसा सुनना बहुत सुहाता था। उसने कहा, 'तू मेरी प्रशंसा करे तभी पानी पीने दूँगा' लोमड़ी को सचमुच प्यास लगी थी। क्या करती? उसने सियार का हुलिया देखकर उसी वक्त बात बनाई, 'वाह! क्या रूप है आपका भी। चाँदी का चूबतरा, जिस पर सोने का पतरा चढ़ा है। कानों में सोने के कुंडल चमक रहे हैं। ऐसा लगता है कि जंगल का राजा अपने सिंहासन पर बैठा है।' सियार ने खुश होकर पानी पीने की इजाजत दे दी तो लोमड़ी ने डटकर अपनी प्यास बुझाई। सियार का बहुत-बहुत एहसान मानकर चलने लगी तो सियार ने कहा, 'यों ही चली जायेगी? पानी नहीं पीने देता तो तेरी प्यास कैसे बुझाती? अब सच्ची-सच्ची बात और बतादे। पहिले तूने कुछ ज्यादा ही तारीफ कर दी।' तब लोमड़ी ने कहा 'जैसी आपकी इच्छा। तो सुनो, गोबर मिट्टी का चबूतरा, कानों में उपलों के कुंडल, जैसे कोई रँगर जूते गाँठ रहा तो।' सुनते ही सियार आग बबूला होकर लोमड़ी पर झपटा। लोमड़ी ने आव-देखा न ताव, पास ही बाँस का झुरमुट था, उस पर चढ़ गई। सियार दाँत पीसता हुआ नीचे बैठ गया। लोमड़ी ने उसे धत्ता पिलाते कहा, मैं तो बाँस पर आराम से बैठी हूँ। चार महीनों के बाद उतरूँगी। तुम मजे से माला जपते रहो।'

सियार भी कम चालाक नहीं था। उसने भी बात बनायी, 'गीदड़ ने मारी पालथी, मेह गरजने पर हिलेगा। देखता हूँ, कब तक बाँस पर बैठी रहेगी।' लोमड़ी दुविधा में फँस गई। बाँस पर बैठे रहना सचमुच मुश्किल था। उसने दिमाग लड़ाया। थोड़ी देर बाद चौककर कहा, 'मामा, मामा उधर देखना। चार काली कंबल वाले सँपे आ रहे हैं। उनके पीछे नाहर जैसे चार कुत्ते हैं। मेरी रक्षा करना। ऐसा न हो कि भाग जाओ।' सँपे और कुत्तों का नाम सुनते ही पहिले तो सियार घबराया। तत्पश्चात् अगले ही क्षण पूँछ उठाकर भागा। लोमड़ी ठाका मारकर हँसी। हँसते-हँसते ही बोली, 'मामा यूँ क्या, मैं तो मजाक कर रही हूँ, मजाक। जरा रुको तो!' सियार और जोर से भागा। पीछे मुड़कर देखने की भी हिम्मत नहीं

हुई।

- जब दो चालाक आदमी एक दूसरे को चकमा देकर ठगना चाहें, तब...।

लूकी लोई म्हारी पूँछ खाँचे कोई।
लोमड़ी लोई मेरी पूँछ खींचे कोई।

संदर्भ-कथा:

एक सियार और लोमड़ी में मित्रता थी। एक दिन सियार ने मौज में आकर लोमड़ी से कहा, 'चलो, गाँव की सैर कर आयें। साँझ की बेला कहीं गरमा-गरम ब्यालू कर आयें।' लोमड़ी ने अपने मन की आशंका दर्शाई, 'यदि कुत्ते पीछे पड़ गये तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी।' सियार ने लापरवाही से कहा, 'मुझे सब पता है। कल ही शेर महाराजा ने मुझे इस गाँव का पट्टा दिया है। हमें कोई रोकने वाला नहीं?' लोमड़ी ने खुश होकर कहा, 'तब आपके रहते मुझे क्या डर, चलिये।' दोनों गाँव की ओर मुँह करके चलने लगे। लोमड़ी आगे और सियार पीछे। बस्ती के पास जाते ही कुत्तों को सियार की बास आयी तो भोकते हुए उधर ही भागे। लोमड़ी के पास तो पट्टा था नहीं। पूँछ दबाकर जंगल की ओर भागी सामने ही एक बिल नजर आया तो उसमें घुस गई। सियार ने भी घुसने की चेष्टा की। पर घुस नहीं सका। बिल छोटा था। तब तक कुत्ते लपककर सियार के पास पहुँचे। एक कुत्ते ने उसकी पूँछ पकड़ ली। सियार ने चिंचियाते कहा, 'लोमड़ी लोई, मेरी पूँछ खींचे कोई।' लोमड़ी ने बिल के भीतर से ही जवाब दिया, 'अब तो जो होना है होगा वो ही।' वापस लोमड़ी को कुछ भी जवाब सुनाई नहीं दिया।

- जो व्यक्ति दूसरों को चकमा देकर फँसाना चाहता है, अंततः वह स्वयं ही उसमें फँसकर अपने प्राण गँवाता है।

लूकी वाळौ घर मंडणा।
लोमड़ी वाला गृह-निर्माण।

संदर्भ-कथा:

एक लोमड़ी मौत नहीं आने की वजह से बस, जी भर रही थी। अब्बल दर्जे की आलसी थी। सर्दियों के दिनों में साँझ होते ही संकल्प करती कि कल तो दिन में जरूर एक लंबा बिल खोदकर उसमें ठाट से निवास कर लेगी। वह जस-तस एक झाड़ी में दुबककर रात बिता लेती। सूर्योदय होने पर रात जैसी ठंडक नहीं लगती, तो वह दिन भर इधर-उधर घूमती। धूप में सो जाती। और

साँझ को वहीं दृढ़ संकल्प कि जरूर लंबा बिल खोदकर ठाट से निवास करेगी। पर वह कभी अपने संकल्प को क्रियान्वित नहीं कर सकी। एक रात भयंकर पाला पड़ा तो वह झाड़ी से बाहर ही नहीं निकल पायी। मरने के बाद ही सर्दी-गर्मी से मुक्त हुई।

- जो निकम्मी सरकार और निकम्मे अधिकारी जनता से नित्य नये वायदों का एलान करते हैं, उन्हें पूरा करने की सपने में भी चिंता नहीं करते।

लेता जा के कमावू थारै जैडौ है।
लेता जा कि कमाऊ तो तुम जैसा है।

संदर्भ-कथा:

एक ढोली के घर में चोर घुसा। अत्यधिक गरीबी के कारण झोंपड़े में ठौर-ठौर लंबी लकड़ियों का सहारा लगा था। अँधेरे में धन माल टटोलते हुए चोर का सिर तीन-चार बार लकड़ियों से टकरा गया। चोट की पीड़ा के कारण चोर के मुँह से आह निकल गई। ढोली की नींद उचट गई। फिर भी वह चुप रहा। खूब अच्छी तरह जानता था कि यहाँ कुछ भी माल हाथ लगने वाला नहीं है। एक जोर की टक्कर और लगी तो चोर का सिर भन्ना गया। हताश होकर बाहर जाने लगा तो ढोली ने परिहास करते कहा, 'लेता जा!' चोर ने भी उधार नहीं रखा। हाथों हाथ जवाब दिया, 'कमाने वाले तो तुम्हीं हो!' ढोली कमाकर रखता तो चोर को भी कुछ हाथ लगता।

- गरीब के घर से चोर भी निराश होकर लौटता है।

- जब दोनों ओर विवशता की समस्या खड़ी हो तब कुछ भी निराकरण नहीं हो सकता।

लै रे लाला लांणी, लै रे भूत पिरांणी।
ले रे लाला लाणी, ले रे भूत पिराणी।

संदर्भ-कथा:

काफी पुरानी बात है, लालाराम नाम का एक चौधरी बैलगाड़ी जोतकर बोहरे की ऊन लेने जा रहा था। दो-ढाई कोस चलने के बाद

रास्ते की दायीं तरफ उसे एक मेमना नजर आया। मेमना बड़ा सुंदर था। चिकनी सफेद-सफेद ऊन। बेचारे को कोई हिंसक जानवर मार डालेगा। चौधरी के मन में दया उमड़ी और उसे उठाकर गाड़ी पर ले आया। मेमना अनुमान से कहीं अधिक भारी लगा। चौधरी को तनिक वहम हुआ। कुछ दूर चलते ही छोटा मेमना एक मेढ़ा बन गया। चौधरी ने उसकी ओर घूरकर देखा। भूल तो हो ही गई। मेमने का रूप धरे भूत को उठा लाया। डर से भूत का हौंसला काफी बढ़ जायेगा। उधर भूत ने भी अपना करिश्मा दिखाना चाहा। व्यंग्य में मुस्कराते बोला-ले रे लाला लांणी। भूत का इतना कहना हुआ कि चौधरी ने पूरे जोर से छड़ी घुमाकर उसके सिर पर दे मारी और मुस्कराते कहा- ले रे भूत पिरांणी। भूत की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। इतने में लाला ने लात मारकर पूरी ताकत से धक्का दिया तो भूत गाड़ी से नीचे लुढ़क पड़ा। गाड़ी का पहिया माथे पर से गुजरा तो मेढ़े के मुँह से आखिरी मे-मे निकली। चौधरी ने नीचे उतरकर देखा तो मरा हुआ मेढ़ा पूरा सोने का बन गया। चौधरी ने बड़ी मुश्किल से उठाकर गाड़ी में पटक और चुपचाप अपने घर चला आया।

- मार के आगे तो भूत भी डरते हैं।

- कमजोर को भूत दबाते हैं और साहसी भूत को दबाते हैं।

वींदराजा सूं मोटौ तौ राम है।
दूल्हे से बड़ा तो राम है।

संदर्भ-कथा:

एक बूढ़े दूल्हे की बारात में सभी उससे उम्र में छोटे थे। कुँअर कलेवे की रम्म-अदायगी के बेला ससुराल पक्ष वालों ने कहा कि दूल्हे से बड़े बाराती मेहरबानी करके बाहर ही रहें, जो छोटे हों वे भीतर पधारें। तब एक बाराती ने परिहास करते कहा, 'दूल्हे से बड़ा तो राम है। उसे बुला सकते हैं तो बुलालो।' तब ससुराल वाले क्या जवाब देते! सभी बाराती दूल्हे के साथ भीतर घुस पड़े। दूल्हे ने शर्म के मारे सिर नीचे कर लिया।

- अनमेल विवाह पर कटाक्ष।

लाला=एक चौधरी का नाम।

लांणी=ऊन की गड्ढी। पिरांणी=बैलों को हाँकने की छड़ी।

लीला-नाटक और लोकनाट्य-परम्परा

रामनारायण अग्रवाल

भारतीय नाट्य परम्परा में प्राचीनतम् जिन नाटकों का उल्लेख उपलब्ध है वे 'कंस वध' और 'बलिबंध' थे। यह नाटक शास्त्रीय परम्परा के अनुसार रचे गये थे, या यह लोक शैली के नाटक थे, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनके आलेख प्राप्त नहीं होते, केवल उल्लेख ही उपलब्ध है, परंतु जैसा कि इन नाटकों के नाम से ही स्पष्ट है यह दोनों ही लीला-नाटक थे। 'कंस वध' नाटक में श्री कृष्ण द्वारा कंस के वध को कथाक्रम से जोड़ा गया था तो 'बलि बंध' में भगवान विष्णु के वामन अवतार की कथा थी। इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय नाट्य परम्परा का प्रारम्भ ही लीला-नाटकों से हुआ था। बाद में भरत के नाट्य शास्त्र में जिस 'अमृत-मंथन' नाटक के अभिनय का उल्लेख है वह भी लीला नाटक से ही जुड़ा था।

बाद में संस्कृत युग में नाटकों का विकास होने पर उसमें विविधता का समावेश हुआ। साथ ही लोक नाटकों की धारा अलग से जनरंजन का माध्यम बनीं परन्तु लोकनाट्य का सदा ही लीला नाटकों से गहरा लगाव रहा है। हम यहाँ लोक-नाटक की इसी परम्परा की चर्चा करना चाहते हैं। परंतु इससे पहले यह उचित होगा कि लीला क्या है? इस पर थोड़ा विचार करेंगे।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कथन है कि 'भगवान भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अपनी लीला का विस्तार करने के उद्देश्य से प्रकट होते हैं। यही उनके प्रकट होने का उत्तम हेतु है....वस्तुतः भगवान में 'रिंसा वृत्ति' के साथ ही साथ सिस्टबा वृत्ति भी होती है, पर यह दोनों वृत्तियाँ सामयिक होती हैं। रिंसा वृत्ति ही नित्य होती है। रिंसा अर्थात् रमण करने की इच्छा। रिंसा वृत्ति उस शक्ति का परिणाम है जिसे 'पराशक्ति' कहते हैं। यह जो भगवान की नित्य रिंसा वृत्ति है वही सच्चिदानन्दमयी लीला में सदा अभिव्यक्त होती रहती है।

इस प्रकार लीला सगुण ब्रह्म की रमणेच्छा का परिणाम है। जिसका उद्देश्य केवल आत्मानंद या भक्तों को आनंदित करना मात्र होता है। इस लीला के लिए वह स्वयं अपने आपको दो या अनेक रूपों में प्रकट करता है। इसी दृष्टि से भक्तगण राधा और कृष्ण में कोई भेद नहीं मानते। वे एक ही परब्रह्म के दो रूप हैं। यह लीला भी कालक्रमानुसार भक्ताचार्यों ने दो वर्गों में विभाजित की है।

इनमें पहली लीला वह है जो परब्रह्म अपने दिव्य गौलोक धाम में नित्य प्रति करते रहते हैं। यह अप्रकट लीला है, जिन्हें कोई देख नहीं पाता।¹ इन लीलाओं में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथानुसार विरहभाव का अभाव रहता है। अतएव यह देव-लीला है। भगवान के सभी सहचर इसमें नित्य विराजमान रहते हैं।³ एकरसता के कारण इसका महत्व नरलीला जैसा नहीं।

दूसरी लीला भगवान की नरलीला है जो उस समय होती है। जब वे धर्म संस्थापन के साथ-साथ भक्तों को आनंदित करने के लिए भूतल पर अवतीर्ण होते हैं। यह नरलीला ही वह प्रकट लीला है जिसमें परिस्थिति के अनुसार भगवान विभिन्न रूपों और स्थितियों के अनुसार लीला करते हैं। संयोग-वियोग तथा विभिन्न रसों की जो सृष्टि इन लीलाओं में होती है। वह देव लोक (साकेत, वैकुण्ठ या गौलोक) की लीलाओं में सम्भव नहीं है, अतः सगुण ब्रह्म की ये नरलीला ही भक्तों और भावुकों का कंठहार है और इन्हीं लीलाओं का वर्णन और मंचन हमारे नाटकों व लोकनाटककारों ने किया है। संस्कृत के प्रथम नाटककार भाट्टय ने भी यद्यपि 'बाल गोपाल स्तुति' नाटक की रचना करके लीला-साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान दिया, परंतु मुख्य रूप से हमारे देश के लोकनाटक ही भगवत लीला के लेखन व मंचन में प्रमुख भूमिका निभाते रहे हैं। इसका कारण यही है कि भगवान का अवतार ही लोकंजन के लिए होता है। श्रीराम राजपुत्र होकर भी शबरी, निषाद तथा भालू बानरों के बीच निस्संकोच विचरे सभी को अपने हृदय से लगाया और उन्हीं के सहयोग से वे रावण जैसे उस युग के महापराक्रमी और वैभव सम्पन्न नरेश को पराजित कर सके।

इधर भगवान कृष्ण तो लीला पुरुषोत्तम ही हैं। उनकी ब्रजलीलाओं में जो रस, माधुर्य, सहजता, चपलता और लोक जीवन से जो गहरा लगाव व्यक्त होता है। वह संसार के किसी भी देश के किसी भी साहित्य में मिलना दुर्लभ है। यही कारण है कि भक्ताचार्यों ने उनकी लीलाओं के क्रमानुसार उनके व्यक्तित्व को भी तीन हिस्सों में बाँट दिया है। ब्रज में वे पूर्णतम मथुरा आकर पूर्णतर तथा द्वारका पधारने के बाद केवल पूर्ण ही रह गये हैं। कारण स्पष्ट है कि ब्रज में प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में वे सरलतम लीलाओं के मधुर सृष्टा थे। मथुरा आने पर ऐश्वर्य में फँसकर भी उनकी वृत्ति में ब्रज का वातावरण यथावत बना रहा। उद्धव गोपी सम्वाद या दीनदुखी कुब्जा पर कृपा उनकी ब्रजभावना को उजागर करते हैं, परन्तु द्वारका पहुँचकर वे राजवंशों के चक्कर में जनता से कुछ दूर हट जाते हैं। द्वारका की राजनीति तथा कौरव पाण्डवों के झगड़े की

उलझने उनके लीला के रूप की दिशा बदल देती हैं। यही कारण है कि लीला-रचयिताओं ने उनकी ब्रज लीला जितने रस व मनोयोग से गायी है वह रस और विस्तार उनकी द्वारका लीलाओं को नहीं मिला। कहने का तात्पर्य यही है कि परमात्मा भी नर तन धारण करके जहाँ लोक से दूर हटा, वहीं उसकी लीलाओं का महत्व भी घट गया। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर ही हमें लीला की लोक-नाटक परम्परा को समझना होगा।

लीला-नाटकों की परम्परा

उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक इस समय जो लोक-नाट्य शैली प्रचलित है। उन सबका उदयकाल पन्द्रहवीं-सोहलवीं शताब्दी मानी जाती है। परंतु इन सबकी प्रेरणा का स्रोत हमारे विचार से महाकवि जयदेव का गीत गोविन्द ही है। जिसकी रचना बारहवीं शताब्दी में हुई। इस लीला-काव्य की लोकप्रियता उस युग में इतनी अधिक थी कि यह ग्रंथ स्वयं श्रीकृष्ण की रासलीला प्रदर्शन का मुख्य माध्यम बन गया। देश के विभिन्न भागों में उस युग में गीत गोविन्द के नाट्य प्रदर्शन होते थे। पुरी के जगन्नाथ मंदिर में तो जिसकी स्थापना इसी युग में हुई थी, गीत-गोविन्द का प्रदर्शन भगवान की पूजा का एक अनिवार्य अंग ही बन गया। पुरी के मंदिर में आज भी गीत-गोविन्द के प्रदर्शन की यह परम्परा है और वहाँ आज भी वेतनभोगी प्रदर्शनकारी मंदिर में गीत-गोविन्द का प्रदर्शन करते हैं। गीत-गोविन्द के यह प्रदर्शन उस समय पूरे देश में होते थे।

इस सम्बंध में श्री जगदीश चन्द्र माथुर का कथन है कि जयदेव ने न सिर्फ दृश्य प्रबंध का विकास किया, वरन् एक नूतन सम्वाद-पद्धति को भी प्रचलित किया। जिसमें संलाप और सूत्रधार प्रधान होते हैं। इस पद्धति में सूत्रधार को बराबर उपस्थित रहना पड़ता है। पहले सूत्रधार द्वारा मंगलाचरण तथा सूचना उसके बाद अन्य पात्रों द्वारा ध्रुवपद सहित संलाप। इसमें सुविधा यह थी कि जब सूत्रधार स्तुति और सूचना बोधक श्लोकों को बोलता था। तब आगे आने वाला पात्र संलाप के लिए तैयार हो सकता था। इस अवकाश की जरूरत इसलिए भी थी कि हर कथन, गीत तथा संलाप को गायन एवं नृत्य के साथ प्रस्तुत किया जाता था। इस सुविधा के कारण केरल से असम तक सौराष्ट्र से उत्कल तक गीत गोविन्द मंदिरों और राजप्रसादों में खेला जाने लगा।⁴ इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वर्तमान लोक नाट्यों के उदय की पृष्ठभूमि भी जयदेव के गीत-गोविन्द पर आधारित थी। और इसी नृत्य गायन, संलाप

प्रधान शैली में आगे चलकर सभी लोकनाटकों की रचना हुई। यही कारण है कि विभिन्न लोकनाटकों की प्रदर्शन शैली में बहुत सी समानता आज भी विद्यमान हैं। अतः वर्तमान लोक नाटकों का उदय भी लीला नाटक शैली से ही हुआ है। हमारा यह कथन इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि भाषा नाटकों में जो सबसे प्राचीन लोक-नाटक उपलब्ध है वह भी उमापतिराय रचित 'पारिणात हरण' लीला नाटक ही है। जो चौदहवीं शताब्दी में रचा गया था।

कुटियाट्टम

वर्तमान भाषा नाटकों में कुटियाट्टम सबसे प्राचीन है जिसको विकसित करने में केरल नरेश राजा कुलशेखर वर्मा की प्रधान भूमिका थी। कुटियाट्टम शब्द का अर्थ ही मिलाजुला रूप है। कुलशेखर वर्मा ने नाट्य की कई शैलियों को मिलाकर यह कुटियाट्टम शैली चलाई थी। भरत ने नाट्य शास्त्र में जिस पूर्व रंग का उल्लेख किया था, उसमें कुलशेखर वर्मा ने लोक नाट्य के चाक्यार और विदूषक का मिश्रण किया तथा स्थानीय भाषा को महत्व देकर उसको नवीन रूप दिया। इस शैली में रचा गया उनका नाटक 'सुभद्रा धर्मपद' बहुत प्रसिद्ध व लोकप्रिय है। यह नाटक भी लीला नाटक से ही है क्योंकि सुभद्राधनंजय की कथा के मुख्य प्रेरक तो लीला नाटक श्री कृष्ण ही हैं। इस प्रकार लोक नाटकों की नवीन शैली का प्रारम्भ दक्षिण से ही हुआ। जिसका विकास विभिन्न क्षेत्रों में अपने-अपने ढंग से हुआ।

लीला-नाटकों का विकास

जिस समय देश में लोक नाटकों का विकास हो रहा था। उसी समय भारत में मुसलमानी शासन भी दृढ़ हो रहा था। और उसकी कट्टरता से हिन्दू समाज अपने को दमित, अपमानित मानकर क्षुब्धित था और एक निराशा का वातावरण पनप रहा था, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप देश में भक्ति-आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इस काल में दक्षिण के अनेक संत उत्तर में आकार बसे और उनकी प्रेरणा से जो भक्ति आन्दोलन का देशव्यापी रूप खड़ा हुआ उसने विभिन्न अंचलों में लीला नाटकों की स्थापना में विशेष योगदान दिया। भगवान राम, कृष्ण, नृसिंह आदि के अनेक कथानकों के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में लीला नाटकों के विभिन्न मंच स्थापित हुए। ऐसे मंचों में शायद असम का 'अंकिया नाट' सबसे प्राचीन है। जिसके संस्थापक संत शंकरदेव थे।

अंकिया नाट

संत शंकरदेव प्रथमबार सन् 1490 के आस-पास तीर्थ यात्रा करते हुए उन्नीस साथियों के साथ ब्रज यात्रा पर आये थे। इसके बाद सन् 1550 ई. में वे दूसरी बार अपने 120 भक्तों के साथ वहाँ पधारे। यहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण लीला स्थलों के साथ-साथ शायद यहाँ की कृष्ण लीला के उस स्वरूप का भी अन्वेषण किया जो इस युग में विछिन्न हो चुका था। इन्होंने असम में 'एकसरनियाँ' पंथ की स्थापना की जिसकी उपासना के एक अंग के रूप में उन्होंने 'अंकियानाट' को जन्म दिया जो इस सम्प्रदाय में एक अनुष्ठान जैसा महत्व रखता है। उन्होंने इस लीला नाटक की भाषा भी असमी न रखकर असमी, बंगाली, मैथिली, भोजपुरी आदि के शब्दों को ग्रहण करके उसे ब्रज भाषा के परिवेश में ढालकर 'कालिययमन यात्रा' नाटक की रचना की और उसे अभिनीत किया, जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ। यह नाटक उन्होंने प्रथम बार ब्रज से लौटने के बाईस वर्ष बाद सन् 1518 में लिखा था। इस नाटक की लोकप्रियता से प्रभावित होकर बाद में उन्होंने पत्नी प्रसाद, केलि गोपाल, रूक्मिणी हरण, परिजात हरण व रामविपय नाटक भी रचे और मंचित किया। बाद में उसके शिष्य माधव देव ने अर्जुन भंजन लीला व गोपाल आता, रामचरण ठाकुर ने 'हिजभूषण' अंकियानाट रचा। नाट्य रचना की परम्परा आज भी यथावत् है और असम में बड़ी लोकप्रिय है। माधवदेव ने कुछ लघु लीला नाटक चोरधरा, भूमिल दिबा, भोजन विहार आदि भी लिखे जो 'झूमरा' कहे जाते हैं। संस्कृत श्लोकों में इन नाटकों में विस्तार करके माधवदेव ने अनुपम माधुर्य की सृष्टि की है। इसी परम्परा की एक रचना 'सीताहरण' का प्रदर्शन विगत वर्षों में हमने आदिवासी लोक कला परिषद् द्वारा आयोजित राष्ट्रीय रामलीला मेले में देखा था जो बहुत ही प्रभावी व मनमोहक था।

रासलीला

अंकिया नाट के उपरान्त भक्ति-आन्दोलन के आचार्यों ने सोहलवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ प्राचीनकाल में प्रचलित श्रीकृष्णलीला की परम्परा को 'रासलीला' के रूप में पुनर्जीवित किया। महाप्रभु वल्लभाचार्य स्वामी हरिदास जी, महाप्रभु हरिवंश नारायण भट्ट गोस्वामी हरिराम व्यास जैसे भक्ताचार्यों के साथ-साथ जयपुर घराने के वल्लभ (या ब्रज वल्लभ) का भी इस मंच की स्थापना में पूर्ण सहयोग था। करहला गाँव के स्वामी घमंड देवजी ने ब्रज के ब्राह्मण बालकों को प्रशिक्षित करके पहली रास मंडली का गठन किया और

परम्परा इतनी लोकप्रिय हुई कि ब्रज में रासधारियों की अनेक मंडली स्थापित हो गई। नारायण भट्ट जी गोस्वामी ने रास नृत्य के साथ इस मंच पर विभिन्न कृष्णलीलाओं के प्रदर्शन की परिपाटी डाली, जिसने इस मंच को बहुत लोकप्रिय बनाया और पूरे उत्तर भारत में और मध्यभारत में राजदरबारों से लेकर ग्रामीण क्षेत्रों में भी रासलीला की धूम मच गई। यह मंच ब्रजभाषा को अपना आधार बनाकर चला था। जो उस युग में पूरे देश की सांस्कृतिक भाषा थी। इस कारण ब्रजभाषा के मधुर मनमोहक सम्वाद व सूरदास और अष्टछाप के अमर कवियों और भक्तों की रसभरी काव्य-लहरी पर रची गयी रासलीलाओं में जन-जन को भाव विभोर करने की क्षमता थी। नारायण भट्ट जी ने बरसाने के आस-पास अकबर बादशाह के अर्थ मंत्री राजा टोडरमल के द्वारा स्थान-स्थान पर रास मंडल बनवाकर इन लीलाओं के प्रचार में व्यापक योगदान दिया।⁵

रासलीलाओं की प्रमुख विशेषता उसका समृद्ध लीला-साहित्य है। वृन्दावन में रासलीला का केन्द्र स्थापित करके भक्ताचार्यों ने अपनी रस भक्ति या माधुर्य-भक्ति के प्रचार को रासमंच का प्रमुख केन्द्र बनाया और कृष्णावतार की पुराणों में वर्णित लीलाओं के अलावा भी सैकड़ों नवीन लीलाओं की रचना करके इस मंच पर अपनी भावना के अनुसार भगवान को नचाया। श्री राधाकृष्ण के पान, मान, वन-विहार, चोरी, पनघट, मुरली आदि के विभिन्न प्रसंगों पर ऐसी अनेक लीला रचीं जिनका पुराणों से कोई सम्बंध नहीं। चाचा हित-वृन्दावन दास ने बयालीस छद्म लीला रचीं जिनमें रसिक कृष्ण कभी योगी, कभी ब्रह्मचारी, कभी लिलिहारी, कभी विसायतान आदि बनकर राधा रानी के दर्शनों को जाते हैं। नारायण स्वामी ने भी बाद में 'ब्रज बिहार' ग्रंथ में अनेक नवीन लीला रचीं और उन्हें मंचित कराया। इस शताब्दी में हरिबाबा की प्रेरणा से संत प्रेमानंद जी ने महाप्रभु गौरांग की जीवनी को लेकर अनेक लीला रचीं जो स्वामी हरिगोविन्द जी द्वारा सर्वप्रथम मंचित की गई। अब तो कई मंडली इन्हें करती हैं। भक्तमात्र की लीला भी अब रास मंच पर होने लगी है। पहले रास की मर्यादा के अनुसार इस मंच पर केवल श्रीकृष्ण की ब्रजलीला तथा मथुरा की लीलाओं में से केवल 'कंसवध' और 'उद्धव' लीला ही होती थी, परन्तु अब वह मर्यादा टूट गई है।

सुदामा लीला के साथ-साथ इन पंक्तियों के लेखक द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र' में श्यामा-श्यामा मिलन लीला अब रास में बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय है। अन्य अनेक लीलाओं के साथ-साथ अब तो रास मंडली ब्रजभाषा को छोड़कर राधेश्याम के खड़ी बोली के नाटक भी करने लगे हैं। रास का प्राचीन स्वरूप बदल रहा है।

इसका क्या परिणाम होगा यह भविष्य के गर्भ में है।

रामलीला

रामलीला की परंपरा हमारे देश में बड़ी प्राचीन है। प्रागैतिहासिक काल में ही यहाँ से रामलीला परम्परा एशिया के अनेक देशों में पहुँची थी, वर्मा, थाईदेश, इण्डोनेशिया आदि अनेक देशों की अपनी-अपनी रामायण होना तथा वहाँ रामलीलाओं का निरंतर होना इस तथ्य के अकाट्य प्रमाण हैं। काशी में भी गोस्वामी जी से पहले मेघा भगत की रामलीला होती थी, जो अब 'चित्रकूट' की रामलीला के नाम से प्रसिद्ध है, परंतु रामचरितमानस के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा वाराणसी के असीघाट पर रामलीला प्रदर्शन की जो परम्परा स्थापित की गई उसका प्रारम्भ सोहलवीं शताब्दी में ही हुआ।

ब्रज की रासलीला से प्रभावित होकर जन जागरण की भावना और हिन्दुओं के सभी वर्गों को रामकथा से जोड़ने का स्वामी जी का यह अनुपम प्रयास था। उन्होंने असी घाट की इस रामलीला को व्यापक विस्तार दिया था। और असीघाट से लेकर वर्तमान हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वार तक खुले प्रांगण में यह लीला होती थी। उन्होंने प्रत्येक जाति को रामलीला से जोड़ा। स्वरूप किस जाति के बनेंगे, राक्षस किस समुदाय के होंगे। कौन लीला कहाँ होगी यह सब तय करके उन्होंने यह भी तय कर दिया कि श्रीराम का सिंहासन कौन सी जाति के लोग उठायेंगे। गोस्वामी जी द्वारा निश्चित उसी परम्परा के अनुसार आज भी यह लीला बिना किसी परिवर्तन को स्वीकार किये उस रूप में होती है। यह लीला अयोध्या कांड के राम राज्याभिषेक की तैयारी से प्रारम्भ होती है और रावण वध के उपरान्त राम राज्याभिषेक के साथ समाप्त हो जाती है। इसी प्राचीन लीला से प्रेरणा लेकर बाद में रामलीला की यह परम्परा पूरे देश में फैल गई और रामलीला के प्रदर्शन की अनेक शैली व रूपों का विकास हुआ।

राम नगर की रामलीला

इस असी की रामलीला से प्रभावित होकर काशी नरेश ने बाद में रामलीला को बहुत व्यापक आधार देकर उसे गंगापार रामनगर में प्रारम्भ की जो लगभग एक मास चलती है और इसका लीला क्षेत्र व लीला स्थल कई मीलों तक है जिसमें दर्शक भी लीला के साथ-साथ चलते और लीला का आनंद लेते हैं। रामनगर की यह रामलीला अपनी भावुकता, प्रदर्शन पद्धति की विशेषताओं

और गौरव गरिमा में अद्वितीय है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का इस लीला की स्थापना में विशेष योगदान था। इस लीला के सम्वाद भी उन्हीं के लिखे बताये जाते हैं। जो आज भी पात्रों द्वारा ज्यों के त्यों बोले जाते हैं। इस लीला की प्रदर्शन पद्धति में भी कभी कोई बदलाव नहीं किया गया। रामनगर की रामलीला में पूरा बालकांड सम्मिलित है। यह लीला असीघाट की लीला की भाँति अयोध्या कांड से प्रारम्भ नहीं होती। लीला का कलेवर बहुत विस्तृत है।

रामलीला का व्यापक प्रचार

वाराणसी में गोस्वामी जी ने जो रामलीला प्रारम्भ की, उसकी परम्परा पूरे उत्तर भारत में फैल गई और नगर-नगर में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार रामलीला होने लगी है। रामचरित मानस के आधार के कारण किसी भी सुरीले कंठ के महानुभाव को व्यास पद देकर स्थानीय महानुभावों ने श्रद्धा और भक्ति से बिना किसी आर्थिक प्रलोभन के चौपाई के अर्थों के अनुसार, अपनी रूचि के अनुसार, विभिन्न पात्रों की भूमिका करके नगर-नगर में रामलीला करना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे जनता की रूचि इस प्रदर्शन में बढ़ी तो सभी स्थानों पर रामलीला की समितियाँ बन गई और धूमधाम से रामलीला होने लगी। बाद में अनेक नगरों में व्यावसायिक रामलीला मंडली भी गठित होने लगी और खुले मंच के स्थान पर मंचीय रामलीला भी आरम्भ हो गई। मथुरा में रास के प्रभाव के कारण नृत्य गायन तथा ब्रजभाषा की कवित्त सवैया प्रधान मंचीय लीला का विकास हुआ जो बड़ी लोकप्रिय सिद्ध हुई। इस शैली की मंडली बंबई, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब आदि अनेक राज्यों में रामलीला करने जाती है। इस प्रकार अब रामलीला भी व्यावसायिक मंच बन गया है। क्वार मास में दशहरा के अवसर पर रामलीला के कलामारों की माँग इतनी अधिक है कि सभी कि पूर्ति नहीं हो पा रही है। इसका रामलीला के स्तर पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

नृसिंह लीला

राम और कृष्ण की लीलाओं के साथ-साथ 'नृसिंह' लीला का प्रचलन भी स्थानीय रूप से वैशाख मास में नृसिंह चतुर्दशी पर अनेक स्थानों पर होता है। मथुरा वृन्दावन में जिन मोहल्लों में नृसिंह जी के मंदिर है वहाँ नृसिंह चतुर्दशी की रात्रि भर नृसिंह लीला होती है और दूसरे दिन प्रातःकाल छह से आठ बजे के लगभग कागज के बने रंग बिरंगे खम्भ को फाड़ते हुए नृसिंह प्रगट होते हैं। उनके नृत्य के समापन के उपरान्त हिरण्यकश्यप के वध के साथ लीला

समाप्त होती है। नृसिंह बालक प्रह्लाद को गोद में उठा लेते हैं तब आरती के साथ प्रातः नौ बजे के आस-पास यह लीला समाप्त हो जाती है।

नृसिंह लीला की यह परम्परा कितनी पुरानी है इसका कहीं कोई इतिहास नहीं मिलता। यह पूर्ण रूप से उन्मुक्त जनता का अव्यवसायिक मंच है जिसमें मोहल्ले की गली के दो सिरे ही रंगमंच का काम देते हैं। स्त्री बालक छत और गवाक्षों से तथा पुरुष वर्ग गली के किनारों पर खड़े होकर लीला का आनंद लेते हैं। यह लीला मूक नृत्य नाटिका है जिसमें दक्षिण की कथकली जैसे विशाल चेहरों (मुखौटों) का प्रयोग होता है। नृत्य की गति और मुद्राएँ भी तेज और ताँडव नृत्य के अनुरूप होती हैं। इस लीला में विभिन्न पात्र आते हैं अपनी-अपनी विशेष मुद्राओं में नृत्य करते हैं या युद्ध करते हैं और चले जाते हैं। लीला में बड़े-बड़े झाँझ (जिन्हें भर्मा कहा जाता है) सामूहिक रूप से विभिन्न गतियों में बनाये जाते हैं। लीला में सबसे पहले गणेश नाचते हैं। फिर बारी-बारी से हनुमान अहिरावण जिसे 'अहिकश्या' कहा जाता है नाचते हैं। बाद में हनुमान व अहिरावण का नृत्य युद्ध होता है। अहिरावण के पराजित होने पर दो बालक राम लक्ष्मण के रूप में हनुमान जी के कंधे पर विराजते हैं और हनुमान जी की आरती हो जाती है। इसके उपरान्त भवणासुर व शत्रुघ्न नाचते हैं और युद्ध नृत्य करते हैं। इसी प्रकार हिरण्याक्ष व वाराह का पहले एक तथा बाद में युद्ध नृत्य होता है। प्रातःकाल दिन निकलते ही ताड़का नाचती है, उसके उपरान्त ब्रह्मा व महादेव नाचते हैं। उसके साथ ही प्रह्लाद माला लिए अपने अध्यापक के साथ गली में घूमने लगते हैं तभी हिरण्यकश्यप नाचते हैं और नाचने के बाद प्रह्लाद को खंभे के पास खड़ा करके पूछते हैं 'बोल तेरे राम कहाँ हैं।' और कागज के खंभ पर तलवार से प्रहार करता है। तो खंभ को चीरफाड़ करते नृसिंह निकल पड़ते हैं और रौद्र रस में भयंकर नृत्य करते हैं। उनका स्वरूप भी बड़ा भयंकर होता है। मुख पर जो मुखौटा बाँधा जाता है वह भी विशाल होता है, उसमें दस-बारह किलो से कम वजन नहीं होता। नृसिंह जी के नृत्य और हिरण्यकश्यप के साथ उनके युद्ध नृत्य के उपरान्त नृसिंह जी की आरती के साथ यह लीला समाप्त होती है और प्रसाद के रूप में सभी दर्शकों में हलुआ (मोहन भोग) बाँटा जाता है।

यात्रा-

संत शंकर देव की 'कालिय दमन यात्रा' का हम पहले

उल्लेख कर चुके हैं। असम में लोकप्रिय इन अंकिया नाटकों का प्रभाव बंगाल पहुँचा तो वहाँ भी लोक नाटक इनसे प्रभावित होने लगे। महाप्रभु चैतन्य के उदय के उपरान्त सन् 1500 ई. के आस-पास बंगाल की कलात्मक भूमिका में लोक नाटकों की धार्मिक परम्परा खूब पनपी। संन्यास से पूर्व स्वयं महाप्रभु ने नवद्वीप में एक नाटक खेला था जिसमें श्री अद्वैताचार्य कृष्ण स्वयं महाप्रभु रूक्मिणी बने थे। महाप्रभु संन्यास लेने के उपरान्त जब चैतन्यदेव प्रथमबार ब्रज यात्रा के लिए चले तो उनके भक्तों का एक विशाल समूह भी उनके साथ चला। ये सभी दिन में यात्रा करते थे और रात्रि में विश्राम स्थलों पर मनोरंजन के लिए धार्मिक नाटकों का आयोजन करते थे। यात्रा में विकसित लोक नाटकों की परम्परा ही बंगाल में 'जात्रा' नाटकों के रूप में प्रसिद्ध हुई जिसमें मुख्यरूप से भागवत और महाभारत की कृष्ण कथाओं के नाटक होते थे। बाद में यह परम्परा विकसित होकर अन्य नाटक भी करने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी में इस मंच पर एक नया मोड़ आया और इस पर लीला नाटकों के साथ दूसरे नाटक भी होने लगे। उदाहरण के लिए इसी शताब्दी में 'नल दमयन्ती जात्रा' या 'विद्या सुन्दर' जात्रा जैसे नाटक मिल जाते हैं जो लीला-नाटकों से इतर हैं। बाद में अँग्रेजी प्रभाव के कारण जात्रा मंच पर दुखान्त नाटक भी होने लगे। परंतु जात्रा मंच मूलतः लीला नाटकों का ही मंच है। 'रामायण' और 'महाभारत' के कथानकों पर आधारित जात्रा ही आज भी सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इस दृष्टि से बंगाल के इस जात्रा मंच का विशेष महत्व है। बंगाल में जात्रा के साथ-साथ कीर्तनियाँ नाट्य परम्परा भी लीला नाटकों की ही परम्परा है। इन दोनों परम्परा का मिश्रण भी अनेक जात्रा नाटकों में देखा जा रहा है। बंगाल व असम के साथ-साथ उड़िया में भी जात्रा नाटक बहुत लोकप्रिय हैं। उड़िया में भी अनेक जात्रा दल हैं। जो अपनी भाषा में जात्रा में नाटकों का प्रदर्शन करते हैं। पुरी के निकट के ग्रामों में जात्रा नाटकों के लिए बड़े सुन्दर मुखौटे भी बनाये जाते हैं।

महाराष्ट्र के 'ललित'

जात्रा नाटकों से मिलती-जुलती एक धार्मिक लोक नाटकों की परम्परा 'ललित' नाम से बड़ी लोकप्रिय रही है। जो अब धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। ललित नाटकों का प्रारम्भ महाराष्ट्र में सन् 1890-95 ई. के आस-पास हुआ था। आनंद कुमार स्वामी ललित की व्युत्पत्ति ही लीला शब्द से मानते हैं। इस दृष्टि से यह परम्परा भी लीला नाटक की ही एक कड़ी है। महाराष्ट्र का मंच होते हुए भी इस मंच की भाषा उत्तर भारत की लोक प्रचलित हिन्दी है।

ललित का मुख्य सम्बन्ध भारूढ़ काव्य शैली से है उसमें लोकप्रियता के आधार प्रसिद्ध संत एकनाथ हैं जिन्होंने स्वयं लगभग तीन सौ अभंग रचे थे। इन रचनाओं का दशावतार के लीला नाटकों में तथा भागवत पर आधारित नाटकों में खुलकर उपयोग किया जाता रहा है। इन नाटकों में भाषा प्रसंग या पात्रों के अनुसार बदल जाती है। कहीं हिन्दी, कहीं मराठी, कहीं मिश्रित और कहीं एकदम लोकगीतों का समावेश इस मंच की विशेषता है।

भागवत मेल

तमिलनाडु के लोकनाट्यों में भागवत मेल लीला-नाटकों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। कहा जाता है कि इसकी परम्परा ग्यारहवीं वीं शताब्दी तक जाती है परन्तु वास्तव में इसका उत्कर्ष तीर्थ नारायण योगी के द्वारा हुआ जिसने स्वयं 'कृष्ण लीलातरंगिनि' की रचना की थी। इसने अपनी मान्यता के अनुसार इस मंच को संगीत, नृत्य और अभिनव की त्रिवेणी के रूप में सजाया। बाद में इसके अनुयायियों में संत त्यागराज के समकालीन वेकैटराम शास्त्री ने प्रह्लाद, मारकंडेय, उषा, रूक्मांगद और हरिश्चन्द्र नाटक लिखकर मंचित किये जो बड़े लोकप्रिय हुए। तमिलनाडु का यह रंगमंच कथकलि से बहुत मिलता जुलता है। इसमें नाटकों की भाषा भी तेलुगू है क्योंकि पहले तमिलनाडु में भी तेलुगू का प्रचलन था। वर्तमान में भागवत मेल के प्रदर्शन का तंजौर नगर सर्व प्रधान केन्द्र है। इस मंच के सम्बन्ध में श्री ई. कृष्णा अय्यर का कथन है कि 'तंजौर का यह भागवत मेल नृत्य नाट्य भरत के द्वारा की गई नाट्य की प्राचीन परम्परा का ठीक-ठीक प्रतिबिंब है। भागवत मेल प्राचीन नाट्य परम्परा का प्रान्तीय भाषाओं में पुनरुत्थान है। कला के उच्चतर रूपों में विश्वास और रूचि रखने वाले महत्वाकांक्षी आधुनिक नर्तकों को इस कला में उच्चस्तरीय संगीत अभिनय और 'नट्टवगंम' का खजाना मिल सकता है।

दशावतार

भगवान विष्णु के दस अवतारों की लीला को अपनी कथावस्तु बनाने वाला दशावतार महाराष्ट्र का दूसरा ऐसा नाटक है जिसमें सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग होता है। इस नाटक में नृत्य और संगीत के साथ मुखौटों की प्रधानता है। प्रायः सभी प्रमुख पात्र मुखौटे धारण करते हैं। दशावतार लीला में यह आवश्यक नहीं कि विष्णु के सभी अवतारों की लीला दिखाई जाय।

प्रायः परशुराम, बुद्ध व कल्कि अवतारों का तो उल्लेख

मात्र ही होता है। राम और कृष्ण की लीलाओं को अन्य अवतारों की अपेक्षा प्रमुखता दी जाती है। इन लीलाओं में रोचकता बढ़ाने के लिए विदूषक मंच पर विशेष रूप से रहता है। जो 'महादेवी' कहा जाता है। यह 'महादेवी' संस्कृत नाटक के 'माधव्य' का ही अपभ्रंश है। कुछ विद्वान इन नाटकों को जात्रा का ही एक रूप मानते हैं। उनका कहना है कि प्राचीनकाल में कोंकण प्रदेश के देव स्थानों में यात्राएँ भरा करती थीं, उन्हीं से इन नाटकों का विकास हुआ। बाद में सन् 1928 के आस-पास श्याम जी काले इन्हें महाराष्ट्र में लाये। डॉ. श्याम परमार का कथन है कि गोवा, कर्नाटक और महाराष्ट्र की मिली-जुली सीमाओं तक इस शैली के नाटकों का आदान-प्रदान प्राचीनकाल से होता रहा है।

लोक-विधाओं के अन्य लीला-नाटक

हमने ऊपर लोक मंचों का जो उल्लेख किया है वे सभी मूलतः लीला नाटकों के ही मंच हैं, परन्तु इन मंचों के साथ-साथ लोकधर्मी नाटकों की ऐसी और भी अनेक परम्पराएँ हैं जो समय-समय पर अपनी शैली में लीला नाटक करते हैं। उदाहरण के लिए आन्ध्र और कर्नाटक के लोकनाट्य 'यक्षगान' में भी रामकृष्ण की लीला के अनेक प्रदर्शन होते हैं। छाया पुतलियों के साथ-साथ अब तो कठपुतलियों के माध्यम से रामायण, महाभारत और भागवत की कथाओं का प्रदर्शन होने लगा है। ब्रज क्षेत्र की भगत शैली में राम और कृष्ण की कथा अनेक लोक नाटककारों ने रची है और मंच पर उन्हें बड़ी सफलता से किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में ब्रज कला केन्द्र ने बहुत ही उल्लेखनीय कार्य किया है, भगत की शैली को पुनर्जीवित करके प्रतिवर्ष श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी एक नयी भगत जन्माष्टमी के अवसर पर पिछले दस वर्ष से सफलतापूर्वक ब्रज कला केन्द्र कर रहा है। तीन वर्ष पूर्व भोपाल के राष्ट्रीय रामलीला मेला में भी इस संस्था ने लेखक द्वारा रचित लक्ष्मण भगत लेखक के निर्देशन में प्रस्तुत की थी। जो बहुत ही सराही गयी थी। कहने का अभिप्रायः यह है कि भारतीय लोक नाटक में लीला पक्ष अत्यन्त ही प्रबल है। सभी लोक मंचीय विधाएँ, लीला नाटकों से जुड़ी हैं और अधिकांश लोक नाटक शैलियों का उदय ही लीला नाटकों से ही है। साथ ही यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि हमारे लीला नाटक विभिन्न भाषा, विभिन्न प्रदर्शन पद्धति तथा विभिन्न स्थानीय विभिन्नता के साथ देश की बहुरंगी संस्कृति के प्रतीक कला के संवाहक हैं, परन्तु हमारे लीला-नाटकों में कुछ तत्व ऐसे हैं जो इन विभिन्न नाटकों शैलियों में समानरूप से विद्यमान हैं। जिससे इस देश की संस्कृतिक एकरूपता की प्रतीति होती है। ऐसे तत्व

यहाँ ध्यानाकर्षण की दृष्टि से नीचे दिये जा रहे हैं:--

1. इन सभी लीला नाटकों में चाहे वे दक्षिण के हों या उत्तर के हों सभी में एक सी पौराणिक कथाओं को महत्व दिया गया है, रामायण, भागवत, महाभारत की कथाएँ तथा नृसिंह लीला के प्रसंग ही इन लीला नाटकों की कथावस्तु हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि भाषा वेशभूषा या खानपान की भिन्नता होते हुए भी पूरा देश सांस्कृतिक रूप से वैचारिक स्तर पर एक ही भावभूमि से जुड़ा हुआ है।

2. हमारे यहाँ 'नांद' को ब्रह्म रूप माना जाता है। सन्तों में संगीत को ईश्वर प्राप्ति का प्रमुख माध्यम माना है अतः हमारे सभी लीला नाटक नृत्य और संगीत से जुड़े हैं। यह संगीत भी जहाँ स्थानीय लोक संगीत को साथ लेकर चलता है। वहीं शास्त्रीय राग रागणियों का भी उसमें समावेश है। कर्नाटक तथा दक्षिण भारत के रागों की प्रतिध्वनियों तक हमें बिहार और असम तक के लोक लाटकों में मिल जाती है। इससे सिद्ध होता है कि यह सभी नाटक शैली प्राचीनकाल से ही एक दूसरे से जुड़ी रही है। श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किया है। और उन्होंने इन सभी संगीत प्रधान नाटकों को 'संगीतक' नाम दिया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में पन्द्रहवीं शताब्दी में रचे गये ग्रंथ शुभंकर के 'संगीत दामोदर' का उदाहरण देकर बतलाया है कि गीत, वाद्य, नृत्य, रंगशाला तथा नट-नटी जिस प्रदर्शन में हो वह संगीतक है। हमारे उक्त लीला नाटकों में यह सभी तत्व विद्यमान हैं। नट-नटी की भूमिका इन नाटकों में सूत्रधार करते हैं। जिसका महत्व यहाँ नट-नटी से भी अधिक महत्वपूर्ण है।

3. इन सभी नाट्य शैलियों में सूत्रधार किसी न किसी रूप में विशिष्ट भूमिका का सम्पादन करता है। कहीं यह समाज गायन करके लीला का नियंत्रण करता है। कहीं नाटक के पात्रों का परिचय करता है, कहीं लीला प्रसंगों की व्याख्या करता है। बिना सूत्रधार इन लीला नाटकों में विभिन्न नामों और रूपों में आते हैं बिना कोई इनके लीला-नाटक नहीं किया जा सकता।

4. मुखौटों का इन सभी लीला नाटकों में प्रयोग होता है। इन मुखौटों की अपनी-अपनी क्षेत्रीय विशेषता है। जिनमें इनके निर्माताओं का कला-कौशल स्पष्ट झलकता है। खेद है कि मुखौटों की इन विशेषताओं पर अभी तक किसी विद्वान ने कोई महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया है।

5. इन सभी लीला नाटकों में भरत के नाट्य शास्त्र के वर्णन के अनुसार पूर्वरंग होना उनकी एक और विशेषता है। यह पूर्वरंग प्रत्येक लीला-नाटक का महत्वपूर्ण अंग हैं जो विभिन्न नाम और रूपों में प्रस्तुत किया जाता है।

इन सभी विशेषताओं पर ध्यान देते हुए यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहाँ लीला-नाटक सामान्य लोक नाटकों से विशिष्ट है वास्तव में इन्हें लोक नाटक कहा जाना उचित भी नहीं है क्योंकि लोक-नाटक शब्द अँग्रेजी शब्द फोक ड्रामा के अनुवाद के रूप में ग्रहण किया गया है जो हमारे इन भारतीय नाटकों के स्वरूप को सही अभिव्यक्ति देने में असमर्थ है। 'आक्सफोर्ड कम्पेनियन आल ड्रामा' के अनुसार फोकप्ले (लोक नाटक) ऐसा नाट्य मनोरंजन है जो ग्रामीण उत्सवों पर ग्रामवासियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है और प्रायः अशिष्ट और देहाती होता है। योरोप में लोक नाटक आदिम जीवन में लोकोत्सवों के रूप में प्रारम्भ हुए थे। इंग्लैण्ड में 'ममर्सप्ले' को लोक नाटक कहा जाता है परन्तु हमने ऊपर जिन लीला-नाटकों का उल्लेख किया है या ऐसे ही अन्य अनेक भारतीय लोकधर्मी नाटक योरोपीय इस परिभाषा की कोटि से पृथक और विशिष्ट हैं। उनका स्तर, साहित्य, संगीत सभी एक विशेष स्तर रखते हैं और इनकी कलात्मकता भी कहीं अधिक है। इसीलिए श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने इन नाटकों को 'परम्पराशील' नाटक कहा है और अपने ग्रंथ 'परम्परा शील नाट्य में इनकी परम्परा और स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला है हमारे विचार से ऐसे नाटकों को 'लोक नाटक' नहीं कहा जाना चाहिए। हमारे देहाती समाज में विभिन्न जातियों में समय-समय पर जो नाटक, स्वांग आदि होते हैं या विवाह में जो 'खोइया' आदि के प्रदर्शन होते हैं, उन्हें ही लोक नाटक कहा जाना चाहिए।

भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में नाटक को रूपक तथा जनता से सीधे जुड़े ऐसे तत्कालीन नाटकों को 'लोक धर्मी उपरूपक' कहा है। वास्तव में सीधे मध्यमवर्गीय जनता के जीवन से जुड़े ऐसे नाटकों को 'लोकधर्मी नाटक' कहा जाना ही सर्वथा उचित है क्योंकि जैसा कि नाट्य शास्त्र में उल्लेख है ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य शास्त्र का यह पंचम वेद उस समाज के लिए बनाया था जो उस युग में वेद पाठ से वंचित था। अतः नाटक का निर्माण जनसाधारण के लिए था, परन्तु यदि नाटक की विकास यात्रा पर ध्यान दें तो संस्कृत के काल में भी नाटक राजदरबारों या विशिष्ट समाज के मनोरंजन का ही साधन रहा और वर्तमान नाटक भी जनसाधारण की पहुँच से दूर वर्ग विशेष के मनोरंजन का ही माध्यम है, जनता के बीच जिन नाटकों की पैठ है और जिन्हें आज के व्यस्त और कठिनाई भरे जीवन में भी लोग कई-कई रात जागकर देखते हैं। वह नाटकों की यह लोकधर्मी परम्परा ही है। जिसमें हमारे यह लीला नाटक प्राण वायु के समान है। ऐसी दशा में ब्रह्मा ने नाटक को जो पंचम वेद बनाया था। उस उद्देश्य की पूर्ति आज भी हमारे यहाँ लोकधर्मी नाटक ही कर रहे हैं, नाटक नहीं। ऐसी दशा में इन नाटकों को ही हम आज का 'पंचमवेद' कह सकते हैं। भारतीय जनजीवन में इनका गहरा लगाव है परन्तु खेद है कि स्वतंत्रता के बाद भी हमारी इन परम्परागत सांस्कृतिक कलात्मक धरोहरों का विकास सही दिशा में नहीं हो रहा है। इन परम्पराओं में विकृति व विघटन की प्रक्रिया भी निरन्तर चल रही है। यह एक अत्यन्त दुःखद स्थिति है जिसके निराकरण के लिए उच्चतरीय प्रयास किये जाने अत्यावश्यक हैं। विशेष रूप से इन परम्पराओं के संरक्षण और पोषण की ओर राज्य सरकार के सांस्कृतिक विभागों और अकादेमियों को विशेष रूप से ध्यान देना अत्यावश्यक है।

1. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ 635 पर डॉ. हजारी प्रसाद का लेख।

2. सदानंतैः प्रकाश स्वैलीला भिश्च स दीव्यति। तत्रैकेन प्रकाशेन कदाचिज्जगवन्तरे॥ सत्रैव स्वरीवारैर्जन्मादि कुरुते हरि। लघुभानतपतामृत 258.

3. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ 635

4. परम्पराशील नाट्य पृष्ठ 12-13

5. 'ब्रज का रस रंगमंच'

मध्यप्रदेश के लोक साहित्य में जातीय चेतना

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त

मध्यप्रदेश के लोक साहित्य में जातीय चेतना की परख के पहले 'जातीय' शब्द को समझना जरूरी है। जाति को यहाँ व्यापक अर्थ में लिया गया है, जिसके अनुसार 'भाषा, देश, इतिहास, संस्कृति आदि की समानता रखने वाला मानव-समुदाय' होता है और उसकी व्यापित जनपद या प्रदेश से लेकर राष्ट्र तक के मानव-समुदाय में है। उसका दूसरा अर्थ है- 'वर्ग विशेष के विभिन्न व्यक्तियों में पाया जाने वाला समान धर्म'। मतलब यह है कि जाति समान धर्म वाली होती है और इसी समान-धर्म चेतना को जातीय चेतना कहते हैं। जब लोकभाषा, इतिहास, लोकसंस्कृति आदि की दृष्टि से अंचल के विभिन्न भूभागों की विविधताओं के बावजूद विशिष्ट समानताओं से पुष्ट एकरूपता हो, तब उस अंचल की, उसके लोक साहित्य की विशिष्ट पहचान या मौलिकता बनती है, जिससे वह अन्य जनपदों से भिन्नता रखता है। इसी तरह जब उस अंचल की यह विशिष्टता अपने प्रमुख बिन्दुओं के आधार पर प्रदेश या राष्ट्र की विशेषताओं से एकरूप होती है, तब उसकी जातीय चेतना प्रकट होती है। मतलब यह है कि जातीय चेतना के दो स्तर स्पष्ट हैं- एक तो अपने ही अंगों की विविधताओं में समानताएँ स्थिर करने का है और दूसरा अन्य जनपदीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय इकाई से समानता के आधार पर एकरूप होने का है।

यह तो निश्चित है कि हर अंचल की लोकभाषा, उसकी टोन, उसकी कहन अलग होती है, उसकी जमीन और जलवायु में भी थोड़ी-बहुत भिन्नता मिलती है, उसका इतिहास कुछ और हो सकता है, और इन भिन्नताओं के कारण लोकसंस्कृति की देह में, उसके रूप-रंग और बनक में कुछ-न-कुछ अन्तर आना स्वाभाविक है। कभी-कभी तो किसी अंचल में कुछ ऐसे लोकमूल्य प्रधान हो जाते हैं, जो कि दूसरे अंचल में गौण रहते हैं। ऐसी विविधताओं के आधार पर किसी अंचल के लोक साहित्य पर अक्सर यह आरोप चरपा कर दिया जाता है कि वह अपनी स्थानीयता या आंचलिकता के कारण संकीर्ण है अलगाव की भूमिका अदा करता है। लेकिन असलियत यह है कि उसकी जातीय चेतना को अनदेखा किया जाता है। हर अंचल में, उसके लोकसाहित्य में कुछ ऐसी विशेषताएँ, निहित रहती हैं, जो दूसरे जनपद प्रदेश और राष्ट्र से मेल खाती हैं और सभी के बीच जुड़ाव की स्थिति लाती हैं। अतएव मध्यप्रदेश के समस्त लोकसाहित्य में उन समानधर्मी तत्वों या विशेषताओं की खोज बहुत जरूरी है, जो विभिन्न अंचलों के निजी अस्तित्व कायम रखते हुए

भी प्रदेश की अखण्डित अस्मिता बनाये रखती है।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि लोकमत या लोकमानस जैसे प्रमुख तत्व को ठीक से समझा जाय, जो लोकसाहित्य की धुरी है। चाहे लोक-रचनाकार की लोकानुभूति हो, चाहे लोकाभिव्यक्ति और चाहे पाठक, दर्शक या श्रोता का लोकरस हो, लोकमन सब जगह काम करता है। आखिर यह लोकमन क्या है? लोकसाहित्य के गहरे पारखी डॉ. सत्येन्द्र ने पश्चिमी लोक मनोविज्ञानवेत्ताओं की तरह इसे 'इनहैरिटेड' या उत्तराधिकारेय मानस माना है। उनका कहना है कि अवचेतन मन के दो भेद होते हैं एक उपार्जित और दूसरा उत्तराधिकारेय। 'उत्तराधिकारेय या लोकमानस वह प्राकृतिक आदिम मानस है, जो अपने रूढ़ मूल की सीमाओं को न त्यागता हुआ ऐतिहासिक-भौगोलिक क्रम में प्रतिक्रियावान अथवा क्रियावान होकर विकसित हुआ है।' यहाँ अधिक विश्लेषण का अवकाश नहीं है, पर यह स्पष्ट है कि यदि लोकमानस 'आदिम मानस है और किसी परिस्थिति में अपने रूढ़ मूल को नहीं छोड़ता,' तो विकास का क्या सवाल है। क्या वह भय और आश्चर्य जैसी मूल प्रवृत्तियों से हमेशा संचालित रहता है? क्या उसने कभी विद्रोह नहीं किया? इस संबंध में केवल एक बात कहकर आगे बढ़ना चाहता हूँ कि इस तरह का लोकमानस युगचेतना से दूर रहेगा और लोक साहित्य का बहुत-सा हिस्सा उसकी सीमित परिधि में नहीं अँट पायेगा। 1857 ई. के स्वतंत्रता-संग्राम, राष्ट्रीय आन्दोलन, गाँधी बाबा और अभी के मँहगाई-संबंधी लोकगीतों के भीतर क्रियाशील लोकमानस क्या लोकमानस नहीं है? उन्नीसवीं शती के अंतिमचरण के मध्यप्रदेश का एक बहुचर्चित बुंदेली लोककवि ईसुरी यदि अपनी फागों में अपने भोगे हुए सुख-दुख, गाँव में पड़े अकाल के शिकार गरीब किसानों की भूख और आस-पास की डाकाजनी का वर्णन करता है अथवा पटवारी और कानूनगो की लॉच या रिश्वत का संकेत करता है, तो ईसुरी का लोकमन किस कसौटी पर कसा जायेगा? मतलब यह है कि लोकमानस को सही रूप में देखने की जरूरत है और तभी लोकसाहित्य की लोकानुभूति का, उसके लोकरस का और उसकी जातीय चेतना का परिज्ञान संभव है।

असल में लोकमन लोक के साथ चलता है। उसमें लोक का अतीत, वर्तमान और भविष्य सब रहता है। संस्कारपरक, पौराणिक और ऐतिहासिक लोकगीतों में अधिकतर उसका अतीत बोलता है, लेकिन ये अधिकांशतः मध्ययुग में रचे गये हैं, इसलिए उस युग का या तो यथार्थ प्रतिबिम्बित हुआ है या फिर उसमें किसी लोकादर्श की गिरावट के कारण उसकी पुनर्स्थापना का जोरदार प्रयत्न है। पारिवारिक संबंधों, सामाजिक उत्सवों और समस्याओं के गीतों एवं फड़गीतों-सैर, मंज, लाउनी, लेद आदि में वर्तमान के दर्शन होते

हैं, जिसमें जीवन के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चित्र लिखे होते हैं। गारी लोकगीत तो रचना-काल के यथार्थ का इतिहास कही जा सकती है। उसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि भविष्य तक की चिन्ता उसमें समा गयी है। इन उदाहरणों से निर्विवाद है कि लोकमन हर युग की लोक-चिन्ताओं, समस्याओं और पीड़ाओं की अभिव्यक्ति करता रहा है। यहाँ तक कि अकाल, युद्ध, स्वतंत्रता-संग्राम, जैसी राष्ट्रीय घटनाओं, छत्रसाल, रानी लक्ष्मीबाई, गाँधी बाबा जैसे राष्ट्रीय व्यक्तित्वों और अँग्रेजी सीखकर नये फैशन करने जैसी सांस्कृतिक समस्याओं को केन्द्र में रख लोक साहित्य ने कीमती योगदान दिया है, जिसे भुलाना इतिहास को नकारना है। ऐसे गतिशील लोकसाहित्य को लोकमानस को संकीर्ण, सामन्तवादी और अलगाववादी मानना उचित नहीं है। यदि गहराई से देखा जाय, तो लोक साहित्य जातीय चेतना की अभिव्यक्ति का सही माध्यम सिद्ध होगा।

इस संदर्भ में लोकगीतों की साक्ष्य अधिक प्रामाणिक है। मध्यप्रदेश के हर अंचल के लोकगीतों की प्रकृति अपनी निजता रखती है, इसलिए उनमें वैविध्य है। अगर भावना की सापेक्षता में देखा जाये, तो उपजाऊ धरती में उगे और कृषि प्रधान लोक संस्कृति में पले-पुसे मालवी लोकगीतों में संतोष और शांति की भावना अधिक है, जबकि विन्ध्य और सतपुड़ा के बीच नर्मदा में नहाई कछारी धरती के भोलई निमाड़ी गीतों में प्रेम और सौन्दर्य की प्रधानता है। दण्डकारण्य की वन्य हवाओं से क्रीड़ा करती धान की लहलहाती फसलों में झूमते छत्तीसगढ़ी गीतों में स्वच्छंद श्रृंगार की प्रवृत्ति है, तो घने जंगलों और कठोर चट्टानों से घिरी हरियर धरती से फूटे बघेली गीतों में कर्म और करुणा की और विन्ध्य के पथरीले-कटीले देस में जन्में एक अपने अस्तित्व और स्वातंत्र्य के लिए जूझने वाले बुंदेली गीत वीरता और जातीय गौरव की भावना से पुष्ट हैं। वस्तुतः ये सभी विविधताएँ मध्यप्रदेश के हृदय सरोवर की भाव-तरंगे हैं, जो एक ही संस्कृति की जलराशि से तरंगायित हैं।

दरअसल लोकभाषा और लोक वातावरण के विविध रूपों में लिपटा अंतरंग एक है। सभी अंचलों में लोक गीतों में अधिकतर संस्कारों की एकरूपता है, एक से मानवीय रिश्तों की व्यंजना है और लोक कल्याण का एक ही लक्ष्य है। प्रेम, त्याग, शौर्य, बलिदान, भाग्य, कर्म, पातिव्रत्य और शील संबंधी लोक मूल्य एक जैसे हैं और सभी में मिलते हैं। सभी में एक-सा लोकधर्म है, जो किसी भी स्तर पर साम्प्रदायिक नहीं है। जिसका हर देवता सामान्य मानव बन गया है और जिसमें मानव को भी देवता बनाने की शक्ति है, इस तरह का लोकधर्म और एक-सा लोकदर्शन, जिसमें

कोई भी मतवादी आग्रह नहीं। केवल लोकादर्शों की समानता नहीं, वरन् सामाजिक समस्याओं के प्रति एक-सी चिन्ता और उनका यथार्थ वर्णन। कुछ लोकगीतों ने तो हर अंचल में भाव यात्रा की है। उदाहरण के लिए बेटी की विदा के गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं:--

बुंदेली-

माई के रोये सें नदिया बहत है, बाबुल के रोये बेलाताल, मोरे लाल
वीरन के रोये छतिया फटत है, भौजी के जियरा कठोर, मोरे लाल।

बघेली-

बापा के रोये नदिया बहति हैइ, माया के रोये तलबा।
भइया के रोये हिया फटति हइ, भउजी के बइना कठोर।।

छत्तीसगढ़ी-

दाई तोला रोवे नोनी हरर हरर ओ, ददा रोवे गंगा बोहावे।
भइया तोला रोवे नोनी भीजे पिछौरी, भौजी के नैना कठोर हो।

मालवी-

मैया की अंखियन से गंगा बहत है, बाबुल की अंखियाँ तलाब।
भैया की अंखियन से नदिया बहत है, भाभी को हृदय कठोर।।

सास-ननद का बहू के प्रति द्वेष-भाव और फलस्वरूप पारिवारिक कलह एक ऐसा कठोर यथार्थ है, जो सभी अंचलों में मौजूद है और जिसने भाभी की प्रतिष्ठा को काफी नीचे गिरा दिया था। लेकिन बुंदेली के हरदौल गीतों ने भाभी के प्रेम और त्याग को बहुत ऊँचाई देकर पुराने लोक मूल्य को बदलने की कोशिश की है। ऐसे बदलाव लोकसाहित्य की सचेतनता के प्रतीक हैं और यह सचेतनता हर अंचल में है। लोकगाथाओं की कथानक रूढ़ियों और अभिप्रायों में काफी समानताएँ हैं, यहाँ तक कि एक अंचल की लोकगाथा भाषायी ओढ़नी ओढ़कर दूसरे अंचलों में प्रवेश कर गई है। ठीक उसी तरह जैसे एक अंचल की बिटिया दूसरे अंचल की बहू बनकर घर की शोभा बढ़ाने लगती है। आल्हा, सरवन कुमार, ढोला-मारू, भरथरी आदि गाथाएँ तो अब राष्ट्र की सम्पत्ति हो गई हैं।

मध्यप्रदेश के लोक काव्य में आंचलिक संकीर्णता की भावना कभी नहीं रही। एक तरफ बुंदेली नारी की भीतरी कसक है-- 'सखी री मैं तो भई न बिरज की मोर', तो दूसरी तरफ निमाड़ी की धुन गूँजती है- 'ओ देवी गंगा, वहे हो सुरंगा, धारी झबर म्हारो निरमल अंगा।' छत्तीसगढ़ी भोजली गीत में 'देवी गंगा', लहर तरंगा, तुहरे लहर परभू, भीजी आठों अंगा', द्वारा गंगा माता की स्तुति है, तो मालवी में 'सरस गंगा मई की आरती कीजो, आरती कीजो

चरनामृत लीजो' पंक्तियों से गंगा के प्रति पूजा की पवित्र भावना है। और भी उदाहरण हैं, जिनसे देश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना झलकती है।

लोक कथाओं में समानता के तत्व-

समानता के तत्व लोक कथाओं में इतने अधिक हैं कि उन्हें देश और काल की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। कुछ लोक कथाएँ तो सभी अंचलों में यहाँ तक कि भारत और विश्व की अन्य भाषाओं में कुछ थोड़े रूपान्तरण के साथ मिलती हैं। उदाहरण के लिए संत-बसंत, कौवा चिरई आदि। दीवाली पर लक्ष्मी की कथा मध्यप्रदेश के सभी अंचलों और उत्तर भारत में व्याप्त है। बुंदेली की 'अपनो अपनो भाग्य', छत्तीसगढ़ी की 'बखत के माया' और बघेली की "भाग्य पर भरोसा" कथाएँ एक ही लोक मूल्य प्रतिष्ठित करती हैं। परकाय-प्रवेश का अभिप्राय बघेली की 'नवजोवना', बुंदेली की परकाय-प्रवेश छत्तीसगढ़ी और मालवी की विक्रमादित्य संबंधी लोककथाओं में आया है। वस्तुतः मध्यप्रदेश की लोक कथाओं के मूल स्रोत वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, पुराण, पंचतंत्र, बृहत्कथा, जातक कथाएँ आदि रहे हैं। दूसरे उनमें एक से अभिप्रायों और कथाचक्रों का प्रयोग हुआ है। तीसरे, उनके-पात्र देवता, पशु, पक्षी आदि सब सामान्य मानव की तरह क्रिया-व्यापार में भागीदारी करते हैं। चौथे, लोक-कथाओं का अन्त अधिकतर सुखी स्थिति में होता है। पाँचवें, लोककथाओं का उद्देश्य या तो लोकरंजन है या लोकमंगल। छत्तीसगढ़ी कथाकार कहता है- 'जैसन भाग इनके षनिस तैसने, भगवान करे, सबके भाग बहुरै।' बुंदेली में भी-- 'जैसी उनकी दसा फेरी, भगवान सबकी फेरै।' आप जरा सोचें, रचना प्रक्रिया में कथाकार की यह मानसिकता साहित्य के किस प्रयोजन को सामने रखती है। मैं समझता हूँ कि भरत वाक्य के प्रयोग में लोककथा की प्रेरणा रही है।

यह सही है कि प्राकृतिक उपकरणों, आदिम जातियों की अवस्थिति एवं अन्य आंचलिक रंगों की वजह से लोककथाएँ अंचल से जुड़ी हुई हैं। दूसरे, उनमें जादू-टोना, दानव, अप्सरा आदि से संबद्ध कुछ चमत्कारी और असंभाव्य घटनाएँ परम्परित बन कर बैठी हुई हैं। तीसरे, लोकगीतों जैसी गतिशीलता उनमें नहीं दिखाई पड़ती। लेकिन यह भी सच है कि जितनी स्थानीयता लोक कथाओं में है, उतनी वक्ता और श्रोता की मानसिकता के जुड़ाव के लिए जरूरी है। चमत्कारिक या जादुई प्रसंग एक खास उम्र के बच्चों में फेन्टसी या कल्पना जगाते हैं। इन दोनों के मनोवैज्ञानिक पक्ष के महत्व को भी ध्यान में रखना चाहिए। लोक कथाओं का विकास उतना साफ नहीं दिखता, जितना लोकगीतों का, लेकिन प्रचलित लोककथाओं से चुनाव और उनका बदलाव लोक अवश्य करता है।

लोक कथाएँ धीरे-धीरे प्रकट भी होती हैं, जब वे लोक मुख पर आ जाती हैं। बहरहाल, इतना तो सहज रूप में स्पष्ट है कि लोक कथाओं में जातीय रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास, मूल्य आदि यानी कि जातीय धरोहर सुरक्षित हैं, जो कि जातीय जीवन की अमोघ शक्ति हैं।

लोकोक्ति और लोकनाट्य

लोक लघुकथाओं, बुझौवलों और लोकोक्ति साहित्य में समानता के सूत्र और भी अधिक हैं। मालवी में 'चिड़ी-काग-वार्ता' छत्तीसगढ़ी में 'चिड़िया की कहानी', बुंदेली में 'चिरई के चैनुआ' कुछ थोड़े से रूपान्तर के बावजूद एक हैं। लोकोक्तियाँ तो बिलकुल एक-सी हैं। उनमें आंचलिक शब्दों, उपमानों आदि की भिन्नता स्वाभाविक है। निमाड़ी में 'एक तवा की रोटी, काई छोटी काई मोटी', बुंदेली में 'एक तबा की रोटी, का छोटी का मोटी', छत्तीसगढ़ी में 'एके तवा के रोटी, का नान्हीं का बड़की' आदि में कितना साम्य है। अब रह जाता है लोकनाट्य जो लोक साहित्य की काफ़ी प्रभावशाली विधा है। पर कई विद्वानों ने अपने अंचल के लोक साहित्य-संबंधी शोध ग्रंथों में उसे उपेक्षित छोड़ दिया है। यहाँ तक कि हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भी उन्हें अपने में नहीं समेट सका। मध्यप्रदेश के सभी अंचलों में रामलीला, रासलीला, नौटंकी आदि लोकनाट्य प्रचलित रहे हैं। मालवी का माच और तुरी कलंगी, निमाड़ी का ख्याल तथा बुंदेली का स्वाँग आदि उनके विशिष्ट लोकनाट्य भी हैं। भाषा की दृष्टि से वे दो तरह के हैं- एक तो मिश्रित भाषायी जैसे रामलीला, रासलीला, नौटंकी, ख्याल आदि और दूसरे लोकभाषायी जैसे स्वाँग। माच में भी बुंदेली, ब्रजी, निमाड़ी, उर्दू, फारसी, अरबी आदि के शब्द हैं, क्योंकि वह तुरीकलंगी से प्रभावित रहा है। इस प्रकार अधिकांश लोकनाट्य सार्वदेशिक हैं। उनमें ऐतिहासिक चेतना और युगबोध प्रधान रहा है। माच के ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक, नौटंकी के ऐतिहासिक और राष्ट्रीय संगीत तथा स्वाँग के सामाजिक व्यंग्य युगधर्म का पूरा-पूरा निर्वाह करते हैं। यहाँ तक कि तुरीकलंगी की गायकी में नये से नये विषय और राष्ट्रीय समस्याएँ गृहीत हुई हैं तथा माच और स्वाँग में सामंती प्रवृत्ति पर करारी चोट की गयी है। केवल इन्हीं उदाहरणों से सिद्ध है कि लोकनाट्य अधिक लचीले हैं और उन्होंने जहाँ आंचलिक लोक तत्वों को अपनाया है, वहाँ प्रदेशीय और राष्ट्रीय चेतना को भी आत्मसात करने में आगे रहे हैं।

राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति

यहाँ यह और स्पष्ट कर देना उचित है कि लोक साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का ऐसा रूप भी प्रतिबिम्बित हुआ है, जो

तत्कालीन लोक में मौजूद था। उदाहरण के लिए बुंदेली की मनोगूजरी जैसी गाथाओं में विदेशी आक्रमणकारी से जूझने का निराला संकल्प है। केवल शस्त्रों से नहीं, वरन् भीतरी ऊर्जा से भी। मनोगूजरी संघर्ष की आस्था है, जो मध्ययुग में बहुत भीतर से जागरूक थी। इसी तरह बुंदेली और बघेली में अँग्रेजों के खिलाफ जूझने के लोकगीत हैं। मालवी पवाड़े भी इसी तरह की बलिदानी भावना और स्फूर्ति से भरे हैं। चैन सिंह के पवाड़े में फिरंगियों से लोहा लेकर चैन सिंह अपना शीश कट जाने पर धड़ से जबाब देता है। सत्रहवीं शदी में अग्निदास ने जो 'कड़ाका' गाया था, वैसे 'कड़खे' बुंदेलखंड में भी प्रचलित रहे हैं। यहाँ तक कि दतिया के अंतिम नरेश के राज्यकाल (1907-48 ई.) तक। बहरहाल, लोक साहित्य में स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने का विद्रोही स्वर हमेशा गूँजा है और हरबोलों ने लोकगीतों और लोक गाथाओं को गा-गाकर शूरवीरों को आजादी की लड़ाई के लिए तैयार किया है। क्या यह सब संकीर्ण क्षेत्रीयता है या सचमुच लोकव्यापी राष्ट्रीय भावना? देश प्रेम के ऐसे अनेक उदाहरण मध्यप्रदेश के लोकसाहित्य में मिलते हैं, जो उसे राष्ट्रीय काव्य की महत्वपूर्ण धारा बना देते हैं। अतएव लोक साहित्य जहाँ एक अंचल का है, वहाँ पूरे राष्ट्र का। उसकी इस जातीय चेतना पर किसी को शक नहीं होना चाहिए। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि काव्य को राष्ट्रीय बनने के लिए पहले लोक काव्य होना ही पड़ेगा। लोक काव्य यानि कि जन-जन का काव्य, और लोक साहित्य समस्त लोक का होने से राष्ट्र का साहित्य हो ही जाता है।

लोकतंत्र में योगदान

इस प्रकार सिद्ध है कि मध्यप्रदेश के सभी अंचलों का लोक साहित्य अपनी मौलिक पहचान बनाता है तो दूसरी तरफ भाव, विचार, कल्पना और संस्कृति की एकरूपता से जातीय चेतना सुरक्षित रखता है। उसका बहिरंग भले ही उसकी स्वतंत्र सत्ता प्रतिष्ठित करे, पर अंतरंग उसे प्रदेश और राष्ट्र की अविभाज्य इकाई बनाने में समर्थ है। लोक साहित्य तो हर जाति, हर धर्म और हर वर्ग का है। उसका लोक दर्शन हर आदमी का दर्शन है और उसका इतिहास लोक चेतना का इतिहास। अतएव यह कहने में संकोच नहीं है कि लोकतंत्र के विकास में लोक के साहित्य का काफ़ी योगदान रहा है और मध्यप्रदेश का लोक साहित्य उसमें कभी पीछे नहीं रहा।

लोकगीत : परम्परा प्रयोग एवं संरक्षण

महावीर अग्रवाल

साहित्य की अत्यंत सूक्ष्म, कमनीय एवं प्राणवंत विधा है गीत। गीतों का जन्म किसी अज्ञात कवि के मुख से लोकजीवन में हुआ। यही कारण है कि लोक-गीत, लोकजीवन का श्रृंगार ही नहीं उसकी आत्मा भी है। लोकगीतों में वस्तुतः कवि की नहीं वरन् जन समाज की वाणी मुखरित होती है। ये लोकगीत हमारे खेतिहर समाज की जीवन पद्धति और संस्कृति के दर्पण हैं। सदियों से प्रचलित लोकगीत वाचिक परम्परा का ऐसा प्रवाह है जिसमें उसके अन्तर्मन की व्यथा कथा छलकती है 'लोक गीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।' लोक का भावुक और निर्लिप्त मन जन्म से मृत्यु तक लोकगीतों का संबल ढूँढता है।

लोकजीवन के सुख-दुःख, उल्लास-हर्ष, विषाद और संघर्ष को अभिव्यक्त करते हुए लोकगीत कोटि-कोटि हृदयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पनिहारिन और बोझा ढोती हुई स्त्रियों के साथ-साथ घर में चक्की पीसती हुई महिलाओं के सुरीले कंठों में रचे बसे लोकगीत जनजीवन में इतने गहरे पैठे हुए हैं कि ये जनजीवन का अविच्छिन्न अंग बन गये हैं। लोकजीवन के चप्पे-चप्पे में, लमहे-लमहे में पोर-पोर में लोकगीत रचे बसे हैं। समाज लोकगीतों के दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखता आया है। रंग-बिरंगे परिधानों में इन्द्रधनुषी छटा बिखेरते हुए ग्रामीणजनों में जीवन के प्रति आस्था का स्वर हिलोरें मारता है। ऐतिहासिक परंपरा को पीढ़ी दर पीढ़ी संजोये ये कलाकार उसमें समकालीन समाज की अनेकानेक स्थितियों को प्रतिबिंबित भी करते रहते हैं। यही उनकी शक्ति है और यही हमारी धरोहर है। इन्हीं कलाकारों की दुनिया में देश और मानव जाति के सच्चे उत्कर्ष का रेखांकन बोलता हुआ नजर आता है।

लोकगीतों की गंगोत्री आदिम युग से निरन्तर गतिमान है। 'जिस तरह वेद अपौरुषेय माने जाते हैं उसी तरह ग्राम गीत भी अपौरुषेय हैं।' मानव जाति के उत्थान पतन की गाथा गाते हुए इन गीतों में व्यक्ति अपने उल्लास और आक्रोश के साथ-साथ मन में दबी इच्छा को सबके सामने रखता है। मन का भार हल्का करने उसने दुख में लम्बी तान छोड़ी है और सुख में हुलसकर गाया है, संतोष पाया है। ग्रामीण जनजीवन में ही नहीं गाँव के पेड़ पौधों और पशु-पक्षियों में भी ये लोकगीत रचे बसे हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है, 'मनुष्य लोक बद्ध प्राणी है। उसकी अपनी सत्ता का ज्ञान लोकबद्ध है। लोक के भीतर ही कविता क्या किसी कला का प्रयोजन और

विकास होता है।³ सच तो यह है कि वह गीत जो कानों को मीठा लगे, हृदय को गुदगुदाए, कण-कण में रचकर मुस्कराए, विशेष अंचल में वहाँ की बोली में जब गाया जाये और जन-जन के कंठ का हार बने तो वह गीत लोकगीत कहलाता है। लोकगीत खदान से निकले हुए हीरे की तरह होते हैं। बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है, 'अब ग्राम्य कविता पर ध्यान दीजिये। मल्लाहों के गीत, कहारों का कहरवा, बिरहा अथवा आल्हा आदि सब महाभद्दी, केवल गँवारों की रोचक कविताएँ। उनकी प्रशंसा में यदि हम कुछ कहें तो नागरिक जन जो भाषा की उत्तम कविता के रसपान के घमंड में फूले नहीं समाते, अवश्य हम पर आक्षेप करेंगे और हमें निपट गंवार समझेगे।'⁴ मैंने निम्न दो पंक्तियों का प्रयोग अनेक लोक नाटकों में देखा और सुना है।

अंधरा रिहिस राजा हा अउ कामचोर अधिकारी।
ठकुर सुहाती बोली बोले मिठ लबरा दरबारी॥

गीतों की ऐसी सैकड़ों पंक्तियाँ हमें बताती हैं कि दूर-दराज गाँव में भी ऐसे ऊर्जावान रचनाकार हैं, जो कबीर की तरह- 'मसि कागद गाह्यो नहीं, कलम गहि नहिं हाथ' हैं और कबीर की तरह संगतियों-विसंगतियों से न केवल वाकिफ हैं, वरन् संगतियों पर आस्था रखते हुए विसंगतियों पर प्रहार भी करते हैं। 'वाणी और श्रुति ही इसको जीवित रखती है और ये ही उसके प्रचार के साधन हैं।'⁵ किसान, दैनिक मजदूर, बढ़ई, लोहार आदि के पेशे से जुड़े रचनाकारों में सहज वर्ग-चेतना है। ये गुमनामी के अँधेरे में रहते हुए, जिन स्थितियों में जीवनगत और रचनात्मक संघर्ष कर रहे हैं, वहाँ आज के जमाने में रचना का प्रकाशन मुश्किल ही है। साथ ही, वे अपनी रचनाओं के प्रकाशन और प्रचार के प्रति उतने सजग भी नहीं हैं, जितने के युगीन-चिन्ताओं और रचनात्मकता के प्रति। छत्तीसगढ़ी गीतों में ऐसी हजारों पंक्तियाँ हैं जिनमें विचार और सिद्धांत के साथ नौ रसों का सागर है। सच तो यह है कि 'लोक भाषाओं के स्वरूप का निर्माण जनता ने किया था लेकिन उन्हें काव्य भाषा का रूप इन्हीं कवियों ने दिया।'⁶

छत्तीसगढ़ी एक सरस, सरल और लचीली बोली है जिसमें सौहार्द, सामंजस्य और प्रेम के घुँघरू बजते हैं। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों की समृद्ध परम्परा लोकमानस के कंठ-कंठ में समाई हुई है। पर्वों और त्यौहारों के अवसर पर गीतों का झरना लोकजीवन में झरने लगता है। इनकी मुग्धकारी तान सुनते ही हमारा अन्तःकरण अलौकिक अनुभूति से भर जाता है। ग्रामीण जीवन अपने सभी

क्रियाकलापों और अनुष्ठानों का स्वागत गुनगुनाते हुए करता है। छत्तीसगढ़ का ददरिया सावन भादों की बरखा की तरह नहीं वरन् बारहों महीनें रसविभोर करते हुए गुदगुदाता है। श्रावण मास में भोजली पर्व सम्पन्न करते ही भादों शुक्ल एकादशी से शरद की धवल चन्द्रिका में करमा के पाँव थिरकते हैं। तुरंत ही कँवार शुक्ल पक्ष एकम से नवमी तक जंवारा और गौरी-गौरा गीतों की झमक से गाँव झूम उठते हैं। कार्तिक कृष्ण पक्ष में दीपावली के अवसर पर सोहई के साथ-साथ सुआ गीतों की लयबद्ध तालियाँ बजने लगती हैं। ऋतुराज बसंत में डंडा नृत्य गीतों की बहार छा जाती है और रसराज फागुन के आते ही उल्लास में डूबे फाग के स्वरो का जादू जन-जन में छाने लगता है। संध्या ढलते ही गाँव की चौपालों में नगाड़े और ढोल की थाप पड़ने लगती है। चैत्र शुक्ल पक्ष में रामनवमी में रामधुन और माता सेवा का अलग महत्व है। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों की वाचिक परम्परा में आत्मानुशासन की मर्यादा बेहद सटीक नजर आती है-

कनिहा पोटार के बहिनी रोवय
गर पोटार के भाई
ददा बपुरा मुँह छपक के
बोम फार के दाई।

बहन 'कमर' पकड़कर विलाप कर रही है और भाई ग्रीवा को थामे रो रहा है। एक ओर पिता मुख को ढाँपकर रो रहे हैं तो दूसरी ओर माँ गाय की तरह रंभाकर अर्थात् दहाड़ मारकर रो रही है। सुआ, ददरियाँ, करमा, जंवारा, माता सेवा, फाग, पंथी, डंडा गीत, भोजली गीत और बाँस गीत के साथ ऋतुओं के गीत, की छठा निराली है। पंडवानी, लोरिकचंदा, भरथरी और चंदैनी जैसे कथात्मक गीतों में शौर्य और पराक्रम का अद्भुत वर्णन है। सोहर और संस्कार गीतों में जन्म, अन्नप्रासन, मुंडन तो विवाह गीतों में चुलमाटी, तेलमाटी, टिकावन, भाँवर, परधनी और समधी भेंट तक प्रत्येक नेग इन गीतों के बिना, बिना शक्कर की मिठाई की तरह है। प्रसूतिगृह की देहरी से श्मशान घाट तक खेतों से होते हुए, खलिहानों और चौपालों तक हजारों गीत बिखरे पड़े हैं। इन लोकगीतों में मूलतात्विक परम्परा की पहचान और संरक्षण का प्रश्न बहुत जटिल है।

यह सही है कि छत्तीसगढ़ में अलिखित गीतों का विशाल भंडार है परन्तु क्या हम उसे हमेशा के लिए पर्याप्त मान लें और नये प्रयोगों की आवश्यकता पर विचार करना ही छोड़ दें? ऐसा

करने से लोकगीतों का क्षेत्र बहुत सीमित हो जायेगा। यही कारण है कि लोकगीतों में नये जीवन मूल्यों के साथ स्वाभाविक रूप से नये प्रयोगों की आवश्यकता है। डॉ. नारायणलाल परमार ने लिखा है 'छत्तीसगढ़ के ददरिया लोकगीतों की बुनावट कुछ इतनी सहज है कि उनमें इच्छानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।' एक ददरिया लोकगीत की चिरपरिचित पंक्तियाँ हैं-

बागे बगीचा दिखें ल हरियर
टोपी वाला नइ दिखें बदे हो नरियर

तात्पर्य यह है कि एक प्रेमिका एक अदद नारियल की मनौती मानकर अपने प्रियतम की राह देख रही है। विशेषता यह है कि उसका प्रियतम 'टोपी' धारण करने वाला है। दरअसल छत्तीसगढ़ के गाँवों में टोपी पहनने का रिवाज नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि गीत की इन पंक्तियों में शब्दिक परिवर्तन आजादी के आंदोलन काल में ही हुआ क्योंकि खदर की टोपी लगाकर लोग उन्हीं दिनों गाँवों में घूमा करते थे।

इससे पहले 'टोपीवाला' के स्थान पर चोंगीवाला, गाड़ीवाला या झुलुपवाला शब्द का प्रयोग होता रहा है। लोकगीतों की मौखिक परम्परा श्रुति परम्परा है, अतः लगातार परिवर्तित होते हुए आगे बढ़ती है। समय के बदलते हुए चक्र में यह साइकिल वाला, ट्राँजिस्टर वाला के साथ अब ट्रक वाला हो जाता है। यह परिवर्तन सहजता से स्वीकार किया गया है। देवीलाल पामर ने भी लिखा है 'अनंतकाल से ये लोकगीत मानवकंटों से परिभाषित होकर असंख्य जनसमुदाय के हृदय में उतरकर परिवर्तित, परिमार्जित तथा संशोधित होते हुए भी सच्चे खरे सोने की तरह अनेक कसौटियों पर चढ़े होंगे।' छत्तीसगढ़ के दूसरे लोकगीतों में भी बदलते हुए जीवन मूल्यों की विशद झाँकियाँ मिलती हैं। कवि और गायक की यही जागरूकता सही दिशा में मार्ग प्रशस्त करती है।

कहना न होगा कि किसी भी देश के अंचल की सभ्यता और संस्कृति की झलक लोकगीतों में मिलती है। असंख्य नारियों के हृदय की झंकार का यह ताना बाना करूण, हास्य और ऋंगार रस में लिपटकर सुरीले कंठों में गूँजता है। सुआ, भोजली, ददरिया आदि गीतों में उनके प्राणों की वेदना दुखान्त में फूटती है। इन गीतों में भावना का वेग इतना अधिक रहता है कि हृदय द्रवीभूत हो उठता है। बड़ी से बड़ी बात का उलाहना देने और नाराजगी जाहिर करने में लोकगीतों ने नारी जाति की बड़ी मदद की है। हृदय में लगी ठेस दुख और पीड़ा को, जिन्हें कई कारणों से जुबान पर नहीं

लाया जा सकता, उन्हें गीतों की लड़ियों में पिरोकर डंके की चोट समाज को गा गाकर सुना दिया जाना लोकगीतों का कमाल है। लोकगीतों के संबंध में कहीं पढ़ा था। गाँवों में हमारी माताएँ ब्रह्म मुहूर्त में उठकर झाड़ू देती हुई, चक्की पीसती हुई और दूध दुहती हुई लोकगीतों की गुनगुनाहट से अपना कार्य प्रारंभ करती हैं। इसके साथ ही बोझा ढोते हुए मजदूर, हल व गाड़ी चलाते हुए कृषक, खेतों में निंदाई और खलिहानों में मिंजाई करती हुई नारियाँ सभी लोकगीतों को गुनगुनाते हैं। लोकगीतों का इतना घना सामंजस्य इनकी दिनचर्या में हुआ है कि प्रत्येक स्थल पर, प्रत्येक पर्व में और प्रत्येक संस्कार में लोकगीत गूँजने लगते हैं। डॉ. दयाशंकर शुक्ला ने लिखा है 'छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में वस्तुतत्त्व और रूप विधान दोनों की बहुलता है। छत्तीसगढ़ का सामूहिक व्यक्तित्व यहाँ के लोकगीतों में प्रतिबिम्बित हुआ है। यहाँ के लोकगीत जागृत जनता के प्रतीक हैं।' छत्तीसगढ़ में श्रम और गीत की जुगलबंदी मानव की अदम्य जिजीविषा से ओतप्रोत है। इन लोकगीतों में हमारा अतीत ही नहीं वर्तमान भी मुखरित होता है। आने वाले कल की आहट और सुदूर भविष्य की अनुगूँज इन गीतों में प्रतिध्वनित होती है।

सच तो यह है कि प्रत्येक देश एवं जाति की सभ्यता के विकास की उसके जीवन की गतिविधि की और उसके सांस्कृतिक धरातल के विभिन्न स्तरों की झाँकी लिखित साहित्य की अपेक्षा उनके मौखिक साहित्य में ही अधिक उपलब्ध होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है, 'ग्राम गीत आर्येत्तर सभ्यता के वेद हैं।' विश्व के अधिकांश विद्वानों ने सर्वमान्य रूप से यह अनुभव किया है कि लोक साहित्य में लोक की आत्मा वास्तविक स्वरूप में प्रतिबिम्बित होती है। और इस वैज्ञानिक सत्य को समस्त संसार ने स्वीकार कर लिया है। लोकगीतों के असाधारण महत्व को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि लोकगीतों के संरक्षण एवं प्रोत्साहन से ही अपनी संस्कृति अक्षुण्ण रह सकती है क्योंकि इसमें हमारी प्राचीन परम्पराएँ, विश्वास एवं आदर्श सुरक्षित हैं। संरक्षण का प्रश्न लोकगीतों की शुद्धता एवं प्रामाणिकता से है। परम्परा में परिवर्तन स्वाभाविक प्रक्रिया है। लोकगीतों के मर्मज्ञ, मनीषी और लोकसाहित्य के प्रवक्ता अक्सर कहते हैं कि लोकगीतों के रचनाकारों का कोई अता पता नहीं होता। ऐसी स्थिति में यदि कोई नया गीत जन-जन के बीच गाया जा रहा है और अचानक ज्ञात हो कि उस गीत का रचनाकार जीवित है तो क्या उसे लोकगीत नहीं माना जायेगा? ऐसी स्थिति में अनेकानेक क्षेत्रीय बोलियों और लोकभाषाओं में जो गीत लिखे जा रहे हैं उन्हें

लोकगीत नहीं माना जा सकता। लोकजीवन और लोकसाहित्य के बीच अपना समूचा जीवन खपा देने वाले वेरियर एल्विन ने लिखा है “लोकगीत अथवा लोककथा केवल अजायबघर की वस्तु नहीं। उसमें नयी पीढ़ियों के साथ-साथ नये परिवेश और नये संघर्ष जुड़ते रहते हैं।”⁹

छत्तीसगढ़ी बोली में गीतों का सृजन बहुत तेजी से और विशाल मात्रा में होने लगा है यह शुभ है। ये छत्तीसगढ़ी गीत हैं। इन छत्तीसगढ़ी गीतों को लोकगीत कहने के लिए प्रत्येक गीत को अलग-अलग परखना होगा। उसमें निहित तत्वों का मूल्यांकन विद्वान और अधिकारी समीक्षकों द्वारा करवाया जाय तभी लोकगीतों की परिवर्तित होती यात्रा सार्थक होगी। पर प्रश्न यह है अधिकारी और विद्वान समीक्षक किसे माना जाय? इसके लिए लोक साहित्य अकादमी और साहित्यिक संस्थान बनाये जा सकते हैं। जो संरक्षण व संवर्धन का कार्य सही ढंग से संपादित करें। समाज की इस अमूल्य कलानिधि को और इसके सांगीतिक स्वरूप को स्वरलिपि के माध्यम टेपरिकार्डर एवं आधुनिक यंत्रों द्वारा सुरक्षित किया जा सकता है। टेपरिकार्डर पर लोकगीतों के संरक्षण के लिए यह आवश्यक है कि उसकी स्वरलिपि लिखने से पूर्व लोकगीतों के सांगीतिक एवं काव्यात्मक नियमों एवं अनुशासन को भली प्रकार समझ लेना चाहिए। गीतों के पाठ की शुद्धता पर ध्यान दिये बिना स्वर व लय का सही स्केल और वजन कभी नहीं मिलता। परंपरागत मिले हुए लोकगीतों की शैली और स्वर रचना हम भूलते जा रहे हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत को अमर रखने के लिए प्रयत्न हुए हैं उसी प्रकार लोकसंगीत की यह जीवनी शक्ति जो भारत के गाँवों में बसी है, देहातों में बसी है, को अपने हृदय में भरना होगा। ढोल, नगाड़ा, डफ, डफड़ा आदि की रसविभोर कर आनंद में डुबो देने वाली लयबद्ध जीवंत शैली के बिना हमारा देहात निष्प्राण ही लगेगा और गाँवों की यह स्थिति हमारे देश की अचेतन अवस्था ही सिद्ध करेगी। रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है ‘आटा पीसने वाली चक्की गाँव के गीतों को भी पीसती जा रही है।’

हमारे यहाँ प्राचीनकाल में लोग समूह मंत्रोच्चार और मंदिरों में समूह ध्रुपद गान करते थे जो सामाजिक एकता का सूचक रहा है। जिस देश का समूह गीत विशेष लयबद्ध है उसका सामाजिक जीवन व्यवस्थित है ऐसा देखा गया है। लोकगीतों के संकलन में तीव्रगति दृष्टिगोचर होती है जिससे सामाजिक ज्ञान की अभिवृद्धि हुई है, परन्तु आधुनिक जीवन में उसकी उपयोगिता का आभास नहीं मिल पाया। यह ध्रुव सत्य है कि लोकगीतों की उपयोगिता उन्हें पुनः

गा सकने में अथवा उसकी अंतरात्मा को समझने में निहित है। गेय स्वरूप का संरक्षण ही वास्तव में लोकगीतों का सही और सच्चा संरक्षण है। लेकिन मात्र संकलित करके उसे सुरक्षित रख लेने से काम नहीं चलेगा। छोटे-छोटे अंचलों को सांस्कृतिक दृष्टि से देश को काट देना ठीक नहीं है। भावनात्मक एकता के लिए सांस्कृतिक दृष्टि से जन-जन में एक तालमेल स्थापित होना चाहिए। समसामयिक परिवर्तनों के बावजूद भिन्न-भिन्न अंचलों की नयी पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति आस्थावान बनाना आवश्यक है। आज हमारा शहरी जीवन अस्त व्यस्त हो गया है, क्योंकि हम जीवन में गाना और लय की जागृति खो बैठे हैं। ‘लोकगीतों का हास जीवन के उस नवनीत की समाप्ति ही समझनी चाहिए जिससे मन रसानुभव के योग्य और उसके लिए तंत्रित बना रहता है। घर-घर होने वाले संस्कारों की समष्टि का नाम ही पारिवारिक संस्कृति है और निश्चय ही लोकगीत वे छंद हैं जिनके द्वारा हम अपने इन संस्कारों में आनंद उड़ेलते रहे हैं। आज इन छंद पात्रों को सुरक्षित रखने और भरते रहने की आवश्यकता है।’¹⁰

इक्कीसवीं शताब्दी का यह चरम भौतिकवादी युग सभ्यता के विकास के चरण में जिस सोपान तक पहुँचता है वहाँ कभी-कभी यह वैज्ञानिक प्रगति एक भंयकर विस्फोट के साथ प्रस्तर युग में लौट जाने को कृत संकल्प दिखलाई पड़ती है हमने अपनी दैनन्दिनी को यंत्रवत बना लिया है। बढ़ती हुई स्वार्थपरता के कारण हृदय में कहीं गहरी दफन हो चुकी पाशविक प्रवृत्ति पुनः उभरने लगी है। संरक्षण का एक ही तरीका है कि शहरों और देहातों में सभ्य समाज के लोग इसे अपनायें और पुनः प्रतिष्ठित करें। सामूहिक जीवन पद्धति की इतनी सुंदर और स्वस्थ परम्परा यदि विलीन हो गई तो हम कहीं के नहीं रहेंगे। अतः लोकगीत के गायकों को यह भान कराया जाये कि उसके पास जो कला है वह किसी के पास नहीं है।

श्यामाचरण दुबे ने लिखा है ‘लोक कलाओं के भविष्य के संबंध में हमें चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। जातीय भावना का विकास नयी सांस्कृतिक चेतना का उदय भविष्य के समाज की उभरती परिकल्पनाएँ और सांस्कृतिक नीति के पक्ष में आश्वस्त करते हैं कि लोक संस्कृतियाँ अस्तित्व के संकट का सामना नहीं कर रही, संभावना यही है कि वे पुष्पित, पल्लवित और पुष्ट होंगी। लोक संस्कृतियों के संस्कृति की मुख्य धारा में विलयन संबंधी दुराग्रह हमें छोड़ने होंगे। लोक जगत में उन्हें दूसरी श्रेणी की नागरिकता देना न केवल लोककलाओं के लिए वरन् सामान्य रूप से सभी कलाओं के

लिए विघातक सिद्ध होगा। हमें ऐसा दृष्टिकोण अपनाना है जो सभी कलाओं के विकास और उत्कर्ष का मार्ग भी अवरूद्ध न करे, उन्हें अपनी दिशा खोजने का मौका दे और अपनी गति से आगे बढ़ने दे। गाँव की धरती छोड़कर जब वे महानगरों के मंच पर जायेंगी तब उनका रूप तो बदलेगा ही सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी उन्हें प्रभावित करेगा।¹¹

बदलते परिवेश में लोकगीतों के सर्जनात्मक विस्तार में नयी सामाजिकता की झलक स्वीकार करनी होगी। लोकगीतों को यदि जीवित रखना है तो इसमें निरन्तर सृजन को स्वीकृति देनी होगी। नये सृजन और नये प्रयोगों को स्वीकृति नहीं दी गई तो लोकगीत

आखिर कब तक अनगढ़ रहेंगे? लेकिन प्रयोग ऐसे हों जिससे उसकी मौलिक विशिष्टता सुरक्षित रहे और वह कंठ दर कंठ गूँजते हुए लोकमानस के गले का हार बने। आज पुनः लोकगीतों को खोजकर संरक्षण देने की आवश्यकता है जिससे हम आपस में जुड़ सकें और हमारे मन में मानवीयता बनी रहे। आर. विलियम के इस विचार के साथ हम लोकगीतों पर बार-बार विचार करेंगे, 'लोक गीत न पुराना होता है न नया। वह जंगल के एक विशाल वृक्ष की भाँति है जिसकी जड़ें सुदूर अतीत की गहराई में दृढ़ हैं किंतु जिसमें निरन्तर नयी शाखाएँ प्रशाखाएँ, पत्तियाँ और नये फल विकसित होते रहते हैं।'¹²

संदर्भ :

1. देवेन्द्र सत्यार्थी : आजकल: 7 नवम्बर 1951 का संपादकीय
2. रामनरेश त्रिपाठी : ग्राम साहित्य-अक्टूबर 1952
3. रामचन्द्र शुक्ल : चिंतामणि-भाग2
4. बालकृष्ण भट्ट : हिन्दी प्रदीप-अक्टूबर 1986 पृष्ठ 15
5. डॉ. शकुन्तला वर्मा : छत्तीसगढ़ी लोकजीवन और लोकसाहित्य का अध्ययन - पृष्ठ 85
6. मैनेजर पाण्डेय : शब्द और कर्म - पृष्ठ 11
7. देवीलाल पामर : राजस्थान में संगीत शिक्षा-पेज 51 संपादक -कोमल कोठारी
8. दयाशंकर शुक्ल : छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का अध्ययन-पृष्ठ-123
9. वेरियर एल्विन : ग्राम साहित्य-अक्टूबर 1952 पृष्ठ 11
10. वासुदेवशरण अग्रवाल : बुन्देलखंडी लोकगीतः लेखक - शिवसहाय चतुर्वेदी की भूमिका
11. श्यामाचरण दुबे : चौमासा - अंक 6 नवम्बर-फरवरी 85
12. आर. विलियम : इन्साइकलोपीडिया ब्रिटैनिका व्होलुम ix पेज 445

माता सेवा गीत

निरंजन महावर

छत्तीसगढ़ में शीतला शमन हेतु गाये जाने वाले गीतों को माता सेवागीतों के नाम से जाना जाता है। शीतला चेचक, खसरा, मोतीझरा जैसी वायरस से फैलने वाली बीमारियों की देवी मानी जाती है। सम्पूर्ण उत्तर भारत में शीतला की मान्यता इसी प्रकार की महामारियों की देवी या माता के रूप में की जाती है। शीतला के प्रकोप से होने वाली बीमारियों को इसीलिए माता कहा जाता है। शीतला की भाँति ही एक और देवी है जिसका सम्बन्ध हैजा और पेचिश जैसी व्याधियों से है। इन व्याधियों की देवी का नाम मरही माता है। चूँकि हैजा फैलने पर लोगों की बड़ी संख्या में मृत्यु होना अवश्यभावी है, इसीलिए संभवतः इस व्याधि की देवी का नाम मरही माता पड़ा होगा।

शीतला माता का प्रकोप होने पर उसका वायरस इतनी तीव्रगति से फैलता था कि वह कुछ ही समय में पहले संपूर्ण परिवार को, फिर गाँव को, फिर क्षेत्र को और फिर संपूर्ण देश को अपने प्रभाव में ले लेता था। प्राचीनकाल में इस बीमारी का कोई इलाज नहीं था इसलिए लोग इसे शीतला माता का प्रकोप मानते थे। लाखों लोगों की मृत्यु हो जाती थी। आदिवासी विशेषरूप से गोंड जनजाति चेचक को बूढ़ी माता का प्रकोप मानते हैं यद्यपि बूढ़ी माता और शीतला माता उनके देवलोक में दो पृथक देवियाँ हैं।

चेचक की व्याधि पर उसके टीके के आविष्कार के बाद ही काबू पाया जा सका है, और अब तो वह सम्पूर्ण विश्व से टीकाकरण के फल स्वरूप पूर्णतः समाप्त हो चुकी है, परन्तु लोक-मानस पर उसका भय अब भी छाया हुआ है। लोकजीवन में शीतला के शमन से सम्बन्धित सभी नियम और रीति-रिवाज अब भी पूर्व की भाँति ही विद्यमान हैं। उत्तर भारत में विशेषरूप से राजस्थान हरियाणा, और पश्चिमी उत्तरप्रदेश में शीतला माता के शमन हेतु लोग वर्ष में दो दिन चूल्हे नहीं जलाते और बासा भोजन करते हैं। जिसे बासोड़ा त्यौहार कहते हैं।

छत्तीसगढ़ में चेचक और खसरा के फैलने पर व्याधिग्रस्त बच्चों को बन्द कमरों में रखा जाता है और बाहर आँगन में बैठकर स्त्रियाँ माता की सेवा में गीत गाती हैं। इन गीतों को माता सेवा गीत कहते हैं। प्रत्येक गाँव में शीतला के मंदिर या स्थान चबूतरे बने

हुए हैं। इन स्थानों पर भजन मंडलियाँ बैठकर माता सेवा गीत गाती हैं। यद्यपि टीकाकरण अभियान के कारण चेचक की बीमारी समाप्त हो चुकी है परन्तु शीतला की पूजा सेवा अभी भी जारी है। शीतला माता को जो हिंगलाज माता के नाम से सम्बोधित करते हैं लोगों का विश्वास है कि हिंगलाज ही शीतला माता का स्थान है।¹

माता सेवा में गाये जाने वाले गीतों को स्त्रियाँ एवं पुरूष दोनों ही गाते हैं। परिवार में चेचक का प्रकोप होने पर लोग भजन गायकों की मंडलियों को भी आमन्त्रित करते हैं जो ढोल मंजीरों के साथ देर रात्रि तक माता सेवागीत गाते हैं। लोक विश्वास है कि माता की बीमारी उपचार से नहीं वरन् माता सेवा से अच्छी होती है। चेचक उन्मूलन के बावजूद ग्रीष्म ऋतु के आरंभ में होती है शीतला के मंदिरों व स्थानों पर माता-सेवा गीत गाना एक प्रथा बन चुकी है। यहाँ कुछ माता सेवा गीत प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो लोकमानस को समझने में सहायक हो सकते हैं।

1

सारदा माय सरस्वती भवानी
ला बन्दौ कर जोर हो माय।
भूले अक्षर देवी कह समझावे
कण्ठे बैठ मुख बोल हो माय।
कहा तो माता तोर जति जनमन
कहाँ लिये अवतार हो माय।
रइया रतनपुर तो जति जनमन
ओ हिंगुलाज मा लिये अवतार हो माय।
कहाहे के छुरिया मा नेरूआ छिनाय,
काहे खपर असनादे हो माय।
सोने के छुरिया मा नेरूआ छिनाय
समय तो खपर असनाये हो माय।
कामा पोताय तोर रइया रतनपुर
कामा पोताय हिंगुलाज हो माय।
चन्दर पोताय तोर रइया रतनपुर
वन्दन पोताय हिंगुलाज हो माय
के वरन दिखय तोर रइया रतनपुर
के बरन दिखय हिंगुलाज हो माय
सेते बरन तोर रइया रतनपुर
लाले बरन हिंगुलाज हो माय॥²

2

पहली बरस मैया भभूत रमाय,
दूसर बरस मैया अंग भहराय।

तीसर बरस मैया दरस तुम्हारा,
चौथे बरस माय के चरन पखार।
पंचहे बरस मैया आप स्वरूप,
छठहे बरस मैया चत्रभुजी रूप।
सतवें बरस मैया सतरंज खेल,
अठवें बरस मैया सिंह चढैल।
नवें बरस मैया डंडा फंदाय।
दसवें बरस मैया फिरें हिंगुलाज॥3

उपरोक्त दोनों ही गीतों में हिंगुलाजगढ़ का उल्लेख हुआ है। प्रथम गीत में रतनपुर के साथ हिंगुलाजगढ़ का उल्लेख किया गया है। रतनपुर को शीतला माता का जन्म स्थान बताया गया है और हिंगुलाज को उनका अवतार ग्रहण करने का स्थान। रतनपुर कल्चुरी राजवंश की राजधानी रहा है। जहाँ से इस राजवंश ने प्राचीन छत्तीसगढ़ पर राज्य किया है। वहाँ की महाभारत देवी कल्चुरी राजवंश की अधिष्ठात्री देवी हैं। संभवतः इसी तथ्य को ध्यान में रखकर लोक कलारों ने शीतला का जन्म स्थान रतनपुर को मान लिया है। यह देवी देवताओं के प्रति लोक विश्वास का एक लक्षण है।

लोक कवि जिसने भी पहले पहल इस प्रथम गीत की रचना की होगी उसने शीतला माता की स्तुति के आरंभ में माँ शारदा सरस्वती, भवानी की वन्दना से प्रार्थना आरंभ की है। रतनपुर को चंदन से पुता हुआ बताया गया है और हिंगुलाज को वन्दना से रतनपुर को श्वेतवर्ण का बताया गया है तथा हिंगुलाज को लाल वर्ण का। इसका तात्पर्य यह है कि रतनपुर में श्वेत पूजा होती है अर्थात् बलि की प्रथा नहीं है और हिंगुलाज में रक्तपूजा होती है अर्थात् वहाँ बलि की प्रथा प्रचलित है।

दूसरे गीत में शीतला माता के विकास का वर्णन किया गया है- प्रथम वर्ष में वे भभूत लगाये विचरण करती हैं, दूसरे वर्ष में उनके अंगों का भराव होता है, तीसरे वर्ष में उनके दर्शन होते हैं, चौथे वर्ष में माँ के चरणों को पखारा जाता है, और पाँचवें वर्ष उनका स्वरूप प्रकट होता है। छठवें वर्ष में उनका चतुर्भुजी रूप प्रकट होता है, सातवें वर्ष में शतरंज खेलने लगती हैं और आठवें वर्ष वे सिंह की सवारी करती हैं। नवें वर्ष वे गाड़ी में बैठकर दसवें वर्ष हिंगुलाज पहुँच जाती हैं।

3

मैया पचरंग पचरंग सजे है सिंगार हो माय
 सेत सेत तो कलनी बनुरिया
 सेनेपटा तुँहरे हो माय
 सेत हौं तोर गर के सुतिया
 गज मुंगन के हारे हो माय
 लाली लाल लहर के लहंगा
 एड़ी महाउर लाले हो माय
 खात पान मुख लाल भवानी
 मूँड के सेन्दुर लाले हो माय
 काली कोर लगे चालिया माँ
 काली काजर के रेखे हो माय
 कारी है तोर भँवर पालकी
 कारी मूँड के केसेहो माय
 पीयर पीताम्बर पहिरे बूढ़ी माय
 पीयर कान के ढारे हो माय
 चम्पा फूल के गजरा चमेली फूल के हार
 मोगरा फूल के माथ मटुकिया सोलहौं सिंगार
 कौन माय बर गजरा चमेली फूल के हार
 कौन माय बर माथ मटुकिया सौलहौं सिंगार।
 भइया फूल गजरा
 गुंथव हो मालिन के देहरी।

भावार्थ:-

मैया पचरंग पचरंग तुम्हारा श्रृंगार हुआ है, श्वेत रंग की तुम्हारे कंगन और बंगड़ी हैं। श्वेत रंग का ही पट्टा है श्वेत ही तुम्हारे गले का सूता (हँसली) है गज मूँगो से बना हुआ तुम्हारे हार है। लाल रंग का तुम्हारा लहंगा है। एड़ियों पर लाल रंग का ही महावर लगा है। पान खाने से भवानी आपका मुख भी लाल हो रहा है। माथे का सिंदूर भी लाल वर्ण का ही है। तुम्हारी चोली की किनार काले रंगी की है। तुम्हारी आँखों में भी काला काजल लगा है। काली तुम्हारी भँवर पालकी है। काले ही तुम्हारे सिर के केश हैं। बूढ़ी माँ आपने पीला पीताम्बर धारण किया हुआ है। पीले ही रंग के तुम्हारे कान के आभूषण हैं। चम्पा फूलों का तुम्हारा गजरा बना हुआ है। चमेली फूलों का हार। मोगरा फूलों से तुम्हारे माथे का मुकुट बना है। इस भाँति तुम्हारे सोलह अंगों का श्रृंगार किस माँ के लिए चमेली के फूलों का हार और किस माँ के लिए माथे का

मुकुट और सोलह श्रृंगार कोदइया माई के लिए गजरा धनइया माई के लिए हार बूढ़ी माई के लिए माथे का मुकुट, सोलहौं श्रृंगार। मइया मालिन की देहलीपर बैठकर गजरा गूँथो।

4

आवो महामाया हमार किरतन में
 हम बालक गुण गावौं हो माय।
 पूत कपूत सदा जगहावहिं
 मात कुमात न होय हो माय।
 जग जननी ममता मई माता
 जन वतसल सुखदाय हो माय।
 सकल जगत के हम ठुकराये,
 जावहिं कवन दुआर हो माय।
 तुम सम कौन कहौं से नाता,
 काके शरन सिर नावौं हो माय।
 सब विधि हीन शरन तकि आयों,
 राखहु शरन के छाँव हो माय।
 मम अपराध छमा कर माता
 दिये सुभग वरदान हो माय।
 चरन शरन तजि अनत न जाँऊ।
 बरूआ के कल्याण हो माय।

भावार्थ:-

हे महामाया! हमारे कीर्तन में आओ, हम बालक आपका गुणगान कर रहे हैं। पूत व कपूत सदा ही इस जगत में हुए हैं, परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती माता तो जगत्जननी ममतामई वत्सला और सुख प्रदान करने वाली है। हमें संपूर्ण जगत ने ठुकरा दिया अब हम किसके द्वार पर जायें। तुम जैसा कौन है जिससे मेरा नाता हो किसको नतमस्तक होऊँ। सब प्रकार से हीन आपकी शरण में आया हूँ अपनी शरण छाया में रखना। मेरे अपराध क्षमा करना माता और शुभ आशीर्वाद देना। आपके चरणों की शरण छोड़कर अन्य कहीं नहीं जाऊँगा। बालक का कल्याण करो माँ।

5

सुमरि सुमरि के जननी तोर जस गीत गावों
 भजौं मैं केवल तोर नाम हो माय
 जब दुःख वाले आदि भवानी
 सुनले है मोर बात हो माय।

भावार्थ:-

माँ मैं तुम्हारा ही स्मरण करके तुम्हारा ही यशोगान करता हूँ केवल तुम्हारा ही नाम जपता हूँ। अब हे आदि भवानी! मेरा दुःख हर लो! हे माँ! मेरी प्रार्थना सुनलो।

6

कै ओरी बोए भइया एली चमेली।
अऊ कै मोगरा के झाड़ हो माय।
दस ओरी बोए भइया एली चमेली।
बीस ओरी मोगरा के झाड़ हो माय।
लाल लाल फूल भइया एली चमेली।
सफेद रंग मोगरा के फूल हो माय।

भावार्थ:-

कितनी कतार भईया तुमने चमेली फूल और कितनी कतार मोगरा के पौधे लगाये हैं। दस कतार भईया चमेली लगाई है और बीस कतारों में मोगरा लगाया है चमेली के फूल लाल-लाल रंग के हैं सफेद फूल मोगरे के हैं।

देवी के गीतों में विविध श्रृंगार सामग्री का व अनेक प्रकार के फूलों का वर्णन मिलता है। छत्तीसगढ़ में धारण किये जाने वाले आभूषणों का व यहाँ वे विशिष्ट पुष्पों का वर्णन इन गीतों में प्रचुर संख्या में दिखाई पड़ता है।

7

जय श्री शीतला सुनतेव तुम्हरे आगमन हो माय
आपन अजिर लिपाय सुगंधित गूंगरं कपूर जरातें
जाय इन्द्रघर कलावृक्षऔ देवतन नेवत बुलातेव।
द्वारिन द्वारिन तनतेव चान्दनी चिन्तामणि चौक पुरातेव।
लाके सुभ पधराय मातु को जय जय शब्द बुलातेव।
श्रीफल भेंट औ गज मुक्ता मणियन माल पहिरातेव
चन्द्रहार उपभेंट देईके आपन घर लेआतेव।
चन्दन पिढुलिया बैठक देके आपन दुख सुनातेव
आदर सहित जेवाय मातु को सुन्दर पान रचातेव
दोउ पद पद्म माथ माँ धरके निज घर चलके आतेव
धन्य भाग्य ओंकार दत्त के प्रतिदिन यह जश गातेव॥⁴

भावार्थ:-

जय श्री शीतला माता आपके आगमन की बात मैंने सुनी है।

मैंने अपना घर लिपाया है और आपके स्वागत में सुगंधित और कपूर जलाया है। मैंने इन्द्रध्वज लेकर सभी देवी देवताओं को आमन्त्रित किया है। द्वार-द्वार पर चाँदनी तानता और चिन्तामणि चौक पुराता। माता को शुभकामना से लाकर उनकी जय-जयकार करता। उन्हें गजमुक्ता की माला पहनाकर नारियल भेंट करता। चन्द्रहार की भेंट देकर अपने घर ले आता। उन्हें चन्दन के पीढ़े पर बैठाकर अपना दुःख सुनाता। आदरपूर्वक उन्हें भोजन कराकर सुन्दर पान खिलाता। दो कमल के फूल उनके मस्तक पर चढ़ाकर अपने घर चलकर आता। ओंकारदत्त का यह धन्य भाग्य है कि मैं प्रतिदिन माँ के यश को गाता।

यह गीत किसी ओंकारदत्त नामक व्यक्ति द्वारा रचित है। मुझे यह गीत कहीं भी सुनने को नहीं मिला। संभवतः स्व. प्यारेलाल गुप्त ने इसे बिलासपुर या उसके आसपास कहीं सुना हो, या स्वयं रचयिता से सुना हो।

8

कइसे दरसन होए हो मैया संकरी दुअरिया।
संकरी दुअरिया हो मैया झझरियाँ किवड़िया॥
मैया दुआरे हरियर पीपर लाली ध्वजा फहराई
मैया दुआरे कोढ़िया पुकारे देवकाया घर जाई॥
मैया दुआरे आंधर पुकारे देवनयन घरजाई
मैया दुआरे बाँझ पुकारे देव बालक घर जाई॥
मैया दुआरे निर्धन पुकारे देव माया घर जाई
मैया दुआरे लंगड़ा पुकारे देवगोंड घर जाई॥
आंधर ला नयन दीन्हे निर्धन ला माया
बाँझन पुत्र खिलाये हो मैया संकरी दुअरिया॥

भावार्थ:-

कैसे आपके दर्शन हो माँ आपके (मंदिर) का द्वार सकरा है। संकरे द्वार पर माँ जर्जर किवाड़ लगे हैं। माँ आपके द्वार पर पीपल का वृक्ष है जिस पर लाल रंग की ध्वजा फहरा रही है। माँ आपके द्वार पर कोढ़ी जन पुकार रहे हैं कि उन्हें आप स्वस्थ काया प्रदान करें। माँ आपके द्वार पर बाँझ स्त्री पुकार रही है कि आप उन्हें देव बालक प्रदान करें। माँ आपके द्वार पर अंधेजन पुकार कर रहे हैं कि आप उन्हें दिव्य ज्योति प्रदान करें। माँ आपके द्वार पर निर्धनजन याचना कर रहे हैं कि आप उन्हें दिव्य माया (धन) प्रदान करें। माँ आपके द्वार पर लंगड़े लोग याचना कर रहे हैं कि आप उन्हें देव कृपा से स्वस्थ पैर प्रदान करें। आपने अंधों को दृष्टि प्रदान की और

निर्धनों को धन तथा बाँझों को पुत्र दिये आप तक पहुँचने का मार्ग यदि सकरा भी है तो क्या हुआ।

9

माता सेवा में चलें आहू हो
काहेन को तोर दंड कमंडल, काहेन के मिरिग छाला
काहेन के तोर बेनु बाँसुरी, काहेन के जय माला।
चंदन काठ के दंड कमंडल, मिरगा के मिरिग छाला
हरियर बाँस के बेनु बाँसुरी, तुलसी की जयमाला॥
कौन धरे तोर दंड कमंडल कौन धरे मिरिग छाला।
कौन धरे तो बेनु बाँसुरी कौन धरे जयमाला।
ब्रह्मा धरे तोर दंड कमंडल साधु धरे मृग छाला।
कृष्ण बजावे बेनु बाँसुरी राधा धरे जयमाला।

भावार्थ:-

माता सेवा में चले आना। किस वस्तु से तुम्हारा दंडकमंडल बना है काहे की मृग छाला। काहे की तुम्हारी बाँसुरी है, काहे की जयमाला। चंदन काष्ठ के दंड कमंडल बने हैं, मृग की मृग छाला। हरे बाँस की बेनु बाँसुरी बनी है, तुलसी की जयमाला। किसने तुम्हारा दंड कमंडल धारण किया है, किसने तुम्हारी मृग छाला धारण की है। किसने तुम्हारी बेनुबाँसुरी अपने पास रखी है किसने तुम्हारी जयमाला धारण की है। ब्रह्मा ने तुम्हारा दंड-कमंडल धारण किया। साधुओं ने मृग छाला धारण की है। कृष्ण तुम्हारी बेनु बाँसुरी बजाते हैं और राधा ने तुम्हारी जयमाला धारण की है।

10

गूँथो हो मालिन के देवरी फूल गजरा
काहेन फूल के गजरा काहेन फूल के हार
काहेन फूल ने माथ मुकुटिया सोलह हो सिंगार
चम्पा फूल के गजरा चमेली फूल के हार
मोगरा फूल के माथ मुकुटिया सोलह सिंगार
कोन गूँथे फूलके गजरा कौन गूँथे हार
कोन गूँथे माथ मुकुटिया कौन सोलह सिंगार
बूढ़ी माँ गूँथे फूल के गजरा धनैया गूथय हार
सेंदरी गूँथे माथ मुकुटिया सोलह हो सिंगार
कौन भैया झूले हो कौन भैया झुलावय
कौन भैया देखन बर आवय सोलह सिंगार
बड़े भैया झूले वो धनैया भैया झुलावै
लंगुरे देखन बर आवै सोलह सिंगार।

भावार्थ:-

मालन ने देवी का गजरा फूलों से बनाया है। किन फूलों से गजरा बना है, किन फूलों से हार। किन फूलों से माथे का मुकुट बना है, किन फूलों से माँ के सोलह श्रृंगार किये गये हैं।

चंपा के फूलों से गजरा और चमेली के फूलों से हार बना है मोगरा फूल से माथे का मुकुट बना है। उन्हीं से सोलह श्रृंगार किये। किसने फूल का गजरा गूँथा है और किसने फूलों का हार किसने माथे का मुकुट गूँथा है किसने सोलह श्रृंगार किये हैं

सेंदरी ने माथे का मुकुट गूँथा है और सोलह श्रृंगार किये हैं। कौन भइया झूल रहा है और कौन माँ को झुला रहा है। बड़े भैया झूल रहे हैं और धनैया झुला रहे हैं। लंगूर इस शोभामय श्रृंगार को देखने हेतु आ रहे हैं।

सेंदरी भी छोटी माता का रूप है जिसे 'मीजिल्स' कहते हैं और धनैया भी जिसे 'चिकन पाक्स' कहते हैं। लंगूर शीतला देवी का वाहन है जो उनके ध्वज पर विराजमान है।

11

कहाँ चलत कहाँ चली हो कंकाली माय
कहाँ चलत कहाँ चलिन हो माय।
असी कोस के तीर फुलवारिया
सींचत हे जमुन जल भर हो माय।
कुकरा के बासत चलिन गलिन मा
भंवर चले अधिरात हो माय।
फुलवा लाटोर टोर धरे चंगुरिया
ऊपर पीताम्बर ओलवारे हो माय।

भावार्थ:-

कहाँ चली जा रही हो ओ कंकाली माता। कहाँ चलती चली जा रही हो माता। अस्सी कोस चलने पर फुलवारी मिलेगी। जिसे जमुना अपने जल से सींच रही है। मुर्गे के बाँग देने के साथ ही गली में निकल पड़ी। नदी में आधी रात के समय भंवर पड़ रही है। फूलों को तोड़ तोड़कर टोकरी में रख रही हैं। तन के ऊपर पीताम्बर ओढ़ रखा है।

12

जय श्री आदि भवानी शरण शरण जग तारणी माय
जग जननी जग पालनी देवी दुख हरनी श्रुतिकारी

पीत बसन तड़ितावली शोभा चन्द्रकला छवि भारी॥

जय श्री॥

चंडी चंड मुण्ड विध्वंसिनी मधु कैटम मद हरनी
महिषासुर संहार कारिणी रक्त बीज दल दलनी ॥जय श्री॥
अरूण वरन पद पंकज देवी कृपा सिन्धु अति बाले
सेवा तुम्हारी निसदिन गावौ बालक होहु कृपाले ॥जय श्री॥

भावार्थ:-

जय श्री आदि भवानी जग तारणी माँ मैं तुम्हारी शरण में हूँ। जग जननि जग का पालन करने वाली दुःख हरनी भक्तों की पुकार सुनने वाली पीले वस्त्र धारण करने वाली। विद्युत सी शोभा वाली चन्द्रकाला सी सुन्दर छवि वाली। महिषासुर का संहार करने वाली, रक्त बीज राक्षस का दमन करने वाली, महिषासुर का संहार करने वाली, मधु कैटम का मद चूर करने वाली, अरूण के वर्ण वाली, आपके पद कमल पुष्पों जैसे हैं, आप कृपा की सिन्धु हैं। आपकी सेवा हम दिन रात गायें हम बालकों पर कृपा करें।

शीतला माता को सप्त मातृकाया या छत्तीसगढ़ में सतबहनी माता कहा जाता है।

13

मोरे माता आये दुलरू लेवन बर
का तोर चढ़े सातों बहनियाँ, का तोर चढ़े बराइन
का तोर चढ़े कुंवर महामाई दुलरू लेवन बर॥
डंडिया में चढ़गे सातो बहनियाँ डोलवा चढ़गे बराइन
भंवर पालकी में कुंवर महामाई दुलरू लेवन बर।
का तोर पहिरे सातों बहनियाँ, का तोर पहिने बराइन
का तोर पहिरे कुंवर महामाई दुलरू लेवन बर।
सेत रंग पहिरे सातों बहनियाँ पिवरा पहने बराइन
भंवर पालकी माँ कुंवर महामाई दुलरू लेवन बर॥

भावार्थ:-

मेरी माता आयी हैं। अपने दुलारे को लेने हेतु। तुम्हें लेने हेतु सतबहनियाँ (सप्त मातृकाएँ) आयी हैं। या तुम्हें लेने बराइन आ सकती है।

या तुम्हें लेने हेतु कुंवर महामाई अपने दुलारे को लेने के लिए स्तंभ पर चढ़ी हुई हैं सप्त मातृकाएँ और डोले पर बराइन भंवर पालकी में बैठी हैं। महामाई दुलरू बेटे को ले जाने हेतु। तुम्हारी सत बहनियों ने कौन से वस्त्र धारण कर रखे हैं, कौन से

वस्त्र तुम्हारी बराइन ने पहन रखे हैं, तुम्हारी कुंवर महामाई ने कौन से वस्त्र धारण किये हैं। जो अपने दुलारे को लेने आयी हैं। सप्त मातृकाओं ने श्वेत वस्त्र धारण कर रखे हैं। बराइन ने पीताम्बर धारण किया है। भंवर पालकी में कुमारी महामाई बैठकर अपने दुलारे को लेने आयी हैं।

14

सिरी माता सीतला, सीतला रूप बिराजे माय
शीतल रूप दरस दियो माता शीतल नयन निहारे।
मंगल भवन मंगला माता जन मन मंगल कारी
दुर्गा दुर्ग बिनासन माता भगतन के भय हारी।
काल रूप काली कंकाली दुष्टन के क्षय कारी
रखा राधिका स्यामा गोरी कीरती अचल तुम्हारी।
अन्नपूर्णा जय जगमाता भरो भुवन भंडारे
देव दनुज बर किनिर कहिये सब है शरण तिहारे।
विन्ध्यवासिनी सब दुःख नासिन शारदा सदा सिहाई
अतुल परताप तुम्हारे माता महिमा वेदन गाई
आदि शक्ति जग तारण है तुम त्रिभुवन शक्ति गहाये
सिरी गौरी गायत्री है तुम तीन कला दरसाये।
जय महामाई जय समलाई कलकत्ता की काली
नरसिंधी बाराही माता तुम संतन प्रतिपाली
प्रति घर पूजा होय तुम्हारी जयजयजय बूढ़ी माई।
हम बालक नादान तुम्हारे महिमा वरनिन जाई।

भावार्थ:-

श्री शीतला माता आपका शीतल रूप विराजमान है। शीतल रूप में ही आपने दर्शन दिया शीतल नयनों से निहारा। मंगल भवन मंगला (शुभकारी) माता जन मन का मंगल करने वाली दुर्गा दुर्ग का विनाश करने वाली, भगतों का भय दूर करने वाली काल रूप काली कंकालिन दुष्टों का विनाश करने वाली, राधिका, श्यामा, गौरी तुम्हारे ही नाम हैं, तुम्हारी कीर्ति अचल है। तुम ही अन्नपूर्णा हो। जगत माता हो। भुवन का भंडार भरो। देव दनुज या नर सभी तुम्हारी शरण में हैं। विन्ध्यवासिनी सभी दुखों का नाश करने वाली शारदा माँ आप सदा सहाय रहो। तुम्हारा अतुल प्रताप है। माता तुम्हारी महिमा वेदों ने गायी है। तुम आदि शक्ति हो जगत की तारणहार हो। तुम त्रिभुवन में सर्वशक्तिमान हो। तुम श्री गौरी हो गायत्री हो और तुमने तीनों कलाओं को प्रकट किया है। जय महामाई जय समलाई जय कलकत्ते की काली माई नरसिंधी, बाराही

माता तुम सन्तों का पालन करने वाली हो। हे बूढ़ी माँ घर-घर में तुम्हारी पूजा हो। हम नादान बालकों से तुम्हारा वर्णन असंभव है।

15

मन मोर हुलसै कंवल दल बिहंसै आज
भवानी घर आये हो माय।
सात सुवासित पाँच बजनियाँ माताजी ला
लायें व परधाय हो माय।
सुरहिन गइया के गोबर मँगायेंव
खूँट घरि अंगना लिपवायेंव
गज मोतिन के चौक पुरवायेंव
सोने के कलश धरायेंव।
चंदन वाजवठ बैठक दीन्हेंव
काचा दूध चरण परखायेंव
चरण पखार चरणामृत ले हों
दण्ड शरण परों पाँव हो माय
पान सुपारी ध्वजा नारियल धरिहों भेंट तुम्हारे
तुम मोरे बैठो आदि भवानी मैं जस गाव तुम्हारे।

भावार्थ:-

आज मेरा मन उल्लासित है। जैसे कमल दल हँस रहे हैं। हे भवानी! आज आप मेरे घर पधारी हैं। सात सुवासिन (सौभाग्यवती) पाँच बजनियाँ गाने बजाने वाली माताजी के लिए लायें हैं। उन्हें पधराने के लिए। सुरहिन गाय (कामधेनु) का गोबर मँगावाया है। उससे चारों कोनों से संपूर्ण घर को लिपवाया है। गज मोतियों से गोबर लिपवाया है, सोने का कलश स्थापित किया है, चंदन की चौकी का आसन उन्हें प्रदान किया है, कच्चे दूध से उनके चरण पखारे हैं और चरणामृत ग्रहण किया है। उन्हें दण्डाशरण (साष्टांग) प्रणाम किया है। पान, सुपारी, ध्वजा, नारियल सभी उन्हें भेंट किया है। आप हमारे घर में आसन ग्रहण करो और मैं तुम्हारा यशगान गाऊँ।

16

मोरे माता शीतला बन्दौं चरण करजोर हो माय।
शीतला रूप शीतला माता शीतल चन्दन दीन्हें
मम अपराध क्षमा कर माता दाहिन बल आ दीन्हें॥
काली रूप भयंकर भारी दुष्टन के क्षयकारी
बरूआ बालक कछु नहीं जानय तापर ही हितकारी।
चण्डीरूप प्रचंड जगत में जाहिर कला तुम्हारी

बरूआ बालक तुम्हार सरण में लज्जा रखो हमारी।
मोरे माता शीतला बन्दौं चरण करजोर हो माय।

भावार्थ:-

मेरी माता शीतला मैं तुम्हारी वंदना हाथ जोड़कर करूँ। शीतला माता आपने शीतल चंदन प्रदान किया है। माँ मेरा अपराध क्षमा करें मुझे दाहिन बल प्रदान करें। आपका काली रूप जगत में प्रचण्ड है एवं उसकी ख्याति है। मैं जनेऊ धारी बालक तुम्हारी शरण में हूँ। मेरी लाज रखे मेरी शीतला माता। मैं हाथ जोड़कर तुम्हारे चरणों की वंदना करता हूँ।

17

मइया जग हितकारी जय जगदीश पियारी हो माय
करहु कृपा जनजान आपनो तुम जग की हितकारी।
आदि शक्ति सब भुवन बिहारिनि बिरतन गुन श्रुतिचारी।
दिव्या युध कर कमल बिराजत सोभित छवि मय भारी।
बाहिनी परम पावनी सुरमुनि संकट हारी।
देहु अभय बालक को जननी शीतल नयन निहारी
सकल भगत मिल तोरे जस गावत जै गिरिजा राजकुमारी॥

भावार्थ:-

मैया जगत की हितकारी जगदीश की प्यारी माँ, अपना पुत्र समझकर मुझ पर कृपा करें। आप संपूर्ण जगत की हितकारी हैं। आप आदि शक्ति हैं। सभी लोकों का विहार करने वाली हैं। तुम्हारी गुण श्रुति अनन्त है। आपके हाथों में दिव्य कमल पुष्प हैं। आपकी शोभा छवि सबसे न्यारी है। आप परम पावन वाहिनी हैं। शीतल नयनों से निहारने वाली हैं। आप साधु संतों का संकट हरने वाली हैं। मुझे अपना बालक स्वीकार कर अभय वर प्रदान करें। हम सब मिलकर आपका यशगान करें। हे गिरिजा राजदुलारी।

18

सोने के दिया कपूर के बाती सुरही घी बरै सारी राती ॥टेक॥
को तोर भुवन मा जोत जलाये को तोर भुवन माँ बेद सुनाय
लंगूरे तीर भुवन मा जोत जलाय बरहमा बेद सुनाय॥
पाँच भक्त मिल तोर जस गावैं बरूवा के होहु सहाय।
अक्षय करो बरूआ के माता लीला बरनिन जाय॥

भावार्थ:-

सोने का दीपक कपूर की बाती सुरही (कामधेनु) का घी सारी

रात दीपक को प्रज्वलित रखता है। तुम्हारे भवन में कौन जोत जलाता है। कौन तुम्हारे भवन में वेद पाठ करता है। लंगूर तुम्हारे भवन में जोत जलाता है। ब्रह्मवेद पाठ करते हैं। पाँच भक्त मिलकर तुम्हारा यशोगान करते हैं। बरूवा (जनेऊधारक ब्रह्मचारी) की आप सहायक बनें। अक्षय (अमर) करो बरूआ को माता आपकी लीला का वर्णन करना हमारे लिए संभव नहीं है।

19

चम्पा फूले केतकी फूले फूले फूल सोहाग।
सेवती फूलै गुलाब मोगरा माइ के शुभ बाग।
कुंद कमल जूही अस मोगरा फूल रहे कचनार
फूले फूल विविध बागन में को जन बरणन हार॥
फूलन के शुभ बने आभरण अंग अंग सिंगार।
बरूआ बालक अभय बगस दे महिमा अमित तुम्हार॥
मइचा तोर भुवन में जोत जरये कमल मुख हो माय॥

भावार्थ:-

चम्पा फूल रही है, केतकी फूल रही है, सौभाग्य के पल फूल रहे हैं। सेवती फूल रही है, गुलाब मोगरा सभी माई के बाग में हैं। कुंद कमल जूही मोगरा और कचनार सभी फूल रहे हैं। माई के बागों में विविध प्रकार के फूल फूल रहे जो अवर्णीय हैं। इन फूलों से शुभकारक आभूषण बने हैं जो उनके अंग अंग का श्रृंगार कर रहे हैं। ब्रह्मचारी बालक को माँ आप अभयदान दें। आपकी महिमा असीम है। माँ तुम्हारे भवन में ज्योति जल रही है, आप का मुख कमल की भाँति सुन्दर है॥

20

मइया संकट मोचनि नाम सकल दुखदाइनि माय
नयन मूँद के ध्यान लगावौ आसन रतन बिछावौ
सुरही गाय के दूध पिलाके गंगा सलिल अन्हवावों
केसर आगर कपूर लगावौ सुन्दर पुष्प चढ़ावौ
अष्ट गंध के धूप जलावौ, चौ मुख दियना वारौ॥
मेवा मधु पकवान मिठाई रूचि रूचि भोग लगावौ।
बरूवा बालक कुछ नहीं जानय, अभय दान दे माता।
पाँच भगत मिल तोर जस गावय जयति कालिका माता॥

भावार्थ:-

मैया आप का संकटमोचिनी नाम है। आप सभी सुखों को

देने वाली हैं। मैं नेत्र मूँदकर आपका ध्यान करता हूँ, आपके लिए आसन रत्न बिछाता हूँ। आपको सुरही गाय का दूध पिलाकर गंगाजल से स्नान करवाऊँगा। आपको केसर आगर कपूर लगाकर सुन्दर पुष्प चढ़ाऊँगा। अष्ट गंध की सुगंध वाली धूप जलाकर चारों दिशाओं में दीपक जलाऊँगा। मेवा, मधु, पकवान, मिठाई सुरूचिपूर्ण भोग लगाऊँगा। हे माता ब्रह्मचारी बालक अबोध है उसे आप अभयदान प्रदान करें। पाँच भक्त मिलकर आपका यशगान करें जय हो कालिका माता।

21

मैया रूप अगम है कहि जस के अजइस हो माय
कुन्द फूल सम काया सुन्दर जाँघ खंब कदली के
कटि छवि लाख मृगराज लजावत उर रेख प्रयेनी के
ताल फलन कुच चोलिया दामिनि नीलाम्बर तनु धारी
कंठ पदिक मणिहार बिराजत यिलरो पीत दुतिकारी
युगल श्रवण तरिवन के शोभा सूर्य कोटि उजियारी
अधर दशन बिम्बा फल लज्जित रूप अनूप तुम्हारी
चोबा चन्दन अतर अगरजा, करे सिरन पर बास।
तुम छवि अगम चरित नहीं जानौ हों माता तब दास।
बरूआ बालक होहु सहाई जय जगदम्बे भवानी
काली, बगला, तारा, भवानी जयति शिवा कल्याणी॥

22

मैया तोरे जस गावौ कृपा करहु जग जानि हो माय
शंकर, भृगु, नारद सब मुनिगण धरे कमल करजोर
सुर किन्नर गंधर्व अप्सरा नृत्य करे तोरे द्वारे।
कटि पीताम्बर सरस बिराजे गले सुमन की माला
बाजूबंद सुभग अति सुंदर शोभा रूचिर विशाला।
अरूण कुंकुमा अंग कस्तूरी चन्द्र बिलंग छवि छाजें
कदली खंब रत्न के दीपक तोरण छत्र बिराजे
कर्ण फूल शोभा छवि छाजे कुंकुम सुरभी सोहैं।
मोतिन माँग भरे जगदम्बा सुर नर मुनि सब मोहैं॥
चंदन पलंग पर बैठे बूढ़ी माई सुमन वृष्टि छवि छायें
शंख ध्वनि होत द्वारे पर नाना बाजन बाजे॥
आदि अंत लीला अपार तोरे सुरनर पार न पाये।
हे जगदम्बा आदि भवानी बरूआ हो ही सहाये॥

भावार्थ:-

मैया तुम्हारा यशगान करूँ। कृपा करना हे जगजननी माता।

शंकर, भृगु, नारद सब मुनिगण कमल लेकर करजोरकर प्रार्थना कर रहे हैं। सुर किन्नर गंधर्व अप्सरा तुम्हारे द्वार पर नृत्य कर रहे हैं। आपकी कटि पर सुन्दर पीताम्बर शोभित है और गले में पुष्पमाला है। बाजूबंद अति सुन्दर और सौभाग्यशाली है। जिसकी सुरुचिपूर्ण शोभा निराली है। अरूण सदृश्य कुमकुम और अंग से कस्तूरी सुगंध बिखर रही है और चन्द्रमा की भाँति तुम्हारी छवि सर्वत्र दैदीप्यमान है। केले के तने से बने स्तंभ पर रत्नों के दीपक जल रहे हैं और तोरण और छत्र सजे हुए हैं। कानों के आभूषण की शोभा छायी हुई है और कुमकुम की सुगंध मन को मोह रही है।

मोतियों से हे जगदम्बा! तुम्हारी माँग भरी हुई है। सुर, नर, मुनि सभी को वह मोह रही है। चंदन के पलंग पर बैठकर बूढ़ी माँ आप पुष्प वर्षा कर रही हैं। शंख ध्वनि तुम्हारे द्वार पर हो रही है और नाना प्रकार के वाद्य बज रहे हैं। तुम्हारी आदि अंत लीला अपार सुर नर किसी ने नहीं पायी है। जगदंबा आदि! भवानी आप बरूआ की सहायक होवें।

शीतला सेवा का बारह मासी गीत-

23

मइया सोरहों सिंगार सुभग सिंहासन बैठो हो माया।
चैत मास नौलख अमरइया शीतल छइयाँ बइठे।
बैसाख बाघ पर बैठ भवानी घुँघर के छवि ऐसे॥
जेठ मास सुन्दर मन्दिर से खास के पंखा
भर असाढ़ जेजम पर बइठे सावन सखी बुलावे॥
भादो रिमझिम बरखा देखें अतर सुगंध लगावै
क्वॉर मास जगदंबा भवानी बैठे जोत जलावै॥
कार्तिक कर स्नान जालपा विप्रन दान दिवावें
अगघन आँगन गड़े हिंडोला सखियन मंगल गावें।
पूस मास अति जाड़ भवानी ओढ़े अम्बर चीर
माघ बसन्त पंचमी माने झोली भरे अबीर॥
फागुन होली खेलें मगन हो सखियन संग सब लीनै
आदि भवानी तोर जस गावों बरूवा के रक्षा कीन्हें॥

भावार्थ:-

मैया सोलह श्रृंगार करके सुन्दर सिंहासन पर विराजमान हों। चैत्र मास में नौलाख आम्र वृक्षों की अमराई की छाया में बैठो वैशाख में बाघ पर बैठकर हे भवानी! अपने घुँघराले केशों की छवि दिखाओ। जेठ माह में सुन्दर मंदिर में खस का पंखा लगवाओ। भरे

आषाढ़ में जाजम पर साखियों के साथ बैठकर श्रावण मास हेतु उन्हें बुलायें।

भादों माह में रिमझिम वर्षा का आनन्द लें और इत्र सुगंध लगावें। क्वॉर मास में हे जगदम्बा भवानी! बैठकर ज्योति जलावें। कार्तिक माह में जल से स्नानकर ब्राह्मणों को दान दें। अगहन माह में हिंडोले डालकर साखियों के साथ मंगलगान करें। पूस माह में अत्यधिक सर्दी पड़ती है आकाश में घने कुहरे की चादर आच्छादित है।

माघ मास में बसन्त पंचमी को झोली में भर-भरकर अबीर उड़ाते हुए मनावें।

फागुन में मगन हो, साखियों के साथ होली खेलें। आदि भवानी! हम आपका यशोगान करते हैं। आप बालकों की रक्षा करें।

24

मैया रूप अगम है कहि जसके अजइस हो माया।
कुन्दफूल सम काया सुन्दर जाँघ खंब कदली के
कटि छवि लखि मृगराज लजावत उदर देख त्रयनीके॥
ताल फलन कुच चोलिया दामिनी नीलाम्बर तनुधरी।
कण्ठ पदिक मणिहार बिराजत मिलरो पीत दुतिकारी॥
युगल श्रवण तरिवन के शोभा सूर्य कोटि उजियारी।
अधर दशन बिम्बा फल लज्जित रूप अनूप तुम्हारी।
चोवाचन्दन अतर अगरजा करे सिरन पर बासा।
तुम छवि अगम चरित नहीं जानों हों माता तब दासा॥
बरूआ बालक होहु सहाई जय जगदम्बे भवानी
काली, बगला, तारा भवानी जयति शिवा कल्याणी॥

भावार्थ:-

मैया आपका रूप अगम है जिसका यश विख्यात है। कुन्द पुष्प के सदृश्य तुम्हारी काया है, तुम्हारी जाँघे केले के तने के समान (सुडौल) हैं। तुम्हारी कटि के सौन्दर्य को देखकर मृगराज भी लजा जाता है और तुम्हारे उदर प्रदेश स्त्रियोचित हैं। ताल फल सदृश्य तुम्हारे स्तनों पर विद्युत् सी चमकदार चोली शरीर पर नीलाम्बर जैसी सुन्दर लग रही है। गले में मणियों का हार विराजमान है और पीताम्बर शोभायमान है। युगल श्रवण तरिवन की शोभा है और सूर्य सदृश्य दैदीप्यमान है। तुम्हारे अधर से बिम्ब फल की सुन्दरता भी लज्जित है। ऐसा सुन्दर तुम्हारा रूप है। चौबा चन्दन इत्र अगर सब आपके मस्तक पर लगे हुए हैं। हे माँ! मैं

तुम्हारा दास तुम्हारे अथाह चरित्र और छवि को नहीं जान पाया। बरूआ बालक की, हे जगदम्बे भवानी! सहायता करें। आप काली, बगलामुखी, तारा, भवानी, जयति शिवा रूप सभी हो। हे माँ! तुम हमारा कल्याण करो।

25

मइया सिन्धु कुमारी लक्ष्मी नाम कहाये हो माय
उदधि सुता अवतारा जगत में उदधिहि वास करे।
श्री विष्णु संग सेज सुहाये निरखत कोटि तरे
तू ही इन्द्र के तू ही चन्द्र के तू ही शक्ति सागरे॥
तू ही विष्णु-माया जगकी तीन लोक सबरे।
कमल नयन कमला मुखि सुन्दर मंगल मोद भरे
कमलासन कर कुंज सुहाये विकसत मनहुँ परे
करि भर उभय कनक घट लीन्हें सींचत अभय धरे
हम सेवक भी मइया चरण के केवल आस करे॥

भावार्थ:-

मैया आप सिन्धु कुमारी हैं। लक्ष्मी आपका नाम है। समुद्र पुत्री! आपने जगत में अवतार लिया और समुद्र निवास श्री विष्णु के साथ आप सेजशय्या का भोग करती हैं। आपके दर्शन से ही कोटि कोटिजनों की मुक्ति हो जाती है। आप ही इन्द्र की, चन्द्र की और सागर की शक्ति हैं। आप ही विष्णु की माया हो, संपूर्ण जगत और तीनों लोकों का उद्धार करने वाली हो। आप कमल सदृश्य नयनों वाली, कमल जैसे सुन्दर मुखवाली तथा मंगल और आनन्ददायिनी हैं। कमलासन पर विराजमान आपसे उद्यानों की शोभा है। मन प्रसन्न हो जाता है। स्वर्ण घट हाथों में लेकर अभय की भावना भर आप सभी को अभयदान प्रदान कर रही हैं। हम सेवकगण माँ आपके चरणों में स्थान प्राप्त करने की आशा कर रहे हैं।

26

मइया शरद चन्द्र मुख अरू कमल दल लोचनि माय।
अलि कुल अलक देखि मैं लज्जित, उतर कहर धन कारे।
मोतिन लर लज्जित केशन प्रति कनक तार घुँघुवारे॥
श्वेत वस्त्र धरि श्वेत अंग पर श्वेत कमल कर चूरी
बाजू बन्द रतन के कंचन, अंगुरिन चमकत मुंदरी॥
चरण कमल नख छवि मोतिन के, ऊपर घुँघरून राजै।
जेहर सांटी रूचिर सुबिछिया मंद मंद बाजै।
सेजननी जगदम्बा भवानी मैं शरणागत तेरो

बालक बरूआ कछु नहिं जाने तुम सब भार उतारो॥

भावार्थ:-

मैया आप शरदचन्द्र मुख और कमल सदृश्य नेत्रों वाली हैं। मैं आपकी भौरों के समूह सदृश्य काली सुन्दर केशराशि देखकर लज्जित हूँ। वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो आकाश से काले काले बादल उतर आये हों। आपकी घुँघराली केशराशि में मोती की लड़ें और स्वर्ण के तार भी लज्जित हो रहे हैं। हे माँ! आप श्वेतवर्णीय हैं। आपने श्वेत वस्त्र ही धारण कर रखे हैं और श्वेत कमल से बनी हुई चूड़ियाँ पहन रखी हैं। आपके बाजूबन्द स्वर्ण और रत्नों के बने हैं और आपकी अँगुलियों में मुद्रिकाएँ चमक रही हैं। आपके चरण कमल सदृश्य हैं जिनके नख मोतियों जैसे लग रहे हैं और उनके ऊपर घुँघरू बंधे हैं जिनके ऊपर सांटी (पैर का आभूषण) सुरुचि के साथ धारण किया है और बिछिया मंद मंद बज रहा है। हे जग जननी जगदम्बा! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मैं अबोध बालक कुछ नहीं जानता, तुम मेरा सम्पूर्ण भार उतारो।

27

मइया तोरे दरस बर तरसत नैन हमारे हो माय
ब्रह्मा लिये कमंडल कर में औ करताल सुहायै।
चौमुख बेद पढ़त अति सुन्दर क्षण क्षण तब गुण गाये।
शिव सनकादिक नारद आये विष्णु गरूड़ चढ़ि आये।
ले फल फूल विविध सुन्दर मायजी के सिरहि चढ़ाये॥
ताल मृदंगा झाँझ डफ बाजत आनन्द मंगल गाये।
किन्नर, गंधर्व, ढोल बजावें दुंदुभी अति मन भावे॥
डमरू ले नाचत शिव शंकर श्रृंग नाद बजावे।
कमला पति हार करत आरती नारद वेणु बजाये॥
शेष रहत निसि पार न पाये सनकादिक थकि आये
बालक बरूआ कछु नहिं जानै तुम होहु सहाये॥

भावार्थ:-

मैया तुम्हारे दर्शन के लिए हमारे नयन तरस रहे हैं। ब्रह्मा कमंडल हाथ में लिए करताल बजा रहे हैं। चारों मुखों से वेद पाठ कर रहे हैं। क्षण क्षण आपका सुन्दर गुणगान कर रहे हैं। शिव, सनकादिक, नारद आये हैं और विष्णु भी गरूड़ पर चढ़कर आये हैं। ये सभी आपके भक्तगण विविध प्रकार के सुन्दर पुष्प और फल आपके मस्तक पर चढ़ा रहे हैं। ताल, मृदंग, झाँझ, डफ बजाते हुए

आनन्दपूर्वक मंगल गान कर रहे हैं।

किन्नर, गंधर्व, ढोल और दुंदुभी बजा रहे हैं, जो मन को अत्यन्त भा रहा है। शिवशंकर डमरू लेकर नाच रहे हैं और श्रृंगनाद बजा रहे हैं। शेषजन आपके नाम को रात दिन रटते हुए भी आपका पार नहीं पा सके हैं और सनकादिक भी थक चुके हैं। मैं अबोध बरूआ बालक कुछ भी नहीं जानता आप मेरी सहायता करें।

माता सेवा का एक अन्य बारह मासी गीत

28

अहो शशि बदनी, अहो मृग नयनी, हंस गबन गज गावे
क्वार् मास तोहि लागत माता, सेना साख सखीली॥
अपना भुवन ले चलेव भवानी बाहिर ध्वजा संभाले
कार्तिक मास कलाकृत माता कागज कमल धराये॥
रवि आसन ले उतर भवानी रूमक टुमक पग धारे
अगहन अमुवा नवरंग सोहै तन पर अति रंग भारी॥
सोलह तोर सिंगार भवानी जय जगत ला मोहे
पूष मास पर्वत पर बैठ पाँच पाँडव आइन॥
रतन जड़ित कंचन कर भुवना मानिक दिया जलाये॥
माघ मास मुक्ता हर गहना पहिरे आदि भवानी
श्वेत फूल गजरा गर सोहे नवलख हार सुहावय॥
फागुन फूल फूले टेसुवन के बीच हीरा बीच लगावै
बरे सुरज के जोत सिर के मोती बेनी बिराजे॥
चैत चन्द्रमा सिर पर सोहे निर्मल जोति प्रकाशे
खेले पासा चार कि चोवा चंदन अंग लगावे॥
लागत मास बैसाख के माता शोभा बरनिन जाये
रवि आसन लेउतर भवानी लिमवा डारा बइठे॥
जेठ मास तोहि लागत माता धूप के जोर जनाए
राम राम सब देव जपत हैं दादुर वचन सुनाए॥
लागत मास असाढ़ के माता घटा उठिस घन घोरे
कारी बदरिया नभ में सोहे देखत मन सकुचाय॥
सावन बूँद चुहे मोतियन के देखत जन सुख पाइन
सात सखि मिल झूले हिंडोला सुरजा देखन आवें॥
भादो भीर धीर अभिभावन नदी चलिन उतराई
मरकट मन के विकट कामना गेंद खेले महमाई॥

भावार्थ :-

चन्द्रमा सदृश्य बदनवाली, मृगनयनी, हंस जैसी ग्रीवा वाली गजगामिनी माँ हम तेरी वंदना करते हैं। वँवार मास लगते ही माँ

तुम सखियों के साथ सेना बना लेती हो।

अपने भवन से चलते हुए हे भवानी! आप अपनी ध्वजा संभाले निकलती हो। कार्तिक मास कलाकृतियों का है। आप कागज कमल धारण करती हो। आप सूर्य रूपी आसन से उतरकर रूमक टुमक करती हुई धरा पर आती हो। अगहन में आम नवरंग के हो जाते हैं, उस समय आपका तन भी गहन रंग का हो जाता है। हे भवानी! आपके सोलह श्रृंगार जगत को मोहने वाले हैं। पूष मास में पाँचों पाँडव पर्वत पर बैठकर आये। रतन जड़ित स्वर्ण के भवन में उन्होंने रत्नदीप प्रज्ज्वलित किया। माघ मास में हे भवानी! आप मोतियों के आभूषण धारण करती हैं। श्वेत पुष्प की माला आपके गले में शोभित है। फागुन में टेसू के फूल फूलते हैं उन्हें आप हीरों के बीच में लगाती हैं। बड़े सूर्य की ज्योति से सिरकी बेनी को उनसे एवं मोतियों से आपने सजाया है। चैत्र का चन्द्रमा सिर पर शोभित है जिसका प्रकाश निर्मल ज्योति फैला रहा है। चार लोग पासा खेल रहे हैं और उन्होंने चंदन का लेप किया है। वैशाख मास लगते ही आपकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। रवि (सूर्य) के आसन से उतरकर आप नींबू की शाख पर विराजमान होती हैं।

ज्येष्ठ मास में आपको धूप का ताप असह्य हो जाता है। राम राम सब देव जपते हैं और मेंढक के स्वर सुनाई पड़ते हैं। आषाढ़ के लगते ही हे माँ! घनघोर घटा उठ रही हैं। आकाश पर काले काले बादलों की शोभा देखकर मन सकुचाता है। श्रावण में मोतियों सदृश्य बूँद चूने लगती है जिन्हें देखकर सभी जन सुखी हो जाते हैं।

सात सखियाँ मिलकर हिंडोले (सप्त मातृकाएँ) में झूलते हुए सूर्य को देखने आयी हैं।

भादों में वर्षा धीमी पड़ गई है और मौसम सुहावना है नदियाँ भी उतार पर हैं। मरकत मन की उत्कट इच्छा है कि महामाई गेंद खेलें॥

माता सेवा गीतों में शीतला माता की सेवा के गीत गाये जाते हैं जिन्हें माता सेवा कहते हैं। इन गीतों का प्रमुख भाव माता की स्तुति है जिसमें उनके रूप, श्रृंगार, उनकी महिमा का वर्णन किया गया है। माता के अधिकांश गीतों में उनका रूप श्वेत दर्शाया गया है और श्रृंगार हेतु पुष्प भी सब श्वेत वर्ण के हैं। ये सभी शीतलता के प्रतीक हैं। माँ शीतला का प्रकोप ग्रीष्म काल में होता है। इसलिए उनकी शांति के लिए उन्हें शीतल सामग्री प्रदान की जाती है। शीतला नामकरण के पीछे भी संभवतः यही भावना है।

इन गीतों में अनेक पुष्पों, आभूषण, वनस्पति का वर्णन किया गया है। गीतों में प्रकृति का भी व्यापक वर्णन किया गया है। आभूषणों में रत्नों का व स्वर्ण तथा रजत धातुओं का भी वर्णन व्यापक रूप में किया गया है।

गीत क्रमांक चौबीस में माता के सौंदर्य का नखशिख वर्णन किया गया है। जिसमें उनके अप्रतिम सौंदर्य का बखान है। कुछ गीतों में उनकी सन्दर केश राशि का वर्णन मिलता है। अनेक गीतों में उनके मुख की शोभा कमल एवं चन्द्रमा से की गई है एवं उनके नेत्रों की उपमा भी कमल पुष्प से की गई है।

देवी की शक्ति का वर्णन तो इन गीतों में अनेक स्थानों पर हुआ है, परन्तु उन्हें विकराल या भयावह कहीं भी नहीं दर्शाया गया है जैसा कि चेचक के प्रकोप के कारण वास्तविकता में दिखाई पड़ता है। इन सभी गीतों में देवी की पूजा 'श्वेत पूजा' के रूप में ही दिखाई गई और कहीं भी बलि आदि का उल्लेख नहीं मिलता। चेचक की व्याधि का यद्यपि उन्मूलन हो चुका है, परन्तु माता सेवा के रूप में लोकसाहित्य और लोक मानस में शीतला माता दीर्घकाल तक बनी रहेंगी।

सन्दर्भ :

1. छत्तीसगढ़ी हल्बी भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन : डॉ. भालचन्द्रराव तेलंग
2. तुलसी के बिरवा से साभार एवं अमृतलाल दुबे
3. छत्तीसगढ़ी हल्बी भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन : डॉ. भालचन्द्रराव तेलंग
4. यह गीत स्व. श्री प्यारे लाल गुप्त के ग्रंथ प्राचीन छत्तीसगढ़ से साभार उद्धृत।

लोकचित्र कला मांडने

रामनारायण उपाध्याय

लोककला में भित्ति-चित्रों का अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जैसा कि एक बार आचार्य यामिनी राय ने कहा था-कोई भी कलाकार भीत को सूनी नहीं देख सकता। लगता है लोककला के चित्तेरे उक्त भावना को मूर्त स्वरूप देते हुए आये हैं। आप किसी भी गाँव में चले जाइये, वहाँ के साधारण से मकानों की दीवारों को भी आड़ी-टेढ़ी रेखाओं से अंकित भित्ति चित्रों से चित्रित पायेंगे।

इन चित्रों का प्रचलन कब हुआ, यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन लगता है कि आदिकाल का आदि-मानव, जब वर्षा की झाड़ियों में अपनी गिरि-कन्दराओं में घिर गया होगा तब उसके मन में रोटी और सेक्स की जगह एक नयी भूख जगी होगी और उसने अपने नजदीक पड़ी खड़िया मिट्टी से सामने की विशाल पर्वत शिलाओं पर कुछ आड़ी-टेढ़ी आकृतियाँ खींच दी होंगी। अपने एकांत के क्षणों में उसके द्वारा खींची गई ये आकृतियाँ ही आज 'आदिम कला' के नाम से प्रसिद्ध रही हैं।

यद्यपि इन्हें लोक कला नहीं माना जाता, कारण जिस युग में इनका निर्माण हुआ, उस युग में समाज का संगठन नहीं हुआ था। इसीलिए इन्हें मानव द्वारा निर्मित प्रागैतिहासिक काल के चित्र कहा जाता है। बाद में जैसे-जैसे मनुष्य का विकास हुआ होगा और वह गिरि-कन्दराओं को छोड़कर अपने हाथ से निर्मित घर में रहने लगा होगा, वैसे-वैसे इस कला का भी विकास हुआ होगा, और यह शिलाखण्डों से आगे बढ़कर भित्तिचित्रों के रूप में प्रतिष्ठित हुई होगी।

भित्ति चित्र

कहते हैं आज भी अनेकों जातियों में यह प्रथा प्रचलित है कि जब नयी बहू घर में प्रवेश करती है तो उसे अपने हाथ से घर की दीवाल पर कुछ चित्र बनाने होते हैं। ये चित्र मांगलिक जीवन के प्रतीक माने जाते हैं। विवाह के समय सूप पर एक कपड़ा चढ़ाकर उस पर स्त्रियों के द्वारा माता का चित्र बनाया जाता है और समस्त पारिवारिक जनों के द्वारा उसकी पूजा की जाती है मातृपूजा के बिना कोई भी वैवाहिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। मातृ-पूजा के जरिये चित्रपूजा का यह कैसा सुन्दर आयोजन है।

जिन घरों में दूध-दही होता है, वहाँ पर प्रत्येक पंचमी या अष्टमी के दिन दूध की मलाई से दीवार पर नाग के चित्र बनाये जाते हैं।

जो स्त्रियाँ चन्द्रायण का व्रत करती हैं उनके द्वारा दीवाल पर चन्द्रमा का चित्र बनाकर उसकी पूजा की जाती है।

दशहरे पर दशहरा मांडने का रिवाज प्रायः सब जगह पाया जाता है। मालवा में बड़े-बड़े त्यौहारों और ब्याह शादी के अवसर पर लाल गैरू से थापे बनाने का प्रचलन है।

कुरू जनपद में दीवाली से एक सप्ताह पूर्व अष्टमी के दिन अधोहो माता का चित्र बनाकर पुत्रवती स्त्रियों द्वारा उसकी पूजा की जाती है।

श्री राहुल सांकृत्यायन के मत से विभिन्न जनपदों में निम्नलिखित थापे मांडने का रिवाज पाया जाता है-

नागपंचमी का थापा, सावन-पूर्णमासी का थापा, होई माता का थापा, दीवाली का थापा, कार्तिक एकादशी का थापा, आती का थापा, देवी का थापा, नवमी का थापा और ब्याह-शादी का थापा।

बुन्देलखण्ड में दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी-पूजा के रूप में सुराती की पूजा की जाती है। इसमें दीवार पर एक मंदिर में लक्ष्मीनारायण की मूर्ति अंकित की जाती है और उसके आसपास क्रमशः नाग-नागिन, सूर्य देवता, सप्तर्षि, मण्डल, श्रवणकुमार माता, बालक सहित तथा गोवर्धन आदि के चित्र अंकित रहते हैं।

निमाड़ जनपद में पाये जाने वाले भित्ति चित्रों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। रंगों से बनाये जाने वाले भित्ति चित्र जैसे-जिरोती. और नाग तथा गोबर-मिट्टी से बनाये जाने वाले भित्ति चित्र जैसे-सांझापूली।

जिरोती

जिरोती- रंगों से बनाये जाने वाले भित्ति चित्रों में जिरोती सबसे सुन्दर होती है। इसे यदि यहाँ के जनजीवन में लोक कला के प्रति रूचि बनाये रखने का एकमात्र माध्यम कहें तो भी अत्युक्ति नहीं। वर्षा के सुहावने मौसम में जबकि प्रकृति भी नित्य नवीन फूलों से अपना श्रृंगार करती है हरियाली अमावस्या के नाम से प्रसिद्ध श्रावण कृष्ण अमावस्या के दिन यह त्यौहार आता है। करीब एक सप्ताह पूर्व से ही इसके स्वागत की तैयारियाँ शुरू हो जाती है। छोटी-छोटी कटोरियों में हरे, लाल, नीले, और पीले रंग घोले जाते हैं, और तूवर की छोटी-छोटी काड़ियों में रूई लपेटकर ब्रश तैयार कर लिये जाते हैं। घर की गोबर से लिपी

दीवार ही चित्र बनाने की पृष्ठभूमि (केनवास) का काम देती है। प्रायः मध्य घर के दरवाजे के दोनों ओर के दो भाग ही चित्र बनाने के लिए चुने जाते हैं सबसे पूर्व उक्त भाग को लाल-गैरू से पोता जाता है और फिर उस पर करीब एक फीट लम्बा और एक फीट चौड़ा आम चौरस चौखटा तैयार किया जाता है। इस चौखटे के फ्रेम को भी विभिन्न रंगों, बेल-बूटों से सजाया जाता है। फिर इस चौखटे के बीचों बीच इस त्यौहार की अधिष्ठात्री देवी जिरोती की तीन खड़ी हुई आकृतियाँ बनाई जाती हैं। प्रतिष्ठा की दृष्टि से इनके नीचे एक सिंहासनरूपी पालना होता है तथा उपर एक छत्र। चूँकि बच्चों की रक्षा करने वाली देवी के रूप में ही इस त्यौहार की मान्यता है अतएव प्रत्येक आकृति के साथ एक-एक बच्चे का भी चित्र रहता है। इस चित्र के आसपास अनेकों छोटे-छोटे चित्र होते हैं। जैसे-ऊपर के कोने में एक दही बिलौने वाली का चित्र, बीच में चाँद और सूर्य और नीचे दो बालिकाएँ फुगड़ी खेलती हुई दर्शाई जाती हैं बगल में एक ओर साँप तथा बिच्छू बने होते हैं तथा दूसरी ओर गृह जीवन के मांगलिक प्रतीक पाँच हथेलियाँ तथा एक स्वस्तिक का चिन्ह अंकित होता है। इनमें साँप और बिच्छू मृत्यु के तथा चाँद और सूर्य शाश्वत् जीवन के प्रतीक रहते हैं।

यह एक आश्चर्यजनक संयोग की बात है कि इन चित्रों का स्वरूप प्रागैतिहासिक काल के चित्रों से अत्यधिक मिलता है, शायद इसका कारण यह है कि जिस तरह की रेखाओं से उन आकृतियों का निर्माण हुआ है उसी तरह की सरल सीधी रेखाओं से इन आकृतियों का भी निर्माण हुआ है। जैसे इनमें मनुष्य को आकृति बनाने के लिये सबसे पहिले एक गुणित (x) का चिन्ह बनाया जाता है और उसे ऊपर नीचे बंद कर देने से आदमी का घड़ बन जाता है। उसके नीचे दो खड़ी लकीरें खींच देने से पाँव बन जाते हैं उसके नीचे दो छोटी-छोटी आड़ी लकीरें खींच देने से पाँव के पंजे बन जाते हैं। धड़ के ऊपरी हिस्से से दो खड़ी लकीरों को पहिले नीचे लाकर फिर कुछ ऊपर की ओर बढ़ा देने से दो हाथ बन जाते हैं। तथा उसके छोर पर दो छोटी-छोटी आड़ी लकीरें खींच देने से हथेली बन जाती है। धड़ के ऊपर एक अर्ध गोलाकार वृत्त खींच देने से सिर बन जाता है और उसमें महज कुछ आड़ी-टेड़ी रेखाओं के माध्यम से नाक कान और मुख बना दिये जाते हैं। बच्चे का चित्र बनाने के लिए इससे भी सरल तरीका काम में लाया जाता है। इसमें एक खड़ी लकीर के ऊपरी और नीचे के सिरे पर दो-दो तिरछी लकीरें खींच देने से बालक की आकृति बन जाती है।

लोक-कला के चित्रों की यह मान्यता रही है कि चित्र में जब तक आँख नहीं बनाई जाती तब तक उसमें प्राण नहीं आते हैं। अतएव पूरे सात दिनों तक घर की बहू-बेटियों के द्वारा इन चित्रों को विभिन्न रंगों

से सजाने सँवारने के पश्चात् ठीक अमावस्या के दिन स्नान करके किसी अन्य की दृष्टि तक न पड़े ऐसे एकांत क्षणों में पुतलियों की आँखे बनाकर उनमें प्राण-प्रतिष्ठा कर दी जाती है और तब समस्त पारिवारिक जनों के साथ उसकी पूजा करके इस त्यौहार की समाप्ति हो जाती है। जिरोती के संबंध में यह मान्यता रही है कि यह छोटे-छोटे बच्चों की खतरों से रक्षा करने वाली देवी है।

इस संबंध में एक कथा भी प्रचलित है कि जरासंध को जब उसकी सौतेली माँ ने चीरकर फेंक दिया, तब जिस बहन ने उसकी रक्षा की, वही आज जिरोती के नाम से पूज्य है। इसका धार्मिक स्वरूप चाहे जो कुछ भी रहा हो इतना तो सच है कि यदि निमाड़ में जिरोती का त्यौहार नहीं होता तो निमाड़ के घरों की दीवारें चित्रों से सूनी होती।

नाग

‘नाग- जिरोती की ही तरह जिरोती से सिर्फ पाँच दिन पश्चात् श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन बनाये जाते हैं। जिरोती जहाँ लाल जमीन पर पीली रेखाओं एवं विभिन्न रंगों के माध्यम से बनाई जाती है, वहाँ नाग सफेद जमीन पर काले रंग से बनाये जाते हैं। ये रंग भी गाँवों में ही सहज प्राप्त चाक-मिट्टी एवं कोयले से तैयार कर लिए जाते हैं। इनमें आकृति का नहीं रेखांकन का मूल्य होता है। इसी से बिना कूची (ब्रश) उठाये आठ बारह और सोलह कुण्डलियों तक के नागों का निर्माण किया जाता है। इनके आसपास सपेरा, वावल्ला (साँप के रहने का बमीठा) बिच्छू तथा चाँद सूर्य के भी चित्र बनाये जाते हैं। इसके पश्चात् जिरोती की तरह इनकी भी आँखे बनाकर इनमें प्राण प्रतिष्ठा करके इनका पूजन किया जाता है। चित्र पूजा का यह कैसा अनुपम आयोजन है। इन चित्रों को पूरे वर्ष भर तक सुरक्षित रखा जाता है।

कठपुतलियों की ऐतिहासिकता

विभाष उपाध्याय

शाब्दिक तौर पर कठपुतली का तात्पर्य काठ (लकड़ियों) से बनी पुतलियों से ही है। परंतु भारत के ही विभिन्न प्रदेशों एवं विश्व के अलग-अलग देशों में अलग-अलग नामों से जानी जाती है। पर यह बात सच है कि सभी स्थानों में पुतलियों का प्रचलन दिखाई पड़ता है।

भारत में पुतली के जन्म के संबंध में अनेक मत हैं। महाभारत, रामायण, पंचतंत्र कथा सरित्सागर आदि ग्रंथों में किसी न किसी रूप में इनका उल्लेख मिलता है। कथानुसार पार्वती जी के कहने पर शिवजी ने चलती-फिरती पुतली उन्हें दी, ताकि वे निर्बाध रूप से साधना में लीन हो सकें। ऐसे समय में पार्वती जी उसी पुतली के साथ मनोरंजन किया करती थीं। इसी तरह से 'वीरकरीला' नामक भारतीय ग्रंथ में एक विशेष पुतली का उल्लेख है जो केवल पार्वती जी के पास ही थी। यह इतनी सुंदर व आकर्षक थी कि पार्वती को सदैव इस बात की चिंता बनी रहती थी कि कहीं शिवाजी इस पुतली में प्राण ही न फूँक दें और इसी से विवाह न रचा लें? 'कथा सरित्सागर' में एक ऐसे दस्तकार का उल्लेख है जो अपनी लाड़ली बिटिया का जी बहलाता था। 'पंचतंत्र' में उन पुतलियों का उल्लेख है जो लकड़ी की खूंटियों के सहारे नाना प्रकार के करतब दिखाती थीं। राजा विक्रमादित्य के सिंहासन में स्थित बत्तीस पुतलियाँ रात्रि में निकलकर राजा का मनोरंजन करती थी और राजा को निरंतर न्याय का पथ दिखलाती थी। दिन में राजा इसी सिंहासन पर बैठकर निर्णय सुनाया करते थे। इसीलिए 'सिंहासन बत्तीसी' का संदर्भ राजा विक्रमादित्य के साथ जुड़ गया। साथ ही यह पुतलियाँ राजा के कहने पर सभी दिशाओं में घूम-फिरकर सच्ची घटना की सही खबर भी लाती थी। इसी आधार पर राजा न्याय करते थे। इन पुतलियों की सहायता से ही राजा की लोकप्रियता एवं न्यायप्रियता दोनों ही बढ़ी। जब राजा भोज इसी सिंहासन पर बैठना चाहते थे। तब क्रमशः बत्तीस पुतलियों ने राजा भोज को एक-एक कर न्यायिक कहानियाँ सुनाई और अंत में सिंहासन को स्वर्ग की ओर ले गयीं। इस प्रकार विक्रमादित्य का यह खेल पुतलियों के प्रचार-प्रसार का एक माध्यम बना।

एक अन्य कथानुसार सेवकराम नामक बड़ई सुंदर एवं आकर्षक खिलौने बनाता था। इन खिलौनों को देखकर बच्चे प्रायः इनसे बतियाते रहते थे। जब सेवकराम इस तरह बच्चों को खिलौनों के साथ देखते, तब उन्हें यह बात खल जाती थी कि काश! ये खिलौने भी बोल पाते। एक दिन शिव-पार्वती भ्रमण करते उधर पहुँचे, खिलौने को देखते ही पार्वती जी ने शिवजी से इनमें प्राण फूँकने का अनुरोध किया, पार्वती की

जिद के कारण शिवजी ने अपनी दिव्य शक्ति से उनमें प्राण फूँक दिये। फिर सभी खिलौने चहचहाने लगे। इसी तरह से बोलती पुतलियों की कल्पना कर कठपुतलियों का खेल आरंभ हो गया। इसी कारण से आज भी कठपुतली खेल शुरू करने के पूर्व शिव-स्तुति की जाती है -

*बैल चढ़ें शिव जी मिले, पूरण हों सब काम।
खेल कठपुतली का करां, लैके हरि का नाम॥*

इस प्रकार पुतली उद्भव संबंधी कथन की पुष्टि होती है। साथ ही मोहन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त खिलौनों का यदि सूक्ष्म अध्ययन किया जाये, तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि उस समय की सभ्यता व संस्कृति में भी पुतलियों का प्रचलन रहा होगा ? क्योंकि खुदाई से प्राप्त खिलौनों के विभिन्न अंगों में छिद्र पाये गये हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन छिद्रों में डोरे या धागा डालकर संचालित किया जाता रहा होगा।

लोकजीवन से जुड़ी कठपुतली कला का जन्मकाल और स्थान के विषय में मतैक्य नहीं है। अनादिकाल से ही पुतलियों या गुड़ियों द्वारा मानव की भूमिका निभाई जा रही है। साथ ही रोचक एवं बाल सुलभ इस विद्या से सभी वर्गों का मनोरंजन होता है। आज भी देश के विभिन्न ग्रामीण अंचलों में पृथक-पृथक नामों से पुतलियों का प्रचलन दिखाई पड़ता है। कुछ क्षेत्रों में केवल एक डंडे या बाँस के सिरे पर मात्र एक हंडिया लटका कर ही किसी का प्रतीक मान लिया जाता था और उसी के अनुरूप उस चरित्र की गाथा सुनायी जाती थी। धीरे-धीरे इसी प्रकार की परम्पराओं से नाटकीय तत्वों का प्रकटीकरण कठपुतलियों द्वारा होने लगा। आदिकाल से ही विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं एवं जादू-टोनों से बचने के लिए किसी न किसी प्रकार से सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग होता रहा है। कुछ पुतलियों एवं प्रतीकों को पारिवारिक एवं सामाजिक देवी-देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया जा चुका है।

भारतीय कठपुतलियों की जन्म स्थली राजस्थान को ही माना जाता है। वहाँ के पारम्परिक पुतलीकारों ने अपनी चंचल अँगुलियों के चमत्कारिक संचालन से जहाँ जन-जन का मन बहलाया, बच्चों से तालियाँ बजवाई व बूढ़ों की आँखों में आँसू तक भर दिये, वहीं जीवनदर्शन भी दिया। समाज को विभिन्न प्रकार से शिक्षित किया। इन पुतलियों द्वारा राजस्थान के साथ ही साथ विभिन्न प्रदेशों के लोक संगीत, नृत्य, वेशभूषा का भी प्रतिनिधित्व होता रहा है। इनके द्वारा भारतीय नाट्य कला, धार्मिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक गाथाओं को गाँव-गाँव तक ले जाने का प्रयास संभव हो पाया है। इस प्रकार से पुतली कला से संबंधित कलाकारों ने लोक शैली एवं कलाओं का सशक्त

माध्यम के रूप में इस्तेमाल कर न केवल भारत में वरन् संपूर्ण विश्व में कठपुतली को विशिष्ट स्थान दिलवाया है। अतः पुतलियों ने न सिर्फ समाज का मनोरंजन किया है अपितु इनके द्वारा शिक्षण एवं मानसिक रोगोपचार भी संभव हो पाया है।

पारंपरिक तौर पर राजस्थान के पुतलीकार नट, भाव, राव, भोजो, भाभी, बलाई और खोरी जाति के होते हैं। इसी तरह अन्य प्रदेशों में पंजाब, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और गुजरात में नट जाति के लोगों को विभिन्न नामों से जाना जाता है। यह नामकरण पुतलियों की बनावट, उनकी वेशभूषा एवं पुतली शब्द के लिए प्रयोग किये जाने वाले स्थानीय बोली व भाषा के आधार पर किया गया है। वर्तमान में प्रचलित भारतीय पुतलियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

दास्ताना पुतली -

यह पुतली हाथ में दस्ताने के रूप में धारण की जाती है। इसे तीन अँगुलियों से संचालित किया जाता है। इसे उड़ीसा में साखी कुंदई, केरल में पापाकुत्तु, पश्चिम बंगाल में बेनी पुतुल व उत्तरप्रदेश में गुलाबों-सिताबों के नाम से जाना जाता है।

छड़ पुतली -

इस प्रकार की पुतलियों को विभिन्न हिस्सों से काटकर डंडियों या छड़ों में बाँध ली जाती है तथा नाटकीय ढंग से वापिक संचालन किया जाता है। इसे पश्चिम बंगाल में पुतुल नाच, उड़ीसा में काठी कुंदई व बिहार में यमपुरी के नाम से जाना जाता है।

धागा (सूत्र) पुतली -

इस तरह की पुतलियों को धागे व डोरे की सहायता से उनके विभिन्न अंगों को संचालित किया जाता है। इसका ज्यादातर प्रचलन राजस्थान में है। साथ ही महाराष्ट्र में कला सूत्र बाहुल्य, कर्नाटक में गोम्बयाटा, तमिलनाडु में बोम्बलाटा, आंध्रप्रदेश में बोम्बलाटा, उड़ीसा में गोपाल्म कुंदई नाच, आसाम में पुतुल नाच, पश्चिम बंगाल में तेरेर पुतुल नाच, त्रिपुरा में पुतुल नाच व मणिपुर में लैथीवी जोगिया के नाम से जानी जाती है।

छाया पुतली -

इस प्रकार की पुतलियों को पहले आकृति व पात्रानुसार विभिन्न अंगों को काटकर पुनः संचालन के योग्य बना ली जाती है तथा इन हिस्सों को पतली सिंकों या छड़ों के द्वारा रात में दीपक या बल्बों के प्रकाश और दिन में सूर्य के प्रकाश द्वारा परदे पर छाया दिखाकर प्रदर्शित

की जाती है। इसे महाराष्ट्र में चामढाचा बाहुल्य, कर्नाटक में टोगलू गोम्बमाटा, केरल में थोल पखा कुत्तु, तमिलनाडु में थोलू बोम्बलाटा, आंध्रप्रदेश में थालू बोम्बलाटा व उड़ीसा में रावणछाया के नाम से जानी जाती है।

छड़ व धागा (मिली-जुली) पुतली -

इन पुतलियों में छड़ व धागे का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है। इस तरह इसे छड़ व धागे (मिली-जुली) से संचालित पुतली कही जाती है। इसे बिहार में चादर दरबार व पश्चिम बंगाल में भी चादर दरबार के नाम से ही जानी जाती है।

मोजे पुतली -

इन पुतलियों का प्रयोग वर्तमान में जिन पुतलीकारों द्वारा किया जा रहा है। इसे पुराने या नये मोजे या कपड़ों में रूई भरकर पुतलियाँ बना ली जाती है तथा विषयानुसार पात्रों का चयन कर दर्शकों के लिए प्रस्तुत की जाती है। इसे कमर तक ही दिखाने का प्रयास किया जाता है। यह पुतली बनाने में आसान व संचालन में सरल है तथा इसका प्रभाव भी काफी मनोरंजक होता है इसका प्रयोग ज्यादातर शहरी क्षेत्रों में ही हो रहा है।

भारतीय पुतलियों के साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से विश्व की पुतलियों की चर्चा की जानी आवश्यक है। समकालीन इतिहास में भारत की तरह विश्व के अनेक देशों में अलग-अलग नामों, प्रकारों, आकृतियों एवं वेशभूषा वाली पुतलियों की जानकारी मिलती है। मिस्र, तुर्की, अरब तथा ईरान जैसे मुस्लिम देशों में पारम्परिक पुतलियों का चलन

है। जो कि भारतीय पद्धति को ही प्रतिपादित करती है। यहाँ रमजान के दिनों में पुतली द्वारा मनोरंजन किया जाता है। तुर्की में करखेज, जापान में डकुंबों, इंडोनेशिया में यांगगोलोक जैसी विश्व प्रसिद्ध पुतलियाँ हैं। भारतीय पुतलियों को विभिन्न प्रदेशों के ग्रामीण अंचलों में प्रतीक के तौर पर पूजा भी की जाती है। इनका सृजन विशेष पर्वों पर किया जाता है। रात-रात भर जागरण कर इनको बनाया, सजाया व विवाह सम्पन्न किया जाता है और अंत में इन्हें विधिपूर्वक उत्सव संपन्न होने के पश्चात् तालाब या नजदीक की नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। छतीसगढ़ में गौरा-गौरी तथा गणगौर इसी तरह की पुतलियाँ हैं। सूक्ष्म अध्ययन किया जाये, तो भारतीय पुतलियों के साथ ही साथ कठपुतलियों का एक विस्तृत इतिहास है। यह समाज को निरंतर शिक्षित, जागृत एवं स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करती रही है। प्राचीनकाल की तरह आज भी इस लोककला की महत्ता व जन संचार के रूप में इसकी उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता है। हालाँकि वर्तमान में प्रचार-प्रसार के आधुनिकतम साधन उपलब्ध है। इन सबके मुकाबले पुतलियाँ आज भी लोक संचार एवं लोक शिक्षण का सशक्त एवं प्रभावी माध्यम हैं। इनके द्वारा लोगों के मन-मस्तिष्क को जागृत एवं शिक्षित किया जा सकता है। यूँ तो कठपुतलियों के सैकड़ों दल हैं जो कि व्यवसायिक हैं। किन्तु मध्यप्रदेश में शौकिया तौर पर प्रदेश व्यापी संगठन “यूनिवर्सल पपेट थियेटर” का गठन किया गया है। इतना बड़ा अव्यवसायी कठपुतली दल शायद भारत वर्ष में कहीं नहीं है। इसमें भिलाई, गुना, बिलासपुर, टीकमगढ़ आदि इकईयाँ तो वर्ष भर कुछ न कुछ कार्यक्रम एवं प्रशिक्षण करते रहते हैं।

लोकगाथा भरथरी

अश्विनी कुमार आलोक

भारतीय समाज में योगियों के संबंध में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। लोकसाहित्य में ध्यान दें, तो आधा साहित्य जादू-टोने, मंत्र-तंत्र और अवैज्ञानिक मनोवृत्तियों को समर्थन देता है। इस देश में, अध्यात्म को इतना अधिक महत्व आरंभ ही से मिला हुआ है, जितना अन्य देशों में नहीं। अध्यात्म अर्थात् स्वयं के सूक्ष्म रूप के दर्शन के कितने सारे मार्ग भारतीय योगियों एवं दार्शनिकों ने अपनी चिंतन-दृष्टि में देखे हैं और उनके वे मार्ग प्रचारित होकर समाज में वर्गों के आधार पर चर्चित हुए और उन्हें अलग-अलग बहुसंख्य मतावलंबियों की मान्यता मिली। उन्हीं योगियों में एक भर्तृहरि या, भरथरी की चर्चा भारतीय हिन्दी साहित्येतिहास के आदिकालीन संत-कवियों के रूप में मिलती है। संप्रदाय और पंथ संबंधी काव्यधारा एवं आध्यात्मिक रूढ़ानों को रेखांकित करती भर्तृहरि की कविताओं का उत्स ठीक तुलसी और कालिदास के जीवनो की तरह गृहस्थ जीवन से विरक्ति के फलस्वरूप ईश्वर भक्ति के निमित्त लिखी गई भावप्रवण रचनाएँ हैं। प्रकार या भावसृष्टि की दृष्टि से यद्यपि इनमें समरसता नहीं है, तथापि इनका उद्देश्य एक ही है। भरथरी की रचनाओं को योगमार्गी रचनाएँ और उनके पंथ को योग या तंत्र साधना संबंधी पंथ के अंतर्गत देखा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य में भरथरी की जितनी चर्चा है, उससे कदाचित् अधिक वे लोकसाहित्य के प्रियपात्र हैं। इसका कारण एक यह भी हो सकता है कि उनका काव्यकाल प्रायः हिन्दी से अधिक हिन्दीपूर्व लोकभाषा का काव्यकाल था, इसके अतिरिक्त भरथरी के अनुयायियों द्वारा उनकी जीवनकथा को एक लोकगाथा का रूप दे डालना भी इसका प्रधान कारण हो सकता है। इनके संबंध में, प्रायः दो किंवदंतियाँ हैं-

एक यह कि भरथरी राज्य की सेवा में इतने समर्पित थे कि गृहस्थ जीवन के प्रति एक तरह से उदासीन से हो गये थे। अत्यंत रूपवती महारानी पिंगला भरथरी जैसे रूपवान, शक्तिशाली एवं यशस्वी पति को पाकर धन्य थी। किंतु, भरथरी का पिंगला के लिए अधिक समय नहीं निकाल पाना और उसकी शारीरिक संतुष्टि को अनदेखा करना भरथरी के जीवन की नयी कथा गढ़ गये। प्राणों से भी अधिक पत्नी को चाहने वाले भरथरी उसकी इस इच्छा को समझ नहीं सके पिंगला को मजबूरन किसी सैनिक के प्रति आसक्त होना पड़ा।

एक बार, भरथरी को किसी साधु से उपहारस्वरूप अमृतफल की प्राप्ति हुई। अपनी पत्नी को अधिक चाहने की वजह से भरथरी ने वह अलौकिक अमृतफल पिंगला को भेंट कर दिया। पिंगला सैनिक पर प्राण न्यौछावर करती थी, इसलिए उसने यह फल उसे दे दिया। सैनिक पिंगला से तो प्रेम करता था किंतु उसके हृदय की मानिनी कोई वेश्या बनी हुई थी, उसने वह फल वेश्या को दे दिया। इधर, वेश्या भी सैनिक से अधिक एक नगश्रेष्ठि पर आसक्त थी। वह फल नगश्रेष्ठि को मिल गया। अब, नगश्रेष्ठि के लिए उसका प्रिय पात्र राजा भरथरी थे। अतः उसने वह फल राजा को उपहारस्वरूप दे दिया। भरथरी के द्वारा पिंगला को दिया गया अमृतफल जब उसी के पास लौट आया और वह भी नगश्रेष्ठि के द्वारा उसे स्वाभाविक चिंता हुई। उसने पता लगाया, तो पिंगला का विश्वासघात देखा। इस तरह, उसने राजकार्य से विरक्त होकर ईश्वर भक्ति के लिए गृहस्थ जीवन को तिलांजलि दे दी।

लेकिन, दूसरी कथावस्तु इससे बिलकुल अलग है। जहाँ पहली कथा पिंगला को भरथरी की पत्नी बताती है, वहीं दूसरी कथा में पिंगला साली है। भरथरी की पत्नी का नाम इस कथा में सामदेई है।

राजकार्य एवं गृहस्थ जीवन से विरक्त होने तथा उस विरक्ति की चरम स्थिति को जानने के लिए आइये लोकगाथा भरथरी के गीतों और कथातत्वों पर दृष्टिपात करें।

उज्जैन राज्य के प्रतापी राजा चंद्रसेन हुए, जिनके पुत्र इन्द्रसेन पिता की तरह ही यशवंत एवं लोकहितकारी सिद्ध हुए। इन्द्रसेन की पत्नी रूपदेई ने भरथरी को जन्म दिया। राजदरबार ही नहीं, प्रजा के घरों में भी उस दिन त्यौहार मनाया गया। बधाई के गीत गाये गये और बाजे गाजे के साथ लोगों ने युवराज के आने का स्वागत नाच-नाचकर किया। राजा ने भी उस दिन अन्न, वस्त्र और गाय दानस्वरूप प्रजा एवं ब्राह्मणों को दिये। युवराज के जन्मलग्न-विचार के लिए काशी के पंडित बुलाये गये। पंडित ने अपनी पोथी-पत्रिका निकाली, तो प्रजा जिस शिशु को भावी युवराज समझने लगी थी, उसके भाग्य में योगी होना लिखा था। रानी रूपदेई ने सुना, तो विकल होकर रोने लगीं। उन्होंने पंडित से विनती की कि पचास घोड़े और हाथी उसे उपहारस्वरूप मिलेंगे, वह शिशु का भाग्य पलट दें। परंतु पंडित ने मना कर दिया। उसने कहा कि भाग्य तो गंगा की धार की तरह है, दाता ने जो लिख दिया, उसे मिटानेवाला कोई नहीं।

*तब बोले पंडित काशी के रानी सुन मेरी बात
लिखनेवाला दाता लिख गया मेटनेवाला कोई नहीं
जैसे गंगा जी की धारा वैसे योग लिखा करता*

*नाम फेरे योग ना घटे रानी सुन मेरी बात
इतना कहा पंडित काशी का रानी सुन मेरी बात*

रानी मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। होश में आयीं, तो पुनः पंडित से अनुरोध किया कि किसी तरह भाग्य बदल दें, नहीं तो उनके प्राण नहीं बचेंगे। पंडित ने फिर समझाया कि अंधा और लंगड़ा पुत्र पाकर भी लोग प्रसन्न होते हैं, यह शिशु तो साक्षात् सूर्य के समान तेजस्वी होगा। योगी होकर घूमते हुए सबको सत्कर्म और ईश्वर प्रेम की शिक्षा देगा, तो उज्जैन के लिए इससे अधिक गौरव की क्या बात होगी।

रानी ने विचार किया। पंडित को पुरस्कारस्वरूप हाथी, घोड़ा वस्त्र और मुहरों का दान दिया। पंडित ने आशीष दिया और काशी को लौट पड़े।

भरथरी बढ़ने लगे और विद्याध्ययन के लिए गुरु के पास जाने लगे। इधर, सिंहलद्वीप के राजा के घर में भी एक सुंदर लड़की ने जन्म लिया। नाम पड़ा सामदेई।

*दोनों सयाने हुए, तो उनके विवाह की बात चलने लगी।
दोनों का विवाह योग मिला और बात आगे बढ़ चली।*

बावन सूबों के सूबेदार और छप्पन गढ़ों की प्रजा को बारात में चलने का निमंत्रण मिला। उज्जैन में लगता था, जैसे मेला हो। बाजे-गाजे और धूम-धड़ाके के साथ बारात सिंहलद्वीप पहुँची।

राज-दरबार में भरथरी की पालकी उतरी, तो भरथरी के सौंदर्य पर किसी की आँख टिकी नहीं। सब भरथरी के माता-पिता के भाग्य को सराहने लगे। लोग सराहने लगे राजकुमारी सामदेई के भाग्य को, भरथरी के साथ जिसका विवाहयोग लिखा है। अब, भरथरी दूल्हा बने हैं, तो उनकी शारीरिक सजावट भी तो देखिये। बावन पाट के जामा और रत्नजड़ित टोप पहने हैं भरथरी। मोरपंख की माला पर मोतियों का गुच्छा तो शोभे-ही-शोभे।

*बावन पाट का तो जामा टोपी रतन जड़ाव
मोर की तो माला जी तिस पर मोतियन का गुच्छा*

विवाह-मंडप पर ज्यों ही सामदेई आयी, भरथरी उसके रूप पर आसक्त हो गये। किन्तु सामदेई का मुखमंडल पीला पड़ने लगा। सामदेई को ज्ञात हो गया कि भरथरी उसके पूर्व जन्मा का बेटा है। अब वही पति बनने के लिए विवाह मंडप पर बैठा है। परंतु सामदेई ने ईश्वर के निर्णय के समुख स्वयं को समर्पित कर दिया और इस तरह विवाह हो गया।

तिलक दहेज के सामानों में सैकड़ों दासियाँ भी थीं, सामदेई की सभी प्रिय वस्तुएँ थीं। पालकी उज्जैन में उतरी। रानी रूपदेई ने अपने पुत्र की तरह अतुलनीय सौंदर्य वाली पुत्रवधू देखकर खुशी से ब्रह्मणों को दान दिया और आदर तथा स्नेह से सामदेई को लिवा लायीं।

कोहबर घर में सोने का पलंग बिछा और चौमुख दीये जला दिये गये। फूलों की सेज बिछी और पूरा कोहबर गमगम करने लगा। छुईमुई की तरह सामदेई पलंग पर बैठी थी कि उधर से भरथरी आ गये। सामदेई का मन फिर धिक्कार कर उठा। पूर्व जन्म का बेटा इस जन्म में उसका पति बनकर उसको भोगने के लिए उपस्थित हुआ है, इतना सोचकर ही वह काँप उठी। उसने ईश्वर का स्मरण किया। भरथरी ने जैसे ही पहला पाँव पलंग पर दिया, हाय रे ईश्वर! कैसा अपशकुन!-पलंग चरमरा कर टूट गया। सोने का नया पलंग टूटा कैसे? आश्चर्य! इधर, सामदेई ने ठाठाकर हँस दिया। भरथरी के क्रोध का ठिकाना न रहा, उन्होंने सामदेई से पूछा - ऐसा अपशकुन आखिर हुआ कैसे! सामदेई टालती गई, पर भरथरी नहीं माने। हारकर सामदेई ने कहा कि यह रहस्य उसकी बहन पिंगला ही बता सकती है, जो दिल्ली में ब्याही जा चुकी है। भरथरी उल्टे पाँव रंगमहल से लौट पड़े और चिंता में पड़ गये। कई वर्षों तक उनमें और सामदेई में नाम मात्र का ही पति पत्नी संबंध रहा। दोनों एक-दूसरे से अलग-अलग ही रहे।

भरथरी ने दीवान से कहलवाकर अपने राजक्षेत्र के बावन सूबों में चिट्ठियाँ भिजवायीं। सूबों के सूबेदारों भोज, तालहन, विक्रम, पृथ्वीसिंह, झन्ना-पन्ना, टोडरसिंह, जाफर खाँ मुगल, बारह सय्यद, गोसाईं भोला गिरि, नित्यानंदलाल आदि को सूचना मिली। सबने लावलशकर को साथ लिया। तालहन ने नौ लाख घोड़ों को अस्तबल से खोलवा लिया। इधर झन्ना-पन्ना दोनों ठाकुर भी तैयार हुए। भोज ने तिरपन लाख घोड़ों के साथ चलने की तैयारी की। जयपुरवाले भोलागिरि ने साठ हजार अशर्फियाँ लीं और उज्जैन को चले। जाफर खाँ के साथ चले नौ लाख साँड़नी सवार। बारह सय्यदों ने एकदम झक्क सफेद नौ लाख घोड़ों के साथ प्रयाण किया। माखनसिंह ने बावन लशकरों को साथ लिया।

बावन सूबों से लोग आ गये, किंतु गढ़ मोहबा से आल्हा-ऊदल दोनों भाई नहीं आये। मंत्री ने सलाह दी भरथरी को कि उन्हें भी बुलाया जाये। क्रोध के मारे भरथरी जैसे जलकर राख हो गये।

*इतना बचन सुनके भरथरी जल बल हो गया खाक
तब तो बोला राजा भरथरी मंत्री सुन मेरी बात
कौन देश कौन वह राजा है हम नेवता देत पठाय*

*कहीं जगह-जमीन का मालिक नहीं दे नेवता पठाय
बीच में देवी उनको वर दिया विधना क्या करता
मार लूट-पाट खाता है नेवता कैसे देत पठाय*

भरथरी ने कहा कि आल्हा-ऊदल कोई राजा नहीं कि उन्हें सादर निमंत्रण भेजा जाये। वे तो देवी के वरदान से लूट-पाटकर खाने में सफल हो जाते हैं। परंतु, मंत्री ने समझाया-बुझाया तब भरथरी ने अपने हाथ चिट्ठी लिखी आल्हा-ऊदल को।

घोड़ा बिंदेला पर दोनों भाई आये। भरथरी ने दोनों भाइयों को पूरी सेना की बागडोर थमा दी।

बारह हजार तुरही और चौदह हजार नाल चिक्कारते चले, सात लाख तंबुओं को बाँध फौज चल पड़ी।

*बारह हजार तुरही बोलता है चौदह हजार कर नाल
सात लाख तम्बू मैदान आ गये उड़ता धूल है आज*

रास्ते में भरथरी प्रजा के दुखड़े सुनते चले, उनकी समस्याओं को दूर करने के आदेश मंत्री को दिये।

भरथरी सदल-बल जब पहुँचे तो दिल्ली के महाराज मानसिंह पिंगला के पास आकर भय से काँपन लगे। पिंगला ने ठाठाकर हँस दिया उसने मानसिंह को धैर्य दिया और कहा कि ईश्वर सबके खाने-पीने का बंदोबस्त कर देंगे। पिंगला ने भोलेनाथ का स्मरण किया, तो उसके हाथ में पाँच अक्षत आ गये। उसने पहला अक्षत दाल-चावल में दिया, दूसरा मेवा-मिष्ठान्न में, तीसरा तेल-फुलेल में, चौथा घी में और पाँचवाँ तालाब में। ईश्वर की कृपा हुई कि संपूर्ण लावलशकर ने छककर खाया-पीया, पर भंडार न घटा।

खाने-पीने के बाद पाँच नौकरानियों ने जाकर पिंगला से मिलने के लिए भरथरी को रनिवास में बुला लिया। पिंगला के बच्चे को आशीर्वाद देने और इधर-उधर की बातचीत के बाद भरथरी ने पिंगला से पूछा पलंग टूटने और सामदेई के हँसने का रहस्य। पिंगला ने इधर उधर की बातों में भरथरी के प्रश्न को टालना चाहा, पर वह मानें नहीं। तब पिंगला ने अचंभेवाली बात कहीं। उसने कहा कि आज शाम वह जब सोयेगी, तो सर्पदंश से उसकी मृत्यु हो जायेगी और तब वह कोइरिन के घर जन्म लेगी। तब उसके प्रश्न का उत्तर दे सकेगी। सचमुच पिंगला मर गई। लावलशकर के साथ भरथरी उज्जैन लौट आये। फिर अकेले योगी के वेश में पिंगला के कहे अनुसार कोइरिन के घर जा पहुँचे। वहाँ हाल ही पिंगला का जन्म हुआ था। कोइरिन को किसी बहाने घर

से बाहर भेजकर भरथरी ने उससे वही सवाल किया। तब पिंगला ने कहा कि वह आज शाम फिर मर जायेगी और सूअर के रूप में उसका जन्म होगा, तभी उसके प्रश्न का उत्तर देगी।

पिंगला सूअर के रूप में जन्मी, कुतिया के रूप में जन्मी, फिर उसका जन्म सियार के रूप में भी हुआ, वह सर्प के रूप में भी जन्मी, पर हर बार भरथरी को अगले जन्म में उत्तर देने का वादा कर टालती रही। अगले अन्य कई जन्मों में भी पिंगला की मौत शिशु रूप ही में हो गई।

इधर, पिंगला जिस दिन दिल्ली की रानी के रूप में संसार को छोड़ चली, उसी दिन से उज्जैन छोड़कर अपने प्रश्न के उत्तर के लिए उसके पीछे भटक रहे हैं भरथरी। उधर, पिंगला और मानसिंह का बेटा बंशीधर बड़ा हो गया है, दूसरी तरफ पिंगला भी ब्याहने लायक हो गई है गढ़ गोदिया के राजा ओढ़म सिंह के घर उनकी पुत्री फुलवा बनकर। संयोग कि कुछ जन्म पूर्व पिंगला के गर्भ से बेटे के रूप में जन्में बंशीधर के साथ फुलवा यानी पिंगला ही का विवाह तय हो जाता है। विवाह के मंडप पर राजा भरथरी बीकू माली का रूप धरे बैठे हैं। ओढ़म सिंह को किसी तरह पता चल जाता है कि उज्जैन से कुछ वर्षों पूर्व लापता हुए भरथरी ही बीकू माली के रूप में बैठे हैं। जब भरथरी से उनका परिचय पूछा गया, तो उनसे झूठ कहा नहीं गया। वह रोने लगे और बता दिया कि वही भरथरी हैं। विवाह मंडप के सभी प्रतिष्ठित लोगों ने तब आदर के साथ भरथरी का चरण स्पर्श किया। डोली दिल्ली के लिए चल पड़ी।

बीच रास्ते में भरथरी ने डोली रुकवा ली और कहा कि पहले तू साली थी, अब पुतोहू हुई। जो तुम्हारा पुत्र था कभी, वही आज तुम्हारा पति बना हुआ है। खैर, मेरे प्रश्न का उत्तर आज दे देना होगा।

फुलवा ने डोली से निकलकर बता दिया भरथरी को जीवन का समूचा दर्शन। उसने कहा कि जिस तरह किसी जनम का बेटा बंशीधर आज उसके फुलवा रूप में जन्मने पर उसी का पति बन गया है। उसी तरह, सामदेई इस जन्म में भरथरी की पत्नी बनी है। किंतु पिछले जन्मों में वह उनकी बेटा और माँ के रूप में भी पैदा हो चुकी है। फुलवा ने कहा कि इस तुच्छ जीवन की नियति यही है। मनमाने, तो इस जीवन के लिए जीया जाये, नहीं तो इससे मुक्ति के लिए योग का रास्ता लिया जाये।

*बोली वचन रानी फुलवा ने राजा सुन मेरी बात
आगे जनम की है माँ तेरी राजा भरथरी
एक जनम कन्या तेरी कुँवर सुन मेरी बात
तेरे सामने बेटा जन्मा विधना क्या करता*

*वह ऐसे ही मैया रानी थी कुँवर सुन मेरी बात
मन माने तो भोग कर ले मन माने योग साध*

इतना कहकर फुलवा डोली में चढ़ी और दिल्ली शहर के लिए डोली चल पड़ी। राजा संसार की नियति से दुःखी हो गये। उन्होंने मन-ही-मन इस निकृष्ट जीवन के लिए ईश्वर को धिक्कारा। उज्जैन लौटे, पर मन बेहद अवसन्न, खिन्न था। रानी सामदेई ने प्यार से हँस-हँसकर बातें कीं। किंतु उनकी ओर से भरथरी ने अरुचि से मुँह फेर लिया। क्रोध से अवश होकर वह शिकार करने जंगल की ओर चले। सामदेई ने मना किया, लेकिन नहीं माने। तब रानी ने पूछा कि जंगल में कुछ अनिष्ट हो गया, तो उसके इसका पता कैसे चलेगा? भरथरी ने कहा कि आँगन की तुलसी जिस दिन सूख जायेगी, समझना भरथरी इस संसार में नहीं। भरथरी ने बावन लाख की कलंगी सिर पर रखी है, नौ लाख के कुंडल पहने कानों में और लाखों का हार गर्दन में डाल लिया। सज-धज कर सल्ला कमान लिया और फाँदकर घोड़े पर चढ़ लिए। भरथरी का सौंदर्य देख दिग्-दिग्गंत तृप्त हो रहे हैं।

*बावन लाख को कलंगी कुँवर लिया सिर पर डारी
कानो कुंडल नौ लाख का गले लाखों का हार
बाँहों पर लाख कुँवर बाँध लिया विधना क्या करता
सल्ला कमान उनके बगलों में काबुल का बछेड़ा
फाँद के सवारी घोड़ा कर लिया
गंगा जमुना चाबुक शोभित हैं उनके हाथ
घोड़िया से हो पाँच पोर की किल्ली है उसके नाम
क्या रे चाँद तेरी चाँदनी जैसे जनमवा का चाँद
हाय रे सकल राजा भरथरी को विधना क्या करता*

सिंहलद्वीप के जंगल में सत्तर सौ मृगाओं को एक काले मृग के पीछे बावरी होकर चलते देखा। भरथरी जब काले रंग के मृग पर बाण साधने लगे, तब बेहद विनीत ओर आहत स्वर में कई मृगाओं ने मना करते हुए कहा कि यदि उन्हें शिकार खेलने का शौक है, तो मृगाओं में से कुछ को मार लें। एक काले मृग के मर जाने से सत्तर सौ मृगाओं को वैधव्य का दुःख झेलना पड़ेगा। परंतु, भरथरी नहीं माने, काले मृग पर लगातार कई बाण चला दिये। मरते-मरते काले मृग ने सींग अवधूत को और माँस गिद्धों को दान दे देने की प्रार्थना की और खाल का आसन बनाने की इच्छा व्यक्त की।

सत्तर सौ मृगाओं ने दुःखी होकर भरथरी को शाप दे दिया- जिस तरह मृग की सत्तर सौ स्त्रियाँ विधवा हुई हैं, उसी तरह भरथरी की स्त्री भी पतिविहीन हो जाये और उनका महल सूना हो जाये।

मृगाओं के दुःख से भरथरी द्रवित होकर मृग को जिलाने का उपाय खोजने लगे। उन्होंने फिर ईश्वर को धिक्कारा कि प्राण लेने का कौशल उसने मनुष्य को दिया, लौटाने का क्यों नहीं। भरथरी योगीश्वर गोरखनाथ के पास पहुँचे, उनके पीछे-पीछे सत्तर सौ मृगाएँ पहुँची। गोरखनाथ ने कुछ क्षण बाद मृग को प्राणदान दे दिया, तब सावन के मोर की तरह सत्तर सौ मृगाएँ नाचने लगीं। भरथरी को लगा कि संसार से मुक्ति का मार्ग गुरु गोरखनाथ के सिवा और नहीं। उन्होंने गोरखनाथ से आग्रह किया कि भरथरी को शिष्य रूप में ग्रहण करें। गोरखनाथ ने कहा कि अभी उनकी रानी ने पत्नी होने का कोई सुख नहीं भोगा, अतः भरथरी कुछ दिन पत्नी के साथ रह लें, उसके बाद उनकी शरण में आ जायें। परंतु, भरथरी नहीं माने। उन्होंने सारे राजसी आभूषण उतारकर गोरखनाथ के हवन-कुंड में रख दिये और अंगों में भभूत लगाकर योगी बन गये। ऐसा देख, कैलाश पर तपलीन भोलेनाथ का हृदय द्रवित हो गया, इन्द्र का आसन डोल गया। ब्रह्मा मुँह और आँखें बंदकर शोकाकुल हो गये।

*शिवजी कल्पे कैलाशों में इन्द्रासन डोलने लगा
मुख ब्रह्मा जी जो बंद किया जुलुम भइल हो राम*

उधर, उज्जैन में तुलसी सूख गई और भरथरी की मृत्यु का आदेश कर रानी सामदेई विलाप करने लगीं। रानी का विलाप देख संपूर्ण उज्जैन शोकाकुल हो गया। हाथी-घोड़े सब घबराने लगे। महल का स्वर्णबुर्ज ढह गया। विधवा की तरह, सारे आभूषण और वस्त्र त्याग कर सामदेई कई दिनों बेहोश होकर आँगन में पड़ी रहीं।

एक दिन सेविकाओं ने आकर सूचना दी कि कोई योगी रानी के हाथों भिक्षा लेने की इच्छा से द्वार पर धूनी रमाकर बैठा गया है।

सामदेई ने अपनी सखी-सी नौकरानी चंपा से कहा- जब उग्र भर की एकादशी और चौबीस लाख ब्राह्मणों को दिया गया दान काम नहीं आया, भोलेनाथ पर चढ़ाया गया बारह लाख काँवर जल का पुण्य जब मेरे दुःख को टाल नहीं सका, तो एक योगी को दान देने से क्या लाभ होगा। चंपा! जाकर कह योगी से कि रानी के करम में आग लग गई है, वह दूसरी ड्योढ़ी भिक्षाटन को निकल जाये।

चंपा ने जाकर वैसे ही कह दिया योगी से। पर योगी माना नहीं। तब, विवश होकर पर्दे की ओट से सामदेई ने सारा हाल कह सुनाया।

तब, योगी ने कहा कि कुँवर मरा नहीं है, उसने अपना रूप बदल लिया है। उसने अपने सारे आभूषण दान कर दिये हैं। सिंहलद्वीप के पास समुद्रतट पर उसकी भेंट हुई थी कुँवर से। उसने उसे सोने का कंगन

उतार कर दिया है। कुँवर जीवित है। योगी ने कंगन उतारकर दिखाया, तो वह जैसे मरे से जी गई। उसने आदेश दिया कि ऐस शुभ संदेश देने वाला योगी अवश्य कोई सिद्ध पुरुष है, इसके रहने और खाने-पीने का विशेष प्रबंध कर दिया जाये तथा दानस्वरूप पाँच सौ अर्शफियाँ दे दी जायें।

कई दिनों तक योगी धूनी रमाये बैठा रहा। एक दिन उसने रानी से आग्रह किया कि वह अपने हाथों दान देकर उसे विदा करे। परंतु सामदेई ने दासी चंपा के हाथों भिक्षा भेज दी। उस दिन कहलवा भेजा कि जिस दिन कुँवर लौट आयेंगे, उसी दिन अपने हाथों से उसे ढेर सारे उपहार देगी। रानी सामदेई का संदेश सुन योगी ठठाकर हँस पड़ा। मोतियों-से दाँतों की चमक देख चंपा ने पहचान लिया- अरे! यह तो साक्षात् कुँवर महाराज है।

चंपा के पाँवों में पंख लग गये, वह सामदेई के सम्मुख जाकर कहने लगी कि वह योगी और कोई नहीं कुँवर महाराज भरथरी हैं। सुनकर सामदेई रोने लगी, उसने क्रोध के मारे चंपा के लिए फाँसी का आदेश दे दिया, उसने कहा कि यह ईश्वर का ही कोप है कि आज समय बिगड़ा है तो अपनी सखी-सी दासी योगी लगाकर उसे गाली दे रही है।

कार्तिक मास की एकादशी। चंपा ने आग्रह किया कि गंगा-स्नान और शिवपूजन के बाद उसे फाँसी दी जाये। गंगा स्नान करने के बाद चंपा ने आँचल फैलाकर दीनानाथ महादेव का स्मरण किया।

फाँसी घर के लिए चाण्डालों ने चंपा की डोली उठा ली। चंपा ने ड्योढ़ी के समीप आकर चांडालों से आग्रह किया कि एक बार योगी के दर्शन करा दें। चांडालों ने चंपा की अंतिम इच्छा पूरी की। योगी वेश में आये भरथरी ने जब चंपा से उसकी फाँसी की बात सुनी, तब अपना असली रूप प्रकट किया और चांडालों से मुक्त कराकर चंपा को सामदेई के पास ले गये। उन्होंने सामदेई को बतला दिया कि चंपा का कहा झूठ नहीं है।

सामदेई और भरथरी की आँखें मिलीं, लगा जैसे पानी के बिना तड़पती मछली को एक बूँद का आधार मिल गया। सामदेई चंपा के पैरों में गिर पड़ी- ब्रह्मा ने तुझे बचा लिया।

*चारि चश्म मिल गया जो रानी सामदेई आज
मीन तलफे जल बिन योगी योगवा बिना
गृहस्थ तलफे जल बिन योगी योगवा बिना
लौंडी के चरणों पर गिर गई रानी सामदेई
विधना क्या करतार ब्रह्मा ने तुझे लिया बचाया*

फिर, सामदेई भरथरी के पैरों से लिपटकर रोने लगी। उसने कहा यदि योगी ही बनना था, तो उस दिन क्यों नहीं बने, जिस दिन माँ-बाबा की गोदी में थे। आप योगी हो गये, तो मेरा क्या होगा? भरथरी मौन रहे, उनके चेहरे पर महाशून्य का भाव था। वह चलने को हुए, तब रानी सामदेई भी साथ चलने को तैयार हुई। किंतु, भरथरी ने उसे रोक दिया, उन्होंने कहा- 'सारे रिश्ते तो केवल नाम के हैं। असली रिश्ता तो मनुष्य का ईश्वर से है। उन्हें ही प्राप्त करने को निकला हूँ मैं।' भरथरी ने सामदेई को पुकारा - माँ, भिक्षा दो।

ड्योढ़ी पर जुटे सारे लोग भौचक्के रह गये। रानी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी-भरथरी ने माँ कैसे कह दिया पत्नी को?!

सामदेई ने चंपा को भरथरी के बहिनोई और गढ़ झुनवा के राजा त्रिलोकचंद के पास भेजा तथा भरथरी को मनाने के लिए भरथरी की बहन मैनावंती और भांजे गोपीचंद को बुलवाया। भरथरी के योगी होने की

सूचना पाकर मैनावंती मूर्च्छित हो गिर पड़ी। गोपीचंद ने तो प्राण ही त्याग दिये। अब, उलटे पुनः उज्जैन सूचना गई। भरथरी ने आकर दोनों को योगबल से प्राणदान दिया।

उज्जैन और गढ़ झुनवा की प्रजा में हाहाकार मच गया। भरथरी ने सभी औरतों को माँ कहकर भिक्षा ली। सामदेई और बहन मैनावंती भी आँखों में आँसू भरकर योगी भरथरी के लिए भिक्षा ले आयीं। जैसे सबके प्राण लेकर राम अनुज और पत्नी के साथ वन को गये थे, भरथरी भी चले। अंग भभूत, गेरूआ वस्त्र, हाथ में खप्पड़; अमित ध्वनि-“अलख निरंजन!”

सारे वन उपवन मौल्हाने लगे, एक-एक कर सारी स्त्रियाँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं, पुरुषों का पौरुष उनके शरीरों का साथ छोड़ चला और सामदेई? सामदेई के प्राण तो कब के उड़ चले, शायद भरथरी के पद चिह्नों का अनुगमन करते।

राई नृत्य की आत्मा-होड़

माधव शुक्ल मनोज

(बुन्देलखंड की बुजुर्ग लोक नर्तकी धनकुँअर बाई से बातचीत पर आधारित आलेख-सम्पादक)

ब्रिटिश काल में राई नृत्य का सम्मान राजा-महाराजा-जागीरदारों-मालगुजारों ने बड़ी शान-आन से किया है। ऐसे दिग्गज लोगों के सामने राई-नृत्य के बीच में होड़ होती थी। जो अब नहीं होती है। जबकि राई नृत्य की आत्मा होड़ है। होड़ के ही प्रदर्शन में नर्तकी और नर्तक की चपलता-सतर्कता और नृत्य कौशल देखा जाता था। होड़ के आयोजन में कोई निर्णायक समिति की आवश्यकता नहीं होती थी। उस होड़ को देखकर अपने आप सही निर्णय सर्व-सम्मति से उपस्थित ग्रामीण जनता तालियाँ बजाकर दे देती थी।

राई नृत्य सन् 1981 तक हेय दृष्टि से देखा-समझा जाता था। सभी उसे अश्लील वैश्या नृत्य कहकर उसका तिरस्कार करते थे। किसी ने भी राई नृत्य के कलापक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया। मेरे द्वारा बुन्देलखंड के राई नृत्य पर शोध कार्य कराया गया और आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल ने एक मोनोग्राफ प्रकाशित किया। रवीन्द्र भवन भोपाल में मोनोग्राफ के लोकार्पण के साथ प्रथम बार नगरीय मंच पर राई नृत्य प्रस्तुत किया गया। फिर भारत भवन और कला परिषद् में तो उसने धूम मचा दी। लोगों ने राई नृत्य के कलापक्ष को जाना और उसे सराहा। यहाँ तक कि राई नृत्य जापान में भी आमंत्रित किया गया। मन को भाव विभोर कर देने वाले राई नृत्य को तो विदेशियों ने हाई डिस्को की संज्ञा दे डाली। बुन्देली लोक नृत्यों की रानी राई नृत्य ने पूरे देश को अपनी कला कौशल से आकर्षित किया है।

ग्राम पथरिया (सागर) की जानी-मानी राई नृत्य पारंगत बुजुर्ग नर्तकी धनकुँअर बाई जिनकी उम्र लगभग पैसठ साल होगी। मैंने उनसे होड़ के बारे में जानना चाहा। वार्तालाप के दौरान सबसे पहिले उन्होंने बतलाया मेरी माँ की सहेली परमिया बेड़नी (नर्तकी) थी। मेरी माँ और परमिया बाई दोनों एक साथ नृत्य करने जाती थी। नृत्य सिखाने की दृष्टि से वे कभी-कभी मुझे अपने साथ ले जाती थीं। उस समय मेरी उम्र बारह-तेरह साल की होगी।

‘उस समय कौन-कौन मृदंगिया नर्तक आपकी माँ को साथ लेकर नाचते थे’- मैंने पूछा।

‘मेरी माँ के साथ नाचने वाले भापेलग्राम के कुदऊँ। बरखेड़ा जैसीनगर के कुंजीलाल और सागर के कनई घोषी मशहूर माने हुए नर्तक थे’।

‘इतनी ढलती उम्र में आज आप कितना अच्छा राई नृत्य नाच लेती हैं। युवापन में तो आप कहर ढाती होंगी-’ मैंने कहा।

मेरी बात सुनकर धनकुँअर बाई के चेहरे की झुरियाँ एक हँसी के ठहाके में सुर्खलाल हो उठीं। बुढ़ापे के अन्दर छिपी बैठी हुई उनकी जवानी ने नाजुक अदा में कहा- ‘आप सच कह रहे हैं- पंडित जी मैं उन दिनों बुन्देलखंड की मोरनी थी’।

‘आप को कभी किसी मृदंगिया या ढोलकिया ने होड़ लेकर हरया है’- मैंने पूछा?

‘मैं आज तक किसी से भी नहीं हारी बल्कि मैंने ही दो मशहूर मृदंगियों (नर्तकों) को हरया है। क्योंकि वे बड़े घमंडी थे। अपने सामने वे किसी को कुछ नहीं समझते थे। वे मृदंगिया शायद आज भी जीवित हों। उसने उन मृदंगियों के नाम नहीं बताये’।

‘आपने किस ताल-मुद्रा में उन्हें हरया था’?

‘एक को कोण की ताल पर अपने घाँघरे में फाँते-बेताल करते हुए और दूसरे को ढड़कचका की ताल पर उठा बैठकी में उसे लांघते हुए।

फिर उसने बताया की हार जीत के लिए होड़ में तीन विशेष मुद्राएँ (स्टेप) होती हैं- कोण, बैठकी और ढड़कचका। ये तीनों मुद्राएँ (स्टेप) नर्तकी और नर्तक को खतरनाक होती हैं। इन तीनों मुद्राओं को प्रदर्शित करते समय नर्तक और नर्तकी दोनों को सावधान सतर्क रहना पड़ता है- इसलिए कि नर्तक या नर्तकी अपनी मस्ती में कभी अनायास होड़ की मुद्रा का प्रयोग कर किसी को भी किसी क्षण लज्जित कर सकता है।

‘ऐसी अद्भुत मनोरंजन होड़ का प्रदर्शन चुनौती देकर क्यों नहीं दिखाया जाता’- मैंने पूछा?

‘पंडित जी; आज के युग में किसी से होड़ लेना बहुत ही खतरनाक है। अपनी जान जोखिम में डालना और बैर-भाव पालना अब बस की बात नहीं है’।

‘आप ऐसा क्यों सोचती हैं। मुझे स्पष्ट निसंकोच बतावें-’ मैंने पूछा।

धनकुँअर कुछ देर मौन रही। मैंने फिर उसे उकसाया और अपनी जिज्ञासा को सामने रखा। वह बोली-वह जमाना गया। जब राजा-

महाराजा-जागीरदार-मालगुजार थे। जिनके आमंत्रण पर मैं सजधज कर जाती थी और निर्भय होकर नाचती थी। मजाल कि कोई ऐरा गैरा उन प्रतिष्ठित लोगों के सामने छू सके, मुझसे रसिया सके, बरजोरी, ठिठौली कर सके? ऐसी धृष्टता करने वालों के हाथ-पैर तुड़वा दिये जाते थे। मुझे मुजरा भी हैसियतदार धनीमानी लोगों द्वारा भरपूर दिया जाता था। बड़े लोगों के सामने छोटे कद हैसियत के लोग मुझे मुजरा देने में- हिचकते-भयभीत रहते थे। बड़े लोग ही मुझसे चुहुलबाजी मसखरी कर सकते थे। वे अपनी रसिकता को मुझ पर जाहिर करने के अधिकारी थे। यदि मैं- आज किसी नर्तक को होड़ लेने के लिए चुनौती देकर नृत्य करूँगी तो लाठियाँ उठ खड़ी होंगी। छुरा-कतन्ना चल जायेंगे। गाली-गलौज होंगी। द्रुन्द युद्ध शुरू हो जायेगा। तब एकत्रित जनता तिग्गभिग्ग हो घरों में घुस जायेगी। जो भी हारेगा उसकी ओर की सौबत-मंडली हाय तोबा मचाने लगेगी। मेरी सुरक्षा का बन्दोबस्त कोई माई का लाल नहीं करेगा। नर्तक या नर्तकी बे मौत मारी जायेगी। या फौजदारी का कानून जेल में टूंस देगा। होड़ लेने का जमाना अब नहीं रहा-पंडित जी’?

‘तुम सच कहती हो धनकुँअर? मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ।’

उससे यह कहकर मैं सोचने लगा-वाकई राई नृत्य में चुनौती देकर होड़ लेना आज के युग में बहुत ही कठिन समस्या है। गाँव-गाँव, गली-गली हर जगह दादागिरी, गुन्डागिरी, दारूखोरी, नेतागिरी ने अनुशासन, मर्यादाओं, लोकाचारों को कुचल कर रख दिया है। भय इतना निर्भय स्वतंत्र हो गया है कि उसकी व्याख्या कोई विद्वान लेखक, पत्रकार नहीं कर सकता। फिर भी होड़ जैसी कलात्मक मनोरंजक कला लुप्त क्यों हो जाये। वह कहने मात्र स्मरण को क्यों रह जाये। हम उस कला छवि को उजागर करने हेतु उसे मंच पर नाटकीय रूप में मिलजुल कर प्रस्तुत तो कर सकते हैं। ऐसा विचार आते ही मैंने फिर धनकुँअर से बातचीत शुरू की।

धनकुँअर बोली राई नृत्य की जान और शान होड़ ही है। होड़ लेने में राई नृत्य की कला खुलकर उजागर होती है। जनता आवाक तन्मय हो उसे देखती और आनंदित होती है एवं उस कला कौशल को मुक्त कंठ से सराहती है। किस नर्तक का किस नर्तकी से होड़ है। इसकी सूचना-आमंत्रण आसपास के पड़ोसी गाँवों-कस्बों में भेजा जाता था। होड़ रचाने वाले जागीरदार-मालगुजार की बधाई नाची जाती। घर-घर दुहाई गूँजने लगती थी।

एक उसांस लेते हुए धनकुँअर ने कहा अब वे दिन कहाँ हैं। फिर भी हम सभी नर्तक-नर्तकियाँ इस नृत्य कला के लिए निष्ठावर हैं। मैं इतना चाहती हूँ कि इस राई नृत्य कला-होड़ का समाज में मान-सम्मान हो। आदर की दृष्टि से हम लोगों को देखा जाये। यह कला अपने

कलाकार के प्रति कितनी सजीली लजीली मर्यादित है। यह जानने समझने के लिए मैं तुम्हें होड़ लेने की भावुक आत्म समर्पित एक सच्ची कहानी सुनाती हूँ। किन्तु मैं नर्तकी और नर्तक का नाम नहीं लूँगी। धनकुँअर ने कुछ स्मरण कर अपना सिर माथा ऊपर उठाया। आकाश को इकटक निहारा और धरती को दोनों हाथ जोड़ नमन कर बोली यह छोटी सी कहानी मृदंग बजाने वाले एक नौजवान नर्तक की है। उस नर्तक ने अपनी साहसी होड़ की कहानी मुझे इन शब्दों में इस प्रकार सुनाई :-

मुझे गाँव के लम्बरदार ठाकुर साब की बारात में जाने का अवसर मिला। जब भी गाँव की बारात जाती है। उसके साथ हास्य विनोद के लिए नाचने-गाने की सौबत-मंडली भी जाया करती है। मुझे और मेरी सौबत को आमंत्रित किया गया था। मैं अपनी सौबत के साथ सभी लोक वाद्यों को लेकर गया था। इसी उद्देश्य से कि रात्रि में मजा-मौज के लिए भजन-लोकगीत गाऊँगा मस्ती में नाचूँगा।

उस गाँव में गोधूलि बेला (सांयकाल) में बारात स्वागत-सत्कार के साथ ली गई। परम्परानुसार कन्यापक्ष और वर पक्ष के लोगों का मेल-मिलाप परिचय सम्मान धूमधाम से हुआ। फिर कन्या पक्ष की ओर से एक चौकाने वाला प्रस्ताव रखा गया कि बारात में लोक नर्तक मृदंगवादक अपनी सौबत सहित आया है। हम सभी ग्रामवासी उस राईया नर्तक को चुनौती देते हैं कि वह हमारे गाँव की बेड़नी (नर्तकी) से होड़ लेवें। वे यहाँ की बेड़नी को हराकर जायें या स्वयं हार कर जायें। इस चुनौती को स्वीकार करने के पश्चात् ही कन्यादान होगा।

यह सुनकर मैं आवाक् रह गया। मुझे डंके की चोट पर चुनौती दी गई थी। मैं उस समय हृष्ट-पुष्ट था। जवानी का खून खौल रहा था। भला मैं ऐसी ललकार भरी चुनौती कैसे अस्वीकार कर सकता था। मैंने वह चुनौती सहर्ष स्वीकार कर ली।

बारात ली जाने के पश्चात् उसी क्षण मुनादी (सूचना) करा दी गई कि अभी थोड़ी देर में कन्या पक्ष के बाड़े में होड़ के साथ राई नृत्य होगा। विवाह समारोह में आसपास के पड़ोसी ग्रामवासी उपस्थित तो थे ही? वे यह खबर सुनकर अतिप्रसन्न हुए। वे पालथी मार कर बैठ गये और चिलम-तम्बाखू धौकनें लगे।

मैं सजधज कर तैयार हो अपनी सौबत के साथ बाड़े में पहुँचा। जब मैंने बेड़नी को देखा तो मुझे पसीना आ गया। बेड़नी साढ़े पाँच फुट की तन्दुरुस्त चंचल गौरवर्ण सुन्दर थी। जिसके बारे में मुझे गाँव वालों से ही जानकारी मिल गई थी कि वह कोण की मुद्रा-स्टेप लेकर मृदंगिया को अपने सौ चुन्नटदार घाँघरे में ढँक लेती है। फिर भी मैं उत्साह के

साथ मुस्कराता अपनी कम्मर में सुसज्जित मृदंग को बाँधने लगा। जब लोगों ने मुझे देखा कि यह पाँच फुट का बौना छोकरा इस सयानी हट्टी-कट्टी बेड़नी से होड़ लेगा। तब सभी हँसने लगे और कहने लगे- क्यों व्यर्थ में बेचारे छोकरे के हाथ-पाँव तुड़वाने के लिए इस पहाड़ सी ऊँची बेड़नी के सामने खड़ा कर दिया है।

यह सुनकर मैं बहुत शर्मिन्दा हुआ। नृत्य होने के पहिले ही ऐसी व्यंगपूर्ण ताना-हँसी और अपमान? जिसे मैंने धैर्य धारण कर सह लिया। और होड़ लेने के लिए तैयार हो गया। बेड़नी भी मुझे देख तुच्छ सा समझ घमंड से मुस्कराई। मेरी सौबत ने गीत उठाया। बेड़नी भी सभी वाद्यों-दिशाओं को नमन करती हुई जनता से घिरे विस्तृत मैदान में नृत्य की उड़ान भरने लगी। मैं अपनी मृदंग बजाता हुआ चकरी की ताल पर उसे बहुत देर तक नचाता रहा ताकि वह पसीने से लथपथ हो थक जाये। पश्चात् मैंने तेजी के साथ एक ओर से कोण की ताल लेकर अपने मृदंग की गुमकिया गुँजाता हुआ- दर्शकों से घिरे हुए बीच मैदान में दौड़ गया। तब बेड़नी भी मेरे पीछे बाज की तरह झपट्टा मार अपने घाँघरे में फँसाने के लिए दौड़ी। वह अर्धकोण को चीरती हुई मेरे सामने आ गई। उसने अपने दाहिने हाथ से छोर का घाँघरा मेरे ऊपर घुमा कर फँका। मैं उसमें फँस सकता था- यदि मैं सतर्क न होता, या मुझे इसकी जानकारी न होती। मैं फुर्ती के साथ झपक मारते ही दो कदम पीछे हट गया। बेड़नी का घुमावदार घाँघरा ऊपर उठा ही था और उसके साथ ही उसका दाहिना पाँव? मैंने उसी क्षण तपाक से बैठकी लेते हुए उसके बायें पैर में अपने दाहिने पैर से लती मारी। मैंने देखा बेड़नी का दाँव निरर्थक हो गया। वह चौखाने चित्त होकर धरती की धूल झाड़ने लगी। उसकी चूड़ियाँ चुरक गई थीं। उसके दोनों हाथों की टिहुनियाँ धरती से रगड़ कर छुल गई थीं। यह देख सभी मेरी इस अनोखी जीत पर विस्मृत हो हर्षध्वनि के साथ वाह-वाह कहते तालियाँ बजाने लगे। मैं हर्ष-उल्लास से नाचता अपनी मृदंग बजाता हुआ अपनी सौबत के बीच में आयी गया।

बेड़नी ने शायद यह सोचा नहीं था कि मैं इस छोकरे से हार भी सकती हूँ। उसका अभिमान चूस-चूर हो गया था। वह चुपचाप उठकर एक ओर चली गई। वहाँ जाकर उसने अपने तन से घाँघरा चुनरी और पाँव के घुँघरू उतारे और एक साधारण सी धोती पहिन कर मेरे सामने उपस्थित हो गई। उसने घुटने टेक अपने दोनों हाथों से घाँघरा, चुनरी, और घुँघरू मेरे चरणों में रख दिये। मुझे झुककर नमन किया और फिर बोली मुझे आज तक के जीवन में हराने वाला ऐसा फुर्तीला मृदंगिया राई नर्तक नहीं मिला।

ऐसी पवित्र भावना और अद्भुत-समर्पण, अपनी कला के प्रति कलाकार का सम्मान कितना मार्मिक-हृदयस्पर्शी है।

बुन्देलखण्ड के साहित्यिक सप्तर्षि

वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

*इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।
छत्रसाल सो लरन की रही न काहू होस॥*

साधारणतः बुन्देलखण्ड की यही सीमा मानी जाती है और कहा जाता है कि राजस्थान की भाँति बुन्देलखण्ड नाम भी एक नयी कल्पना है जिसको चार सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं माना जा सकता है। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग विन्ध्यवटी में स्थित होने के कारण इसका नाम विन्धेलखण्ड पड़ा, जो आगे चलकर बुन्देलखण्ड में बदल गया। इस सम्बन्ध में श्री गोरेलाल तिवारी ने 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है:-

भारतवर्ष के मध्य भाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं से सभाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि में सौंदर्यलंकृत जो प्रदेश है, उसे बुन्देलखण्ड कहते हैं। समय-समय पर इसका नाम दशार्ण, वज्र, जैजाक-मुक्ति, जुझौति, जुझारखण्ड, विन्धेलखण्ड भी रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विन्ध्यवटी में स्थित होने के कारण इस प्रदेश का नाम विन्धेलखण्ड पड़ा। बाद में अपभ्रष्ट होकर बुन्देलखण्ड कहलाया। इस भू-भाग में उत्तर में यमुना का प्रचण्ड प्रवाह, पश्चिम में मन्द-मन्द बहने वाली चम्बल और सिन्ध नदियाँ, दक्षिण में नर्मदा नदी और पूर्व में बघेलखण्ड है।

हमारा यह बुन्देलखण्ड सदा से ही एक पिछड़ा हुआ भू-भाग रहा है, तो भी इस क्षेत्र का अपना अलग इतिहास है, संस्कृति है और भूमि भी यहाँ की ऐसी वीर-प्रसूता है कि जिसने महारानी लक्ष्मीबाई, महाराजा छत्रसाल, राजा हरदौल आदि जैसे वीर सेनानी दिये हैं तो वेदव्यास, तुलसीदास, आचार्य केशवदास, मैथिलीशरण गुप्त जैसे विश्वविख्यात साहित्यकारों की मातृभूमि होने का सौभाग्य भी इस प्रदेश को मिला है। बुन्देलखण्ड की साहित्यिक गरिमा भी अत्यन्त समृद्ध है जहाँ मध्यकालीन साहित्य में निर्गुण तथा सगुण दोनों ही भक्ति धाराओं की स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई है। ज्ञानाश्रयी-प्रेमाश्रयी, कृष्ण भक्ति, रामभक्ति आदि सभी शाखाओं के कवियों ने साहित्य का सृजन किया है। इस प्रकार प्रारम्भ से

लेकर आज तक इस भू-भाग में न जाने कितने छोटे बड़े ऐसे रस सिद्ध कवि हुए हैं जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय प्रतिभा तथा लगन का परिचय दिया है। हमारी इस रचना का सम्बन्ध केवल उन सात रससिद्ध कवियों से है। जिन्हें साहित्य सेवियों के इस अथाह सागर के एक निर्जन कोने में अज्ञात पड़ा रह जाना पड़ा है किन्तु जिन्होंने बुन्देलखण्ड को अपने जन्म, निवास तथा साहित्य से धन्य किया है। वे इस प्रकार हैं :

स्वर्गीय पीताम्बर भट्ट 'रमाधर'-

स्व.पं. पीताम्बर भट्ट 'रमाधर' का जन्म गोरिहार जिला छतरपुर (म.प्र.) में चैत्रवदी प्रतिपदा, सम्वत् 1918 को हुआ था। पद्माकर जैसे अनेक कवियों को जन्म देने वाले जिस परिवार में उनका जन्म हुआ था वह भारद्वाज गोत्रीय तैलंग ब्राह्मण परिवार था। श्री गिरधर भट्ट उनके वंश में काफ़ी विद्वान कवि हुए थे जिनसे प्रभावित होकर सम्वत् 1911 में गोरिहार नरेश श्री रूद्रसिंह ने उन्हें अपने दरबार में बाँदा (उ.प्र.) से बुलाकर राजकवि तथा आचार्य नियुक्त कर लिया। इन्हीं गिरधर जी के आत्मज थे गंगाधर जी, जो एक बड़े रससिद्ध प्रख्यात कवि हुए। श्री गंगाधर जी सं. 1934 में टीकमगढ़ के महाराज प्रताप सिंह जू देव के दरबार में चले आये। इन्हीं गंगाधर जी के सुपुत्र हमारे वर्ण्य कवि श्री पीताम्बर भट्ट (रमाधर) जी हुए जो सम्वत् 1944 में अपने पिताजी के स्वर्गवासी होने पर राजकवि नियुक्त हुए वे रीतिकालीन परम्परा के पूर्ण परिपालक कवि थे तथा ब्रज भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे काव्य शास्त्र के भी अच्छे अध्येता तथा जानकार थे 'रमाधर' उनका उपनाम था और 'जीवेश शरदं शतम्' के अनुसार 104 वर्ष की लम्बी आयु के अन्तिम दिनों तक माँ सरस्वती की सेवा स्वस्थ इन्द्रियों सहित करते रहे। ओरछा राज्याश्रम में रहते हुए उन्होंने अनेक स्फुट रचनाओं 'उपवन विनोद,' 'प्रताप भूषण,' 'शुक्रनीति' तथा 'प्रताप प्रभाकर' नामक चार ग्रंथों का सृजन किया था। उनकी भाषा ब्रज थी जिस पर बुन्देली की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। रचनाएँ बड़ी सरस, सरल तथा हृदयस्पर्शी हैं जिनमें भावों की सरसता एवं सुबोधता लाने के लिए कवि तत्सम एवं तद्भव शब्दों के साथ-साथ ऊर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग भी करता है। उनकी साहित्यिक सेवाओं के सम्मान स्वरूप ही उन्हें कविकुल की उपाधि से सम्मानित किया गया था। ऋतु-वर्णन तथा अलंकारों के प्रयोग में उनकी रचनाओं पर रीतिकालीन कवि पद्माकर तथा सेनापति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। शरद ऋतु का वर्णन करते हुए शब्द चयन एवं अनुप्रास की छठा दर्शनीय है :-

लहर लतान लाखे ललित लवंगन की,
लीन लवलीन लागे लपट लुनाई है।

कलित कलाधर कमोदनी कालीन किल,
कुन्द कदनारू अनार सुखदाई है॥
भनत रमाधर मनोज मणि मन्दिर में,
मालती मलिन्द मकरन्द मनभाई है।
सरिस सरसि सर सागर सलिल सेई॥
सुन्दर सरोज सुचि सरद सुहाई है॥

कविवर पद्माकर की ऋतु शैली से प्रभावित होकर श्री रमाधर जी ने उनके (पद्माकर) 'बनन में बागन में बगरो बसंत है' के अनुकरण पर अपना वर्षा वर्णन निम्न पंक्तियों में चित्रित किया है :-

मन में मनोज मलिन्द मकरन्दन में,
मालती मयंक मौज महिमा अपार है।
नद में नदी में नन्द नन्दन निवास हूँ में,
नौका में नवीन नित निधि में निहार है॥
पग में पहार पयोनिधि पियूसन में,
पेखो पुण्डीगन में पुजन विचार है।
वदलन बुन्दन तिलोको बक बृन्दन में,
बागन में बेल बनी वर्षा बहार है॥

श्री दुर्गाप्रसाद पुरोहित-

आपका जन्म मऊरानीपुर (झाँसी) के पं. हीरालाल पुरोहित के घर में सम्वत् 1886-87 के आसपास हुआ था। पिता की एक मात्र संतान होने के कारण अत्यंत लाडले किन्तु उनके (पिता) आकस्मिक निधन से विद्यालयीन शिक्षा से वंचित तो हुए ही, सारे परिवार के भरण पोषण का बोझ भी अत्यंत अल्पायु में उनके कंधों पर आ पड़ा। जीविका का प्रमुख साधन था वस्त्र व्यापार तथा कृषि। काव्य में शेर तथा नायिका छन्द लिखते थे। उस्ताद कहलाते थे। अनेक शिष्य बनाये जिनमें पं. मूलचन्द नायक, वोदन सुनार, कल्याणदास तथा बिहारीलाल दुबे मुख्य थे। छतरपुर निवासी इनमें समकालीन कवि श्री गंगाधर व्यास से सैर प्रतियोगिता हुआ करती थी। महाभारत तथा भागवत की कथाओं को दोहों में लिखा। नरकाव्य तथा किसी की प्रशंसा में साहित्य सृजन के घोर विरोधी थे वह- 'नरकाव्य करे जो नर, सो नरके जाय।' सम्वत् 1954 की श्रावण शुक्ला एकादशी को स्वर्णारोहण। शेर का एक उदाहरण देखिये।

कर कृपा पारब्रह्मा यह उरधारी,
निज दास जानि स्वामि सब संकट टारौ।
सुर दुर्लभ नर तन प्रभु अब न बिसारौ,

निस वासर तुब चरनन में चित लगै हमारो।
घट-घट में आप व्यापत, का तुम्हें छिपावें,
त्रैलोक विदित सुजस वेद बरनत चारों।
दुख दूर करो दीन जान दया विचारो,
अभिमानि अधम कुसित यह क्रोध निकारौ।
आधे न स्वप्न में दूर निवारौ,
तुम करूणाकर किकर में दीन तुम्हारी।
अगनित अपार मेरे पातक न निहारौ,
जनजान अपनी नाथ भवनिध ते पार उतारौ॥

पं. हरिदास 'श्रीश'-

राष्ट्रपति पुरस्कार विजेता अध्यापक श्री पं. हरिदास शर्मा 'श्रीश' बुन्देलखण्ड के कुछ गिने चुने कवियों से हैं जिनका जन्म ग्राम सकरार (झाँसी) में कार्तिक शुक्ल चतुर्थी सम्वत् 1961 को हुआ था। अध्यापन से अवकाश प्राप्त करने के बाद भी आप ग्राम सरकार में वैद्यक करते हुए जनता और साहित्य की सेवा करते हुए स्वर्गवासी हुए। 'बुन्देल भूमि वन्दना' नामक उनकी कविता काफी प्रसिद्ध हुई :-

परिमाल आल्हा, छत्रसाल से दिये है शूर,
तू है वीर भूमि दिव्य शक्ति उर धारिणी।
वेद व्यास, तुलसी को, केशव की छाई कीर्ति,
धन्य कवि भूमि पुन्य प्रतिभा प्रसारिणी।
रघु कुल सूर्य, चित्रकूट में रमे थे यहाँ,
अति रमणीक तीर्थ भूमि मोक्ष कारिणी।
'श्रीश' गुण गाऊ पद चूम, चूम, झूम, झूम,
हे बुन्देलभूमि हिन्द मानव निहारणी॥

मुंशी दुर्गा प्रसाद खरे-

सन् 1910 की 2 अगस्त को मुंशी दुर्गा प्रसाद खरे का जन्म बम्होरी कला जिला-टीकमगढ़ (म.प्र.) में श्री गया प्रसाद जी खरे के घर हुआ था। ओरछा राज्य में पिता तहसीलदार थे। निकटवर्ती नगर मऊरानीपुर (झाँसी) में इनकी शिक्षा मिडिल तक हुई। तदुपरांत वे ओरछा राज्य में शिक्षक हो गये और अपनी मृत्यु 28 अप्रैल 1957 ई. तक वे इसी पद पर सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। लम्बा कद, दुबला पतला शरीर, गोलाकार चेहरा, ऊँचा मस्तक, गेहुआ रंग आदि लिए ही उनके व्यक्तित्व तथा कवि का विकास हुआ था। बुन्देली भाषा में आपने अनेक काव्य रचनाओं का सृजन किया था जिनमें सरसता, ओज तथा चमत्कार सभी कुछ मौजूद रहता था। भाषा अत्यंत मधुर और हृदयस्पर्शी होती थी। उनकी कलम से निकली रचना सीधे आम जनता की जबान पर होती

थी। ग्राम में मिडिल स्कूल खुला और मुंशी जी की फाग सबकी जबान पर अठखेलियाँ करने लगी :-

खुल गया मिडिल स्कूल भई, अति फूल कि भवन बनाना.....।

इसी प्रकार जब देश में विकास योजनाओं का प्रचलन हुआ तो उनका यह कीर्तन भी सब की जबान पर था।

भली खुली योजना विकास है।
जिला जिला अन्तर्गत हक हक इजलास है॥

फागें भी मुंशी जी बड़ी सुन्दर लिखा करते थे :-

फाग बनाकर कहत ही सृजन सुनो बर काय।
कान मात लातुर जरा नहीं अक्षर पर आय।
हर दम भज हर हर हर।
चरण कमल सर धर धर धर॥
हर दम भज मन कर सकल यतन॥
रट रट भगवत सब तज तज तज॥

श्रीमती राजरानी चौहान-

सम्वत् 1967 की बसंत पंचमी को भूपसिंह जूदेव चन्देल 'भूप' के घर जन्मी श्रीमती राजरानी चौहान बुन्देल भूमि की कोकिला मानी जाती हैं। उनकी कविताओं में वीरता, भक्ति एवं वेदना का अद्भुत सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। आपकी आवाहन नामक कविता के कुछ छन्द दृष्टव्य हैं।

माँ ! कैसे हम तुझे बुलाये।
हम अबला, माँ! तू अबला थी, बलवानों के लिए बला थी।
हम परतंत्र, स्वतन्त्र मूर्ति, तो कैसे तेरा गाना गाये॥ माँ।
खड्ग खेल तूने खेले थे, विकट वार हँस हँस झेले थे
तू, शोणित सरिता विहारिणी, कैसे आँसू तुझको भाये॥
माँ! कैसे तुझको बुलाये॥

श्रीमती रूप कुमारी चन्देल-

सम्वत् 1938 की ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्ष की तृतीय को आपका जन्म ग्राम जलाला जिला हमीरपुर में हुआ था। आपके पिता श्रीमान ठाकुर जीत सिंह जी एक प्रतिभाशाली रईस थे जिन्होंने अपनी इस पुत्री का विवाह काव्याचार्य श्रीमन्त भूपसिंह जूदेव 'भूप' से कर दिया और पति के घर काव्यात्मक वातावरण पा श्रीमती रूप कुमारी जी की कवि प्रतिभा दिनों दिन बढ़ने लगी। भगवान श्री कृष्ण की उपासिका सुन्दर

सरस भाषा में भावपूर्ण कविताओं की रचयित्री श्रीमती चन्देल ने मधुर तथा प्रभावशाली गला भी पाया था। 'बसंत में कृष्ण-राधा का विवाहोत्सव वर्णन' उनकी दर्शनीय रचना है :-

नन्द के लाल जू आनन्द कन्द को
आज साची घर आवत टीको।
वस्त्र वसंती सचे सुचि अंगन, देखि भयो मन मोद मही को॥
देखन को दुनिया उगड़ी, फल जीवन लाभ भयो सबही कौ।
मोहन नैन चकोर भए, मुख चन्द भयो वृखभान लली कौ॥

श्री लक्ष्मी नारायण पाण्डेय-

मऊरानीपुर (झाँसी) के सुविख्यात कवि स्वर्गीय घनश्याम दास जी पाण्डेय के आप अनुज हैं। आपका जन्म 1957 में हुआ था। संस्कृत में भी आपने सुन्दर रचनाओं का सृजन किया था तथा रेल्वे जैसे नीरस विभाग में रहते हुए भी आपने हिन्दी में सरस कविताएँ लिखी। बाल्यावस्था से ही आप कविताएँ लिखने लगे थे।

ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली में आप घनाक्षरी तथा गीत लिखने में सिद्धहस्त थे। मराठी तथा बंगला भाषाओं का भी आपको अच्छा ज्ञान था। भक्त सूरदास के सम्बन्ध में लिखे आपके निम्न छन्द कितने सुन्दर बन पड़े हैं :-

हेरि हेरि चहुँ और जग छर छन्दर को,
आँखें करि बन्द नन्दन पकरि गौ।
वोरि वोरि श्याम रंग माहि निज मानस कौ,
हिये दिव्य ज्योति कौ प्रकाश पुंज भीरगौ॥
सुनि-सुनि मधुर सुरीली मुरली कौ तान,
ध्यान में तें अनहद नाद को विसरिगौ॥

वहि उतराय कुंडि प्रेम के पयोनिधि में,
भव को अपार पारावर सूर तरिगौ॥
एकै मृगलोचनी के परि दृग जालन में
दोऊ दृग देय जाग जालन तें करिगौ।
एक ही रसीलौ नाम रसना तें रटि रटि,
बिनही पढ़ाये प्रेम भक्ति पाठ पढ़िगौ
एक चकधारि अवलम्ब अविलम्ब राखि,
जग के कुचक्र वट चक्रन तै लडिगौ।
एक घनश्याम रसधार कौ अधार धरि,
भक्त सूर सूर हैं ते दूर चडिगौ॥

इन सात साहित्यिक सप्तर्षियों के अलावा भी और अनेकों साहित्यकार ऐसे हैं जिनकी रचनाओं ने साहित्य-जगत पर अपनी अनोखी-अनुपम छाप छोड़ी है। ऐसे ही कुछ प्रमुख कवि एवं साहित्यकारों के नाम हैं स्वर्गीय सर्वश्री नरोत्तम पाण्डेय 'मधु', विजय तैलंग, धनंजय भट्ट, सुभद्रा देवी पहारिया, शारदा प्रसाद उदानिया 'मनोज', मोतीलाल विलैया, हरिदेव गुप्त, किशोरीलाल अग्रवाल 'लल्ला', गोविन्द प्रसाद वर्मा, श्याम सुंदर बादल, गनेशी लाल बुधौलिया, परमानंद बुधौलिया, भगवती सुनार, गिरधारी लाल शुक्ल 'गिरधर', मनभावन, अवधलाल आदि। इन सबके अलावा भी न जाने कितने अनगिनत अज्ञात कवि-साहित्यकार हैं, जिनके बारे में शोध और अनुसंधान अत्यंत आवश्यक है।

ऐसे अनेक अज्ञानांधकार में खोये कवि साहित्यकार हैं, जो साहित्य की स्वान्तः सुखाय सेवा करने में अब भी निरत हैं। उनके बारे में इस लघु आलेख में लिख पाना संभव नहीं। आने वाले समय में वे स्वयं ही अपना प्रकाश किसी शोधार्थी की कलम से साहित्य संसार में बिखेरकर अपना यश उजाकर करेंगे।

बुन्देली चित्रकला

डॉ. हरीमोहन पुरवार

मानव ने सबसे होश संभाला है उसने अपने शरीर की पुष्टता के लिए जहाँ भोजन की व्यवस्था की है वहीं अपने मन मस्तिष्क की रिक्तता को भरने का भी एक संतोषजनक उपक्रम किया है। यही क्रियाशील उपक्रम कला बन गया। तूलिका जब इस उपक्रम में माध्यम बनी और रंगों ने अपना ताना-बाना बुना तभी चित्रकला की उत्पत्ति हुई। इस चित्रकला को जब लोक जीवन द्वारा अंगीकार किया गया तब यह लोक भावनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर लोक चित्रकला के रूप में प्रतिष्ठित हुई। गुफाओं की भित्ति पर उकेरे गये तमाम पशु-पक्षियों के चित्र उनके शिकार के चित्रों से इस लोक चित्रकला की यात्रा प्रारम्भ हुई थी और आज की तमाम धाराओं को अपने में समाहित करते हुए तमाम क्षेत्रीय परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हुए स्थानीय चित्रकला के नाम से प्रसिद्धि पायी। बुन्देलखण्ड के जनमानस में रची बसी यही चित्रकला बुन्देली लोक चित्र कला बनी जिसमें बुन्देलखण्ड के सामाजिक, आध्यात्मिक राजनैतिक एवं धार्मिक आयामों की छटा दृष्टिगोचर होती है।

बुन्देली लोक चित्रकला में, चौक पूरना, अल्पना, भित्ति चित्र, चित्रपट, थापे, मेंहदी, महावर, लिपाई-पुताई आदि अनेकों उपविधाएँ समाहित हैं।

बुन्देली लोक चित्रकला में हमें लोक मानस के मन, हृदय की संवेदनाओं, शिक्षण एवं पारम्परिक आस्थाओं के विभिन्न पहलुओं के दर्शन होते हैं। बुन्देली लोक चित्रकला की सभी उपविधाओं में सामाजिक मनोविज्ञान का दर्शन सामाजिक समरसता हेतु हमारा मार्ग प्रशस्त करता है। इसमें छिपा दर्शन एवं मनोविज्ञान अनूठा है। आध्यात्म से ही दर्शन की पवित्र गंगा बहती है जिसमें गोते लगाकर जीवन के यथार्थ दर्शन से साक्षात्कार होता है और अद्वितीय परम आनन्द की प्राप्ति होती है। मानव की बुद्धि और भावों के प्रतिबिम्ब से द्वैत विशिष्टाद्वैत एवं अद्वैत को दृष्टि मिलती है। द्वैतवाद के अर्न्तगत ब्रह्मा, तथा जीव को अलग अलग ही माना जाता है जबकि विशिष्टाद्वैत में ब्रह्मा, निराकार मानते हुए, उसी को सर्वोपरि स्वीकार किया जाता है तथा जगत को मिथ्या मानते हैं। इसी कारण अद्वैतवाद में निर्गुण को सगुण साकार मानते हुए उसी की पूजा अर्चना वन्दना से मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रयास किया जाता है तथा जगत को मिथ्या मानते हैं। इसी कारण अद्वैतवाद में निर्गुण ब्रह्म एवं जीव में कोई भेद नहीं माना जाता है। जीव ही ब्रह्म एवं ब्रह्म ही जीव है, की कल्पना को साकार स्वरूप प्रदान करता है यह अद्वैतवाद। दर्शन की दृष्टि से ब्रह्म जगत, माया

एवं जीव ये चार ऐसे आधार हैं जिन पर विशिष्ट द्वैतवादी मार्ग में सगुण ब्रह्म की ही आराधना की जाती है तथा मुक्ति हेतु शरणागत, भगवत्कृपा तथा निश्चल भक्ति भावना ही आधारभूत है। बुन्देली लोक चित्रकला में दर्शन के प्रमुख चारों अवयवों (ब्रह्म, जगत, माया एवं जीव) का दिग्दर्शन हमें विविध माध्यमों से होता है। हरछठ, कजरी नौमी आदि ऐसे भित्ति चित्र आलेखन हैं जिनको सर्वशक्ति सम्पन्न ब्रह्मा की शक्ति स्वरूपा महिला की आकृति के विशाल अमाशय में अन्य चित्रांकन कर ब्रह्मा की सगुण सत्ता को स्वीकार किया जाता है। कजरी की नौमी में नेवला पालना सर्प आदि माया के प्रतीक के रूप में जहाँ अंकित होते हैं वहीं पशुपक्षी, पेड़ पौधे आदि जगत का प्रतिनिधित्व करते हैं। घट में जल होना जीव का द्योतक है। अतः लोक चित्रकला में बुन्देली जन मानस विशिष्टद्वैतवाद को न जानते हुए भी दर्शन के अवयवों को न जानते हुए भी, उनका अंकन कर अपनी आध्यात्मिक प्रवृत्ति का परिचय देता है।

चौक पूरना-

सभी माँगलिक कार्यों के अवसर पर त्यौहारों पर इस क्षेत्र में चौक पूरे जाते हैं। गेहूँ या चावल के आटे से वर्गाकार अथवा त्रिभुजाकार अथवा आयताकार आकृति बनाकर उसे विभिन्न रेखाओं से अलंकृत करके एक ऐसी सम्पूर्ण आकृति बनाई जाती है जिसके देखने मात्र से ही मन प्रफुल्लित हो उठता है। चौक के माध्यम से अतिथि अथवा देव आवाहन कर उन्हें आसन देने की मनोभावना प्रगट होती है। देव गण जिस स्थान पर आसन ग्रहण करते हैं वह स्थान पवित्र हो जाता है और उस स्थान की रज से अनिष्ट का नाश होता है। इसीलिए पूजा अर्चना के पश्चात् सुहागवती स्त्रियाँ अपने पति के दीर्घायु एवं संतान के उज्ज्वल भविष्य हेतु अपने आँचल के छोर से चौक को अंचराती हैं जिस चौक अंचराना कहते हैं। चौक पूरना-पवित्रता, स्वच्छता का पूरक है और इसकी आकृति मन को प्रमुदित करती है। चौक पूरने में जगत की कल्पना साकार हो उठती है।

अल्पना-

गेहूँ चावल के आटे का पानी में घोल बनाकर उसके द्वारा वर्गाकार, अथवा त्रिभुजाकार आकृति बनाकर उसमें प्रकृति के पूरक पक्षियों, आस्था के सौपान देव जनों एवं विभिन्न मन हर्षिणी वाली आकृतियों से उसे पूरित किया जाता है। अल्पना एक माध्यम है ईश्वर के श्रीचरणों में मन एकाग्र करने का मन को आनन्दमय करने का और समाज को प्रदूषण मुक्त करने का। अल्पना सिर्फ स्वच्छ पवित्र स्थान पर ही उकेरी जाती है। तथा यह 'माया' का स्वरूप दर्शाती है।

भित्ति चित्र-

विभिन्न धार्मिक उत्सवों पर दीवार पर विभिन्न रंगों की सहायता से ये चित्र बुन्देली महिलाओं द्वारा अंकित किये जाते हैं। इन चित्रों में सम्बन्धित उत्सव के कथानक का दृश्यांकन होता है तथा कुछ सर्वभौम सत्य के प्रतीकों का भी अंकन होता है। इन भित्ति चित्रों के माध्यम से जहाँ शिक्षा दी जाती है वहीं कोमल मनो पर अपनी प्राचीन वैभवमयी संस्कृति के आयामों को भी अंकित किया जाता है। चित्रों के माध्यम से शिक्षण क्रिया विधि अत्यन्त सुगम हो जाती है। भित्ति चित्र भी शिक्षण का ही माध्यम है। भित्ति चित्रों में जो चिह्न अंकित किये जाते हैं वे उद्देश्यपरक होते हैं। बुन्देली लोक चित्रकला में प्रयुक्त चिह्न दर्शन के प्रमुख तत्वों की ओर इंगित करते हैं।

अ- सूर्य चन्द्रमा का अंकन-

हम सब जिस सौर मण्डल में रह रहे हैं उसमें सभी कुछ सूर्य के आस-पास ही है। वह ही हमारी शक्ति का आदि स्रोत है। उसके द्वारा ही हमें प्रकाश मिलता है। तम का नाश होता है। एक ऐसा सत्य जो कि शाश्वत है। चन्द्रमा भी सामाजिक कलाओं का परक है तम में प्रकाश की किरण से मार्ग प्रशस्त करता है और मन की उद्विग्नता को शीतलता प्रदान करता है। प्रकृति के ये दोनों शाश्वत चिह्न अंकित कर प्रकृति की शाश्वतता का भान कराया जाता है और इन्हीं को प्रेरणा स्रोत बनाकर इनकी ही भाँति शाश्वत बनने के लिए समाज में कुछ कर गुजरने का शिक्षण दिया जाता है।

ब- ऊँ का अंकन

ऊँ तो साक्षात् ब्रह्मा ही है। इसके अंकन से ब्रह्मा से साक्षात्कार एवं उसके माया भ्रम से निकलकर सत्य को समझने का एक विकल्प है।

स- सतिया का अंकन-

भित्ति चित्रों में सतिया का अंकन विशेष दर्शन युक्त है। सतिया का चिह्न स्वयं में भारतीय सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण दर्शन को अपने में समाहित किये हुए है। सतिया में चार भुजाएँ होती हैं जो कि मानव जीवन की चार अवस्थाओं, बह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास का जहाँ प्रतीक है, वहीं अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष रूपी चारों स्थितियों का भी दिग्दर्शन कराती है। ये चारों भुजाएँ वर्गाकार रूप में सीधे चक्राकार स्थिति को बनाती हैं। परिणामस्वरूप यह चक्राकार स्थिति हमें भारतीय जीवन मूल्यों के अनुसार सदैव कार्यशील होने की प्रेरणा देती हैं। इन चारों भुजाओं के आपसी चक्राकार स्थिति से चार खुले हुए प्रकोष्ठ तैयार होते हैं। जिनमें बिन्दु स्थित रहता है। यह बिन्दु मानव का प्रतीक है।

अस्तु मानव को चारों अवस्थाओं में अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष हेतु सतत् प्रयासरत रहने का अनोखा प्रेरणा पुँज है यह सतिया। यह लोक के मन हृदय पर सार्थक प्रभाव डालने का एक सशक्त उपक्रम है।

द- पशु पक्षियों एवं पेड़-पौधों का अंकन-

इन भित्तिचित्रों में पशु पक्षियों एवं पेड़ पौधों का चित्रण भी खूब मिलता है। वस्तुतः पशु-पक्षी एवं पेड़ पौधे प्रकृति के प्रतीक हैं। इसके अंकन से यह शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है कि दुनिया के माया जाल में रहते हुए प्रकृति के साथ तारतम्य सदैव बनाये रखना चाहिये जिससे प्रकृति चक्र संतुलित बना रहे और समाज में प्रदूषण बाधा कम से कम हो।

य- कलश अथवा घट अंकन-

कलश अथवा घट पूर्णता का प्रतीक है। इसके अंकन से ये शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है कि सम्पूर्णता मन के संतोष से आती है। मन यदि संतोषी होगा तो माया के मोह जाल को पार करता हुआ इस ब्रह्माण्ड की परम सम्पूर्ण सत्यता का आभास शीघ्रता से कर लेगा। घट एक पात्र होता है जिसमें जल भरा रहता है। जल की कोई आकृति नहीं होती है। इसे जैसे पात्र में रखा जाये यह उसी की आकृति ग्रहण कर लेता है। इस घट का आध्यात्मिक पक्ष भी यही है कि जल आत्मा का सूचक है तथा घट-शरीर का। यह आत्मारूपी जल जिस घट रूपी शरीर में रहेगा, यह उसी की आकृति ले लेगा और जब घट टूट जावेगा तो यह जल रूपी आत्मा पुनः मुख्य जल के साथ मिलकर एकरस हो जावेगी। अर्थात् घट का अंकन जहाँ पूर्णता का संदेश देता है। वहीं वह यह भी निर्दिष्ट करता है कि शरीर पर मोह मत करो तथा उसमें व्याप्त जल रूपी आत्मा के तत्व को पहिचानो। लोक जीवन में आध्यात्मिक गूढ़ता के इस रहस्य को समझाने का एक सुलभ माध्यम है घट कलश का अंकन।

र- देव अंकन-

इन भित्ति चित्रों पर विभिन्न देवी देवताओं का भी अंकन किया जाता है। ये देवी देवता गण भी अपने शरीर की आकृति से हमें सामाजिक शिक्षा देते हैं। जो कि साकार ब्रह्म के द्योतक है।

त्रिदेव अंकन-

कहीं कहीं पर तीन पुतरियाँ बनाकर उनके नीचे ब्रह्मा, विष्णु, महेश लिख दिया जाता है। ये तीनों देव भारतीय दर्शन में आदि गुरु में प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्मा मन में ज्ञान का उदय करते हैं, विष्णु उस ज्ञान

को पालते हैं तथा महेश अज्ञान का विनाश करते हैं। त्रिदेव अंकन यह इंगित करता है कि हमें अज्ञान के तम से निकलकर ज्ञान की ज्योति को जलाकर उसको अपनाकर ही अपना जीवन निर्वाह करना चाहिये।

श्री गणेश अंकन-

बुन्देलखण्ड में उत्सवों पर जो भित्ति चित्र आलेखन होता है उसमें गणेश के चित्र का अंकन बहुधा होता है। साथ ही साथ विवाह आदि शुभ अवसरों पर भी दीवाल पर गणेश का अंकन किया जाता है। गणेश का स्वरूप अत्यन्त भाव प्रधान एवं सामाजिकता से ओत प्रोत है। श्रीगणेश का ठिगना स्वरूप हमें यह शिक्षा देता है कि समाज में व्यक्ति को छोटा बनकर ही रहना चाहिये जिससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति व वर्ग का स्नेह प्राप्त हो सके। गणेश का सिर गज का है जो बुद्धि धैर्य व गम्भीर का द्योतक है। गणेश का उदर बड़ा है जो कि यह प्रेरणा देता है कि समाज में रहते हुए व्यक्ति को सबकी सुनकर उसे चुपचाप उदरस्थ कर लेना चाहिये। गणेश मोदक प्रिय है। अलग-अलग बूंदी को एक साथ मिलाकर मोदक बनाकर, उसे ग्रहण करने से जिस प्रकार से शारीरिक पुष्टता प्राप्त होती है उसी भाँति समाज के सभी बिखरे पड़े लोगों को एकत्रित कर सामाजिक कार्यों में लगाने से समाज में प्रगति रूपी पुष्टता दिखलाई पड़ती है। गणेश की सवारी चूहा है जिसकी प्रवृत्ति होती है कि वह वस्तुओं को कुतर कर नष्ट कर देता है कि समाज को तोड़ने वाली शक्तियों पर धीरज तथा गम्भीरता का अंकुश लगाकर उन्हें नियंत्रित किया जा सकता है तथा उनका सकारात्मक योगदान लिया जा सकता है। अतः गणेश के चित्रांकन का यह दर्शन है समाज में विनम्र रहकर सबको साथ लेकर चलना।

श्री दुर्गा अंकन-

कुछ उत्सवों पर भित्तिचित्रों में माँ दुर्गा का भी अंकन किया जाता है। माँ दुर्गा का भव्य स्वरूप जहाँ माता के दिव्य प्रेम की अनुभूति कराता है वहीं उनका क्रोधी स्वरूप दुष्टता के दमन का भी प्रतीक है। “नारी” समाज का एक ऐसा अंग है जिसके अभाव में समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वह बुन्देलखण्ड में तो प्रेरणा स्रोत है। श्री दुर्गा का अंकन समाज में नारी के स्थान एवं उसके अलौकिक स्वरूप से कर्तव्य की प्रेरणा ग्रहण करने को बाध्य करता है।

शंख दीप आदि का अंकन-

कुछ कुछ भित्ति आलेखनों में शंख का अंकन किया जाता है। शंख की ध्वनि से बैकटीरिया का नाश होता है तथ भूत बाधा भी दूर होती है। अतः शंख ध्वनि करने की प्रेरणा इस अंकन से मिलती है। दीप

तम में प्रकाश का वाहक है जिसके अंकन का यह सार है कि अज्ञान को समाप्त कर ज्ञान के ज्योत्स्न प्रकाश में जीवन यापन करना चाहिए। भित्ति चित्र आलेखनों की एक विशेषता यह है कि ये अधिकांश भित्ति चित्र जब बनाये जाते हैं तो एक महिला के उदर भाग में व्रतोत्सव से सम्बन्धित अन्य अंकन किये जाते हैं यह महिला की आकृति प्रकृति के सर्वशक्तिमान नियंता ब्रह्म की शक्ति होती है तथा इसे ही सर्वशक्ति सम्पन्न माँ भवानी का स्वरूप माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन भित्तिचित्रों के अंकन के समय तथा बाद में भी मन के अन्दर यह अटूट विश्वास होता है कि इस विश्व में जो कुछ भी होता है वह सब प्रकृति देव के अनुसार ही सम्पन्न होता है और हम सभी मात्र कठपुतली बनकर अपने अपने चरित्रों को अभिनीत करते हैं। यह भित्तिचित्र के अंकन का वेदान्तिक दर्शन निश्चित रूप से लोक जीवन को माया मोह से विलग करके 'कर्मण्येवाधिकारस्ते माँ फलेसु कदाचित्' के मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करता है।

गीता के कर्मयोग को लोक जीवन का एक अभिन्न अंग बनाने का यह चित्रांकन एक अभिनव प्रयोग है जो लोक जीवन की शाश्वतता को मूर्त रूप देता है। लोक द्वारा अपनायी यह लोक चित्रकला जहाँ सामाजिक नीति निर्धारण का दिशा बोध कराती है वहीं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त करती है। दीपावली, भैर्या दूज, कजरी की नौमीं, गुरुपूर्णिमा, होली, आसमाई पूजन, हरि ज्योति पर्व, कुनघुसी पूनौ, आदि उत्सवों पर बुन्देलखण्ड में महिलाएँ विभिन्न रंगों के माध्यम से आलेखन करके अपनी इस लोक चित्रकला को अमरत्व प्रदान करती है।

चित्रपट-

कागज अथवा कपड़े पर चूना, हल्दी, आलता आदि की सहायता से पूजा में काम लाये जाने वाले चित्रों का अंकन किया जाता है। कृष्ण जन्म के समय अष्टमी के दिन श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं को कागज पर अंकित कर उनका पूजन किया जाता है। यह चित्र 'कन्हैयाजू का पट' के नाम से जाना जाता है। चित्रपट के माध्यम से थोड़े से स्थान पर बहुत कुछ अंकित करके, शिक्षा देने का माध्यम है ये चित्रपट। उदाहरणार्थ श्री कृष्ण द्वारा कंस वध, कालिय नाग मर्दन आदि लीलाओं के अंकन से अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार के खिलाफ बच्चों में लड़ने की प्रवृत्ति पैदा करना ही इस चित्रपट का वास्तविक मनोविज्ञान होना चाहिए।

थापे-

विवाह आदि माँगलिक अवसरों पर अपने प्रियजनों के साथ ठिठोली का एक दौर चलता है जिसमें चावल के आटे को हल्दी तथा चूने के साथ रंग कर हाथों की हथेलियों में लगाकर अपने प्रियजनों की पीठ पर हथेली की छाप को अंकित किया जाता है। इसे ही थापे लगाना कहते हैं। मेरे विचार से थापे पंचपरमेश्वर का प्रतीक हैं। इन्हें लगाकर पंच परमेश्वर की उपस्थिति मानकर उन्हीं के साक्ष्य में शुभ कर्म सम्पादित किया जाता है। अतः थापे मात्र हाथ की छाप और ठिठोली ही नहीं है वरन् इससे सर्वसत्ता सम्पन्न ईश्वर की उपस्थिति महसूस करने का विकल्प खुलता है।

मेहंदी, महावर-

शुभ अवसरों पर स्त्रियाँ अपने हाथों पैरों में मेहंदी रचाती हैं। यह मेहंदी विशेषकर वर्षा ऋतु में रचायी जाती है। मेहंदी की पत्तियों का यह आयुर्वेदिक गुण है कि उनकी तासीर सम होती है जो कि बदलते मौसम में रक्त प्रवाह को नियंत्रित करता है। मेहंदी रचाने में स्त्रियाँ हाथों तथा पैरों में विभिन्न प्रकार के बेल बूटों पुष्पों आदि का अंकन करती हैं। पैरों पर महावर लगाकर पैर के पंजो का श्रृंगार किया जाता है। महावर लगाने से पैर में फटने वाली बिवाई से आराम मिलता है। कवि की महावर सम्बन्धी ये पंक्तियाँ बहुत सुन्दर हैं-

पांय महावर दैन कौ नाईन बैठी आय।
फिर फिर जानि महावरी, एड़ी मीड़ित जाय॥

लिपाई पुताई-

बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचल में घरों को स्वच्छ रखने हेतु दीवारों पर पुताई एवं फर्श पर गोबर से लिपाई की जाती है। यह लिपाई पुताई बड़ी ही कलात्मक होती है। कलई, गेरू के रंगों का प्रयोग करके चौक कमल पुष्प, सितारा आदि अंकन अत्यन्त चित्ताकर्षक होता है। माँगलिक अवसरों पर विशेष रूप से लिपाई पुताई होती है। तभी तो गाया जाता है-

गईया को गोबर मंगाओ बारी सजनी
ढिग दै आँगन लिपाओ महाराज
मुतियन चौक पुराओ बारी सजनी
आँगन कलस धराओ महाराज।

बुन्देलखण्ड के लोकमानस में रची बसी लोक चित्रकला सामाजिक एवं आध्यात्मिक दर्शन से ओत प्रोत है।

पतित पावनी माँ नर्मदा

रमेशचन्द्र तोमर

प्रकृति की गोद में जन्मा एवं पला मानव आरंभ से ही प्रकृति के उन तत्वों का आराधक और पूजक रहा है। जो उसके लिए सहज शक्तिशाली व जीवन उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इन तत्वों में नदियों का प्रमुख स्थान रहा है, क्योंकि हमारी गौरवमयी सभ्यता व संस्कृति इन महानदियों के किनारे फली-फूली है।

प्रातःकाल स्नान करने के समय भारतवासी इन पवित्र नदियों का स्मरण करते हैं और स्नान के समय जल में अवगाहन करते हुए इनकी सनिधि प्रार्थना करते हैं। यह भावना इन महान नदियों के प्रति हमारी आगाध श्रद्धा का द्योतक है। भारतीय संस्कृति में 'माँ' शब्द सर्वोपरि श्रद्धा का केन्द्र है। यही कारण है कि इस देश के लोग इन पूज्य सलिला नदियों को माता के रूप में सम्बोधित करते हैं। गंगामाता, यमुनामाता के नाम से पुकारते हैं।

इन महान नदियों में माँ नर्मदा का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। यह पुण्य सलिला पतितपावनी हमारे देश के मध्यभाग विध्यांचल और सतपुड़ा पर्वत के मध्य पूर्व से पश्चिम की ओर लगभग चौदहसौ किलोमीटर तक मध्यप्रदेश और गुजरात की सीमा में कल-कल निनाद करती हुई निरन्तर प्रवाहित होती है। इस पूज्य सलिला के आंचल की छॉव में निमाड़ जब गाता है तो सारा वातावरण संगीतमय हो जाता है। नर्मदा का सानिध्य पाकर प्रत्येक निमाड़ी अपने-आपको गौरवान्वित अनुभव करता है। यही कारण है कि नर्मदा हमारे लिए सहज नहीं वरन् हमारी धार्मिक श्रद्धा का मुख्य केन्द्र बिन्दु है।

ऋषिमुनियों ने या तो हिमालय पर्वत की गुफाओं को या पतित पावनी नर्मदा तट को अपनी योग साधना का स्थान चुना है। नर्मदा तट पर वशिष्ठ, सनतकुमार, कश्यप, अंगिरा, जमदाग्नि, कपिल मतंग, दधीचि और मार्कण्डेय ऋषियों ने तपस्या की है। विभिन्न पुराणों के वर्णन के अनुसार सुर-असुर, नर-नाग, मुनि, यक्ष, गंधर्व और किन्नरों आदि द्वारा भी माँ नर्मदा पूजनीय रही हैं।

नर्मदाजी के बारे में एक लोक कहावत यह भी है कि वे अखण्ड कुँवारी हैं। इस संबंध में शम्भूप्रसाद मिश्र कृत नर्मदा महिमा में कहा गया है-

*शिव की कुमारणी, उधारणी, अधेरण की
बालब्रह्मचारिणी तू पार ब्रह्म देवा है।*

इस संबंध में एक किंवदंती भी प्रचलित है कि एक बार तवा नामक नद नर्मदा जी से विवाह करने की इच्छा से नाना प्रकार की भेंट सामग्री लेकर नर्मदा जी के पास आया, माँ नर्मदा ने उसकी कलुषित भावना को पहचान कर 'तवा' को अपने उदर स्थल में पुत्रवत् समा लिया और उसके उपहारों क्रमशः नारियल को पत्थर के रूप में, शक्कर को बालू के रूप में, गुड़ को दल-दल के रूप में, कपड़ों को काई के रूप में, कपूर को पानी के रूप में परिवर्तित कर दिया। माँ नर्मदा की इस महिमा के कारण लोक मानस में माँ नर्मदा के प्रति अपार श्रद्धा पायी जाती है। श्रद्धालु और धर्मप्राण जनता उन्हें एक वरदायिनी देवी के रूप में पूजती चली आ रही है।

वरदायिनी - देवी

निर्धन, रोगी, और निःसंतान लोग अपनी मनोकामनाओं की प्राप्ति के लिए उनकी विभिन्न प्रकार से मान-मनोतियाँ मानते हैं। 'जिसकी जैसी श्रद्धा-वैसा उसका फल के अनुसार' अधिकांश लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। पूजा सम्बंधी एक निमाड़ी लोकगीत इस प्रकार है-

*सच्चा मन सी भजन करूंगा
माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा*

*(1) गंगा भी न्हावागा जमना भी न्हावागा
त्रीवेणी न्हाई न हाजरऽ रहुगा, 'माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा*

*(2) पान जो फूल बेल की पाती
फूलडा लई न हाजरऽ रहुंगा,
माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा*

फूलडा लई न हाजरऽ रहुगा,

माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा। हे माता मैं सच्चे मन से आपका भजन-करूँगी। आपकी आराधना करूँगी। गंगा स्नान के बाद यमुना में स्नान करूँगी और त्रिवेणी संगम में स्नान करके आपकी सेवा में उपस्थित रहूँगी। पान-फूल-बेलपत्र की टोकनी लेकर आपकी सेवा में तत्पर रहूँगी इसी प्रकार पूर्ण पूजा सामग्री मेंहदी-कुमकुम, दही-चावल, ओढ़नी लेकर

आपकी सेवा में उपस्थित रहूँगी। माँ मेरा बाँझपन मिट जाये, मुझे एक पुत्र प्रदान कीजिए। माँ नर्मदा की मान-मनौती मानी थी, उसकी मान उतारना भूल गई। माँ ने सोचा मैंने तो अपना फर्ज पूर्ण कर दिया अब ये अपना कार्य पूर्ण क्यों नहीं कर रही है। माता ने कागज पर संदेश लिखकर भेजा।

नर्मदा माता नऽ लिख्या कागज दर्ई भेज्या।

मान वाला केतरीक दूर

आवा छे आवाडा हुई रया रे

माता नायल को करा रे संजोक

नायाल ईसाब थारो गाडी जायो

हु रे मानवई वेगो रे आव

नर्मदा जी ने कागज पर संदेश लिखकर अमुक भाई के नाम भेजा। मान - मनौती मानकर भूल गया है। मान मनौती वाला कहता है- माँ मैं आने की सोच रहा हूँ, पर गरीब हूँ। साधन जुटा रहा हूँ। नारियल खरीद लिए हैं। माता कहती है-नारियल तो तुम्हारा सहोदर भाई चढ़ा देगा। हे वीर! तुम मान मनौती पूर्ण करने जल्दी से आ जाओ, इसी प्रकार सामग्री जुटाकर वह माँ नर्मदा की मान मनौती पूर्ण करता है।

पतित पावनी माँ नर्मदा को अन्य नामों से भी पुकारते हैं- नर्मदा, त्रिकूटा (चित्रकूटा), दक्षिण गंगा, महंती, सुरशा (शोण), कृपा, मंदाकिनी, महार्णवा, रेवा, विपासा, विपापा, विमला, करमा, रंजना और वायुवाहिनी (बालूवाहिनी)

विश्व में माँ नर्मदा ही एक ऐसी महान नदी है, जिसकी परिक्रमा की जाती है। जिसकी समय अवधि है तीन साल, तीन माह, तेरह दिन में यह परिक्रमा पूर्ण होती है। परिक्रमावासी प्रत्येक दिन में सिर्फ अढाई कोस चलता है और इस समय में वह परिक्रमा पूर्ण करता है। परिक्रमा उठाने से पहले उसे नर्मदा के किनारे पर कढ़ाई करवाना होता है और परिक्रमा पूर्ण होने पर भी यही क्रिया की जाती है। परिक्रमावासी नर्मदा को पार नहीं कर सकता है। नर्मदा के किनारे से या उसके नजदीक चल कर ही परिक्रमा की जाती है। बरसात के चार माह में उचित स्थान पर चर्तुमास पूर्ण होने पर यात्रा पूर्ण होती है।

नर्मदा की सम्पूर्ण परिक्रमा का महत्व तो जग विदित है। किन्तु गृहस्थ जन अपनी गृहस्थी के सारे कर्मों से निवृत्त हुए बिना माँ की सम्पूर्ण परिक्रमा नहीं कर सकता है। इसलिए गृहस्थों के लिए प्रोफेसर श्री रविन्द्र भारती उज्जैन ने नर्मदा के खंड परिक्रमा याने पंचकोशी यात्राओं का विधान खोज निकाला है। पंचकोशी यात्रा गृहस्थी की यात्रा है। जो पुण्य सन्यासी जन को नर्मदा की सम्पूर्ण परिक्रमा से प्राप्त होता है। वही

गृहस्थों को माँ-नर्मदा पंचकोशी यात्रा से प्राप्त होता है। इस प्रकार खंड-खंड परिक्रमा करके गृहस्थ आदमी सम्पूर्ण परिक्रमा कर सकता है। जिस प्रकार 'श्री अमृतलाल बेगड़ जी' ने की है। यह पंचकोशी यात्रा पाँच दिवसीय होती है। इसमें सभी कोई भाग लेता है। अमरकंटक से हिरणफाल तक चौदह पंचकोशी यात्राएँ होती हैं।

उत्पत्ति कथा

सतयुग में शिवजी समस्त प्राणियों से अदृश्य होकर दस सहस्र वर्षों तक विंध्याचल पर्वत पर तपस्या करते रहे। उस समय शंकरजी के शरीर से पसीना बहने लगा, उस पसीने से एक कन्या उत्पन्न हो गई। वह कन्या सुन्दर होने के साथ ही परम साधना सम्पन्ना और तपस्विनी थी, उसने उसी पर्वत पर आदि देव महादेव के सम्मुख एक पैर पर खड़े रहकर घोर तपस्या की, उसके तप से प्रसन्न होकर भगवान भोलेनाथ ने कहा- हे पुत्री! वर माँगों जो तुम्हें चाहिए वह वर माँग लो। तब नर्मदा ने कहा-प्रभू आप प्रसन्न हैं तो मुझे इतने वर दीजिये।

पृथ्वी पर मैं अजर-अमर हो जाऊँ, जो भी प्राणी मेरे जल में स्नान करे, तो पापों से मुक्त हो जाय, जैसे उत्तर में भागीरथी गंगा है, वैसे ही दक्षिण में मैं हो जाऊँ, समस्त तीर्थों के स्नान का फल मेरे जल के स्नान करने से हो जाय, मेरे दर्शन से प्राणी मात्र को मुक्ति मिल जाय, आप सदा सर्वदा पार्वती सहित मेरे जल में निवास करें, मेरे जल से जिस पाषाण का स्पर्श हो जाय, वह आपका रूप हो जाय। नर्मदेश्वर शिव।

जब नर्मदा जी ने इतने वरदान माँगे तो शिव ने कहा-तथास्तु बेटी, ये वर मैंने तुम्हें प्रदान किये। शंकरजी ने यह भी कहा-तेरे उत्तरतट पर बसने वाले सुकृति मेरे लोक में और दक्षिण तट पर बसने वाले पितृलोक में जाया करेंगे। समस्त नदियों में माँ नर्मदा जी की महिमा ऐसी है। जो इनके साथ इनके पिता का नाम भी सर्वदा लिया जाता है सभी जन मानस यही तो कहता है। 'नर्मदे-हर नर्मदे-हर'

माँ नर्मदा के वरदान का प्रतिरूप है नर्मदा का प्रत्येक पत्थर शिव का रूप मानकर पूजा जाता है। निमाड़ी भाषा में उसे यूँ कहा गया है।

नर्मदा का जेतारा कंकर, वतरा सब शंकर

माँ नर्मदा के स्पर्श से पत्थर भी शिव का रूप शिरोधार्य कर लेता है। माँ नर्मदा के किनारे-किनारे प्रत्येक स्थानों पर शिवलिंगों की स्थापना और अनेक किंवदन्तियाँ हैं।

पिता के साथ पुत्री या पुत्री का कथन सिद्ध करने हेतु भगवान

भोलेनाथ अपनी पुत्री के साथ हर तट पर विद्यमान हैं। इसके साक्षी है नर्मदा तट पर बसे शिवमंदिर। हर मंदिर की एक अपनी कहानी है। अपना एक इतिहास है। जो उन मंदिरों के साथ जुड़ा है।

दवाना से चार किलोमीटर दूर नर्मदातट पर बसा है ब्राह्मण गाँव, जहाँ पर सृष्टिकर्ता, ब्रह्माजी ने अपने ही हाथों से ब्रह्मेश्वर (गुप्तेश्वर) महादेव जी की स्थापना की है, जिसका उल्लेख रेवाखंड के चौवनवें अध्याय में किया गया है। यहीं पर एक और महादेव जी है जिनका नाम है पत्रेश्वर महादेव जी।

पत्रेश्वर महादेव जी की कथा

चित्रसेन गन्धर्व देवराज इन्द्र का मित्र था। चित्रसेन का पुत्र पत्रेश्वर अत्यंत ही सुन्दर और सर्वगुण सम्पन्न था।

एक दिन इन्द्र तथा अपने पिता चित्रसेन के साथ पत्रेश्वर शिवजी की सभा में गये, उस समय शिवजी की सभा में स्वर्ग की परम सुन्दर अप्सरा मेनका नृत्य कर रही थी। मेनका के सौन्दर्य और लावण्यमय मार्भुय रूप को देखकर पत्रेश्वर अत्यन्त काम पीड़ित होकर उन्मत्त हो उठा। देवराज इन्द्र ने जब मनुष्य के समान आचरण और कामोन्मत देखा तो उसे श्राप दिया, तूने मनुष्य के समान आचरण किया है जो तू मृत्युलोक में निवास करेगा और मनुष्य योनि को प्राप्त हो जा।

इन्द्र का श्राप सुनकर पत्रेश्वर का कामज्वर कर्पूर के समान उड़ गया, वह अत्यन्त भयभीत हुआ तथा विनयवत् होकर देवराज इन्द्र के चरणों में गिर पड़ा और बार-बार प्रार्थना करने लगा। उसकी प्रार्थना में द्रवीभूत होकर इन्द्र ने कहा-देखो! मृत्युलोक में तुम्हें जाना ही पड़ेगा किन्तु मृत्यु लोक में शिवतन्या श्री नर्मदाजी हैं उनकी महिमा अपरम्पार है। तुम उनके तट पर बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करके भगवान शिवजी की आराधना करो तो तुम्हारा कल्याण होगा और तुम सभी पापों से मुक्त हो जाओगे। देवराज इन्द्र की आज्ञा को शिरोधार्य करके पत्रेश्वर ने यहाँ ब्राह्मण गाँव में आकर नर्मदा तट पर अपने ही नाम से पत्रेश्वर शिवलिंग की स्थापना की। बारह वर्ष तक निरन्तर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए भगवान शिव की आराधना की और श्राप से मुक्ति पायी। यहाँ पर पितरों के निमित्त श्राद्ध, तर्पण तथा ब्राह्मण भोजन का अत्यधिक फल प्राप्त होता है।

इसी ब्राह्मण गाँव में एक सुन्दर घाट है। जो माँ अहिल्या देवी के द्वारा निर्माण कराये गये महेश्वर घाट के समान ही सुदृढ़ है। जिसे आज से एक सौ बानवे साल पहले 'सदाशिवजी गीते' के पिताश्री ने बनवाया था। सदाशिव जी गीते बावन गाँवों के सामन्त थे। सदाशिव

जी गीते के द्वारा निर्मित घाट ने नर्मदा मैया की कई बाढ़ों का सामना किया है लेकिन एक सौ बानवे साल बाद भी वह जैसा का तैसा ही है। कोई क्षति नहीं हुई।

धरमपुरी भेट (बिल्वामृतेश्वर-महादेव)

धरमपुरी से दो किलोमीटर दूर खूजावा ग्राम में कुब्जा संगम है। यहाँ पर कुब्जा कुण्ड है और नागेश्वर तथा भगवान विष्णु की पाँच मूर्तियाँ हैं। यहाँ पर माँ रेवा के किनारे एक भेट है। जिस प्रकार ओंकारेश्वर में माँ नर्मदा ने दो भागों में विभक्त होकर ओंकार स्वरूप ओंकारेश्वर की स्थापना बनाई है। उसी प्रकार यहाँ पर भी माँ नर्मदा ने दो भागों में विभक्त होकर एक टापू की रचना की है जिसे धरमपुरी की भेट कहते हैं। इस भेट की लम्बाई करीब चार किलोमीटर थी लेकिन नर्मदा के कटाव के कारण बहुत कुछ कट गया है। इस स्थान पर परमपूज्य श्री 'दधीचि मुनि' ने तपस्या की थी। एक समय जब देवता और असुरों का युद्ध हुआ तब देवता युद्ध में हार गये और पराजित देवता पूज्य श्री 'दधीचि मुनि के पास गये और कहा हे महामुनि! आप हमारे अस्त्र-शस्त्र, धरोहर के रूप में आपके पास रख लें, ऋषि ने वे सभी अस्त्र-शस्त्र अपने पास रख लिए। दधीचि मुनि ने सोचा असुर तो आततायी शक्ति होते हैं यदि उन्होंने मुझसे भी अस्त्र-शस्त्र छीन लिए तो मैं क्या करूँगा और यदि मैं तपस्या में लीन रहा तो असुर अस्त्र-शस्त्र चोरी भी कर सकते हैं। इसलिए दधीचि मुनि ने अपने तपोबल से उन अस्त्र शस्त्रों को पानी में घोलकर पी गये और अस्त्र-शस्त्रों से आश्वस्त होकर तपस्या में बैठ गये। इधर देवताओं और दानवों ने आपस में विचार विमर्श किया और समुद्र मंथन किया। समुद्र मंथन से चौदह रत्नों के साथ ही अमृत को भी प्राप्त किया, भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर देव-देवताओं को अमृतपान करवा दिया, अमृतपान के बाद देवताओं ने दानवों को युद्ध के लिए ललकारा। दानव युद्ध के लिए अपने हथियार लेकर तैयार हो गये, अब देवता घबराये, वे हथियार लेने के लिए पूज्य श्री दधीचि ऋषि के पास गये, देवताओं ने प्रार्थना की- हे ऋषिराज! हमारी अमानत (हथियार) हमें वापस दीजिये, दधीचि ऋषि ने कहा- उन्हें तो मैंने पानी में घोलकर पी लिया है अब मैं तुम्हें क्या दूँ। तब सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी ने कहा की अस्त्र-शस्त्र के पीने से ऋषिराज दधीचि की हड्डियाँ भी बज्र के समान कठोर हो गई हैं। ऋषिराज दधीचि प्राणायाम करके, इस शरीर को त्याग दें तो इनकी हड्डियों से बज्र बनाकर, दानवों का संहार किया जा सकता है। दधीचि ने प्राणायाम करके प्राण त्याग दिये और उन्हीं हड्डियों से बज्र बनाकर, देवताओं ने दानवों पर विजय प्राप्त की, इसी कारण दधीचि ऋषि की गिनती महादानी मुनियों में की जाती है।

धरमपुरी भेट की दूसरी कथा

प्राचीनकाल में माता पार्वती की सखी स्वरूप एक सौ आठ कन्याएँ थी। जो माता पार्वतीजी को अतिप्रिय थी। किसी बात पर माँ इनसे नाराज हो गई और माता गौरी ने इनका परित्याग कर दिया। तब इन कन्याओं ने रेवा किनारे धरमपुरी की भेट में आकर एक शिवलिंग की स्थापना की, और प्रतिदिन एक करोड़ बिल्वपत्र, तथा आम के पत्ते से आदिदेव महादेव का पूजन किया, जिससे देवों के देव महादेव प्रसन्न हुए और इन कन्याओं को मनवांछित फल दिया। तभी से यहाँ शिव का नाम 'बिल्वामृतेश्वर महादेव' हो गया। ये कन्याएँ ऐसे शिव का पूजन करके देवी स्वरूप को प्राप्त हुई। ये कन्याएँ हरिद्वार में 'चंडिका' काशी में 'विलाक्षी' नेमिषारण्य में 'लिंगधारणी' प्रयाग में 'ललिता' गंधमादनपर्वत पर 'कामुकादेवी' तथा मानसरोवर में 'कामदा देवी' के नाम से विख्यात हुई हैं। इसका विस्तृत वर्णन रेवाखंड के इकतालीस वें अध्याय में है।

धरमपुरी के इस मन्दिर में एक मनमोहक शिव की चाँदी से निर्मित मूर्ति है। जिसका वजन पुराने समय के अनुसार सवा मन चाँदी की है। जो काफी मनभावन है। यहाँ पर महाशिवरात्रि पर एक दिन का मेला लगता और श्रद्धालु इस मूर्ति के दर्शन करते हैं। महाशिवरात्रि के दिन इस मूर्ति को बिल्वामृतेश्वर की जलधारी पर रखकर उसका अभिषेक किया जाता है। धर्मप्राण जनता ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया है। किसी समय यहाँ पर सघन वन था, और शेर-चीते तथा मोर यहाँ विचरण करते थे, कुछ तो मनुष्य की मूर्खता के कारण वृक्ष कट गये और कुछ माँ नर्मदा के कटाव के कारण यहाँ की हरियाली नष्ट हो रही है। धार नरेश के अधीन थी, यह भेट जिसमें पुजारी को आज भी पारिश्रमिक धार नरेश द्वारा दिया जाता है। यहाँ पर कभी धार नरेश शिकार करने आया करते थे। चूँकि अब राजाओं का तो राज्य नहीं रहा, इस कारण शिकारगाह और उनके विश्रामगृह ढह गये हैं।

नर्मदा जी के बारे में जनश्रुतियाँ

पश्चिम निमाड़ में माँ नर्मदा के तट पर साढ़े तीन 'दय' जहाँ गहरा पानी होता उसे निमाड़ी भाषा में 'दय' कहते हैं। प्रथम स्थान है ओंकारेश्वर जहाँ पानी इतना गहरा है कि खटिया की रस्सी को खोलकर यदि उसे नापा जाय तब भी पानी की थाह नहीं आयेगी। दूसरा स्थान है प्रातः स्मरणीय माताश्री अहिल्या देवी के स्थान महेश्वर में तथा तीसरा स्थान है कोटेश्वर में और आधा स्थान की गिनती में है कपिलेश्वर (लोहारा) जहाँ परमपूज्य श्री कपिल मुनि ने तपस्या की थी।

किंवदन्तियाँ

एक-कपिलेश्वर (लोहारा) में कपिलमुनि का आश्रम था जो नर्मदा के बीचों-बीच था, जहाँ कपिलमुनि तपस्या किया करते थे। कपिल मुनि के पास कामधेनु नामक एक गाय थी। जो रोज गायों के समूह में चरने जाया करती थी, जिन्हें एक ग्वाला प्रतिदिन चराने ले जाता था। गाय चराते-चराते ग्वाले को पाँच साल होने को आये। एक दिन ग्वाले ने सभी से पूछा-यह गाय किसकी है। सभी ने मना कर दिया तब ग्वाले ने सोचा कि क्यों ना मैं इसके पीछे-पीछे जाऊँ, तब इसके मालिक का पता चल जायेगा। संध्या समय जब गाय घर जाने लगी तो ग्वाला भी गाय के पीछे-पीछे चल दिया। गाय नर्मदा तट पर पहुँची। माँ नर्मदा दो भागों में विभक्त हो गई, आगे-आगे गाय और पीछे ग्वाला। गाय आश्रम में पहुँची और ग्वाले ने कपिल मुनि से कहा-महाराज मैं आपकी गाय पाँच साल से चरा रहा हूँ। अब आप इसकी मजदूरी मुझे दीजिये। कपिल मुनि ने कहा-कम्बल फैला मैं मजदूरी देता हूँ। कपिल मुनि ने एक अंजुली भरकर कोयले उस ग्वाले के कम्बल में डाल दिये। ग्वाले ने कोयले कम्बल में बाँधे और नर्मदा जी से बाहर आया। नर्मदातट पर आकर ग्वाले ने सोचा कि साधुमहाराज ने दिये भी तो कोयले यदि कुछ अनाज देते तो उसे घर ले जाता, इन कोयलों का क्या करूँगा, ऐसा सोचकर ग्वाले ने कोयले नर्मदा के तट पर फेंक दिये और अपने घर आया। पत्नी ने पूछा-आज तो आपको काफी समय हो गया, कहाँ गये थे तब ग्वाले ने सभी वृत्तान्त बताया और कहा महाराज ने दिये तो क्या कोयले उन्हें मैं माँ नर्मदा के किनारे फेंक आया, ऐसा कहकर उसने अपना कम्बल झटका तो उसमें से एक कोयला सोने के रूप में गिरा। ग्वाले की पत्नी ने उसे उठाया और देखा तो वह सोने का कोयला था। पत्नी ने पति से पूछा की आपने कोयले कहाँ फेंके हैं तब दोनों ने नर्मदा किनारे जाकर देखा तो वे सचमुच के कोयले ही थे। इसीलिए कहा गया है कि 'सकल पदारथ है जगमाही, भाग्य बिना नर पावत नाही'

याने ग्वाले की जितनी मजदूरी थी उतना ही उसे मिला। जनश्रुति यह भी है की नर्मदा में जहाँ कपिलमुनि ने तपस्या की थी, यदि नाव उस स्थान पर जाये तो वह तुरन्त घूम जाती है इस कारण नाविक लोग उस स्थान का ध्यान रखकर नाव को कपिलजी के स्थान से काफी दूर से ही ले जाते हैं। ताकि आश्रम को या उस पवित्र स्थान को ठेस ना पहुँचे।

दो- जनश्रुति यह है कि माँ नर्मदा अखंड कुँवारी है। लेकिन रेवा खंड के अट्टयासी अध्याय में माँ नर्मदा का विवाह हुआ दर्शाया गया है। यह प्रसंग कथा भीमेश्वर शिव के नाम से विख्यात है जो शायद शूलपाणेश्वर की झाड़ियों में है। ऐसा अनुमान है। विवाहित होते हुए भी

कुँवारी क्यों यह एक शंकाप्रद प्रश्न है। शायद माताश्री कुन्ती की तरह ही माता नर्मदा को भी सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी ने वरदान दिया हो, जिस प्रकार कुन्ती का कर्ण को जन्म देने के बाद भी कौमार्य नष्ट नहीं हुआ, इसी प्रकार माँ नर्मदा को भी वरदान दिया हो की तुम विवाहित होते हुए भी कुँवारी रहोगी।

भीमेश्वर - महादेवजी की कथा

सतयुग में चद्रवंशी राजा भीम के नाम से एक राजा हुए हैं। जो पाँडव वंश के ही भीम हैं लेकिन ये पाँडव वंश के तीसरे भीम की कथा है। इससे पूर्व में दो और राजा भीम हो गये हैं। एक समय महाराज भीम आखेट करने मृग का शिकार करने हेतु अपनी सेना सहित नर्मदा जी के तट पर सघन वनों में गये। नर्मदा तट पर पहुँचकर उन्होंने स्नान, दानादि समस्त धार्मिक कृत्य किये। नित्यकर्म से निवृत्त होकर राजा एक वटवृक्ष की सघन छाया में विश्राम करने लगे। उसके साथी विश्राम करने के लिये दूसरे स्थान पर ठहर गये। उसी समय क्या देखते हैं कि नर्मदा के जल से एक परम लावण्यमयी युवती सोलह श्रृंगार किये राजा के समीप आकर खड़ी हो गई। राजा ने बड़े ही नम्रता के साथ पूछा-देवी तुम कौन हो? यहाँ सघन-वन में एकांकी क्यों विचरण कर रही हो। देवी ने कहा-राजन मैं साक्षात् नर्मदा ही हूँ। राजा ने विनयवत होकर कहा-देवी आपका स्वागत है। मेरा अहोभाग्य है। जो आपके दर्शन हुए, आपने किस कारण कष्ट किया। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये नर्मदा ने कहा-राजन मैं आपसे विवाह करना चाहती हूँ। राजा ने आश्चर्य चकित होकर कहा-देवी, आप कैसी बातें कर रही हैं। आप साक्षात् शिवजी की पुत्री हैं। देवता, यक्ष, गन्धर्व, सिन्धु, ऋषि, मुनि, आपकी पूजा करते हैं। आप त्रिलोक्य पूज्या हैं। मैं एक साधारण मनुष्य हूँ, मेरे साथ आपका विवाह कैसे सम्भव है।

नर्मदा ने कहा-राजन विधि का ऐसा विधान है। देवताओं के कार्य के निमित्त समय-समय पर मुझे ऐसा ही करना पड़ता है। इस समय हिरण्यकश्यप का पौत्र गगनप्रिय नामक एक महाबलशाली दैत्य हो गया है। वह किसी से मारा नहीं जा सकता है। आपके संकाश से जो मुझे पुत्र होगा वही गगनप्रिय का वध करेगा ऐसा ही ब्रह्मा जी ने पहिले से ही विधान निर्धारित कर दिया है। अतः देवकार्य के लिए आप मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करें पुत्र उत्पन्न हो जाने पर मैं पुनः अपने स्वरूप में मिल जाऊँगी, देवइच्छा समझकर राजा भीम ने नर्मदा से विवाह किया और उसके गर्भ से दुःशमन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस सम्बन्ध में कल्पान्त में एक और भी कथा है। राजा भीम के साथ नर्मदा का विवाह क्यों हुआ। ये भीम पूर्व जन्म में कौन थे। इसकी कथा इस प्रकार है। एक समय समस्त देवगण मिलकर शिवजी की पूजा करने गये। सबने विधि-विधान

से विश्वेश्वर भगवान विश्वनाथ की पूजा प्रेमपूर्वक की, भगवान भवानीपति के दाहिनी ओर उनकी सर्वांग सुन्दर पुत्री नर्मदा जी बैठी हुई थी, देवताओं में जो अग्नि देव बैठे थे उनका मन नर्मदा जी के दिव्यरूप लावण्य को देखकर मुग्ध हो गया। उसके मन में कामवासना जागृत हो गई। सर्वेश्वर शिवजी अग्नि देव की मनोदशा को समझ गये और उन्होंने अग्नि देव को श्राप दिया तुमने मानवी चेष्टा की है अतः तू मनुष्य हो जा और तू मानव लोक में जाकर मानव योनि में जन्म लेगा।

यह सुनकर अग्निदेव के छक्के छूट गये। उन्होंने विनीत भाव से शिवजी से प्रार्थना की, आशुतोष भगवान भोलेनाथ प्रसन्न हो गये और बोले-अग्निदेव मेरा वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकता है। तू मनुष्य योनि में जन्म लेगा किन्तु वहाँ भी तू भूमि नाम से चक्रवर्ती राजा होगा और यह नर्मदा उस जन्म में तेरी पत्नी होगी, उसके गर्भ से तेरा प्रतापशाली पुत्र होगा वह देवताओं का कार्य करेगा तब तेरी मुक्ति होगी। तू पुनः अपने पूर्व पद पर प्रतिष्ठित हो जायेगा।

इसी कारण नर्मदा जी का विवाह भीम (अग्नि देव) से हुआ उन्होंने से दुःशमन नामक पुत्र हुआ। दुःशमन ने सोलह वर्ष की आयु में नर्मदातट पर घोर तपस्या की। उसकी भक्ति से भवानी पति भोलेनाथ उसके सम्मुख प्रकट हुए और आशीर्वाद दिया तेरे द्वारा गगनप्रिय असुर मारा जायेगा, तब वह शोणीतपुर गया और उसने गगनप्रिय को युद्ध के लिए ललकारा, गगनप्रिय और दुःशमन का घोर युद्ध हुआ और गगनप्रिय का वध किया और देवताओं को संकट से मुक्त किया इसी दुःशमन के पिता महाराज भीम के नाम से ही भीमेश्वर - महादेव के नाम से ज्योतिर्लिंग स्थापना हुई है। जो अनडही नदी के संगम पर स्थित है। जिसका पूर्ण विवरण नर्मदा पुराण के अट्टयासी अध्याय में पूर्ण रूप से विद्यमान है।

नर्मदा की स्तुति

1

ॐ शिव हर शंकर गौरी श्याम॥
वन्दे गंगा धरणी श्याम॥
शिव रूढ्म पशुपति विश्वनाथ॥
कल हर काशी पूर्णः अर्थम॥
भज पार लोचन परमानंदम॥
नीलकंठम तुम शरणं॥
शिव असुरनिकंदम, भव दुःखः भंजन॥
रेवा के प्रतिपाला॥

वम आवगमन मिटाओ शंकर॥
हम रेवा माँ के बालक हैं॥
मैया दूध पिलावत है॥
हम रेवा माँ के सेवक हैं॥
मैया शरण में राखत है॥
रेवा तट पर धूम धड़ाका॥
राम भजन का यही तड़ाका॥
भज लेवो रे मन चारों धाम॥
गौरीशंकर सीताराम॥
गले में तुलसी मुख में राम॥
हृदय विराजे सालिगराम॥
बोलो संत हरि-हरि॥
मुख पर मुरली अजब धरी॥
ॐ नमो नर्मदा माई रेवा॥
पार्वती वल्लभ सदा शिवाय॥
भजो मैया ही मैया भजो भोला ही भोला॥
भजो बाबा ही बाबा॥
ॐ नमोः पार्वती पते हर-हर महादेव

2

बिन्दु सिन्धु में परिणत होकर बहने लगी तरंगिणी माँ।
प्रवलवेग से अरिदल के भी पातक पुंज निवारिणी माँ।
कालरूप यमदूतो का भय हरती रक्षा करती माँ।
तेरे पद पंकज में रेवे सदा वन्दना मेरी माँ। 1
तेरे जल में लीन दीन वे मीन स्वर्ग पा जाते माँ।
मच्छ कच्छ जलचर नभचर चकई चकवै सुख पाते माँ।
भार हारणी कलिमल का सब तीर्थ शिरोमणि होती माँ।
तेरे पदपंकज मे रेवे सदा वन्दना मेरी माँ। 2
अति गंभीर नीर धोती पापराशि भूतल की माँ।
कल-कल करती पातक हरती संकट शैली सहरती माँ।
भीषण प्रलय पयोनिधी में नित मुनि को आश्रय देती माँ।
तेरे पदपंकज में रेवे सदा वन्दना मेरी माँ। 3
भय भागा मेरा तब ही जल निर्मला नीर निहारा माँ।
शैलक मार्कण्डेय देवगण सेवित सतत तिहारा माँ।
वारम्बारा जन्म मरणदिक भववारिधी भय हारणी माँ।
तेरे पदपंकज मे रेवे सदा वन्दना मेरी माँ। 4
हुए अलक्षित लक्ष-लक्ष किन्नर सुरादि पूजित माँ।
लक्षित लक्ष धीर पक्षीगण से तेरा तट कूजित माँ।

शिष्ट वशिष्ट आदि कर्द ऋषि पिप्पलाद सुखदेनी माँ।
 तेरे पद पंकज मे रेवे सदा वन्दना मेरी माँ। 5
 सनकदिक मुनि नचिकेता सुत कश्यप अत्रि भ्रमर ये माँ।
 नारदादि तब चरण कमल को धारण करे हृदय में माँ।
 रपि शशि सुरपति रन्तिदेव को धर्म कर्म सुख देती माँ।
 तेरे पद पंकज में रेवे। सदा वन्दना मेरी माँ। 6
 दृष्ट अदृष्ट अधो का तू आयुध सी लक्ष्य भेदती माँ।
 अधमाधम भी जीव जन्तू को भोग मोक्ष दे देती माँ।
 वितरण करवधी हरि हर पद निजपद अर्पित करती माँ।
 तेरे पद पंकज में रेवे सदा वन्दना मेरी माँ। 7
 सुना अमृतमय गान अहा हा जटाशंकरजी तट माँ।
 कोल भील शठ नट भाटो में पंडित के हिय पट पर माँ।
 दुस्तर पाप ताप संहारिणी जीवमात्र सुख कारणी माँ।
 तेरे पद पंकज मे रेवे सदा वन्दना मेरी माँ। 8
 जो यह तीनों नर्मदा अष्टक तेरा गाते माँ।
 जो पढ़े निरन्तर प्रेम सहित वे दुर्गति कभी न पाते माँ।
 प्रणव गीत में प्रीत करे नर नरक न कोई जाते माँ।
 दुर्लभ देह सुलभ करके नित माहेश्वर पद पाते माँ।
 जयतु नर्मदे। जयतु नर्मदे। तीर्थ जननि हे अम्बे माँ।
 जयतु नर्मदे। जयतु नर्मदे। सुखदायनी शिवगंगे माँ।
 जयतु नर्मदे। जयतु नर्मदे। हर-हर विपद हमारी माँ।
 तेरे पद पंकज में रेवे सदा वन्दना मेरी माँ। 9

नर्मदा सम्बंधी भजन

सच्चा मन सी भजन करूंगा।

माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा॥

- 1 गंगा भी न्हावांगा, जमना भी न्हावांगा।
 त्रिवेणी न्हाई न हजर रहूंगा।
 माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा॥
- 2 पान जो फूल बेल की पाती।
 फूलडा लई न हजर रहूंगा॥
- 3 कंकू कपूर अरू घी की बाती॥
 आरती लई न हजर रहूंगा।
 माइ ओ रेवा थारी सेवा करूंगा॥
- 4 मंयदी चडाऊगा, चूड़ी पेराऊगा।
 चून्दी लई न हजर रहूंगा।

माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा॥

- 5 सोना की थाली म नखछोल्या भात।
 झारी भरी न हजर रहूंगा।
 माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा।
 सच्चा मन सी भजन करूंगा।
 माई ओ रेवा थारी सेवा करूंगा।

अर्थ

हे माँ! मैं सच्चे मन से आपका पूजन अर्चन करूँगी।
 हे माँ! मैं आपकी सेवा में तत्पर रहूँगी।
 गंगा स्नान करने के बाद मैं यमुना में स्नान करूँगी।
 त्रिवेणी संगम में स्नान करके मैं आपकी सेवा में उपस्थित रहूँगी।
 पान, फूल, बेलपत्र और फूलों से भरी डलिया लेकर
 मैं आपकी सेवा में हमेशा उपस्थित रहूँगी।
 कुमकुम कपूर और घी में डूबी हुई बत्ती लेकर
 आपकी आरती करने हेतु मैं हमेशा हाज़िर रहूँगी।
 मेहन्दी चुड़िया, दोनों आपको भेंट करूँगी।
 आपको चुन्दरी ओड़ाने के लिए मैं तत्पर रहूँगी।
 सोने की थाली में, भात नैवेद्य आपको अर्पण करूँगी।
 आपके भोजन करने के बाद मैं आपके हाथ धुलवाने उपस्थित
 रहूँगी।

हे माँ !मैं सच्चे मन से आपका पूजन अर्चन करूँगी।

मयकल राजा की लाइली (गरबा गीत)

मयकल राजा की लइली, आयी कलजुग माय॥

ऋषि मुनि थारपे ध्यान धर न लाग सब जन पाय॥

थारी छाती पर बाँध बधाय वो जय नर्मदा नारायणी॥

थारो दिजे चमत्कार दिखाय वो, नर्मदा नारायणी॥

दोहा :- अमरकंटक से निकल्या, गया खंम्बात मऽ समाय॥

दोई किनारा थारा घाट वणया, सब का मन अति भाय॥

उड़ान :- करा दर्शन ओंकारजी का जाय रे॥ नर्मदा नारायणी-----

दोहा :- घाट मंदीर सब डूबी रया, डूब चन्दन का झाड़॥

पूरब से पश्चिम तक, डूबी रहयो छे निमाड़॥

उड़ान:-तू तो हर जन का हिरदा मऽ समाय वो॥ नर्मदा नारायणी---

दोहा:- थारा किनारा बसी रया दो सौ बासठ गाँव॥

अन्न धन्न की कमी नहीं, भज तुम्हारो नाँव॥

उड़ान:- थारी माटी मऽ सोनू उगाव वो॥ नर्मदा नारायणी-----

दोहा:- नेता जी तो लेण लग्या, अब इन्दिरा जी की आड़॥
शिलान्यास करन आव तो, बदरई दिजे पहाड़॥

उड़ान:- लगडिया लुला कर दिजे माय वो॥ नर्मदा नारायणी-----

दोहा:- गुजरात वाला पाछ पडया, न बाँध क ऊच्चो बाँध॥
तू होय सत की नर्मदा, तो तोड़ी दिजे नवगाँव॥

उड़ान:- साथ संत रया थारी महिमा गायवो॥ नर्मदा नारायणी-----

दोहा:- मोहन थारो भजन कर, बठी न थारा किनार॥
पन्नालाल गंगाराम क, न भवन से उतारो पार

उड़ान:- बाबूलाल पर करजे सहाय वो॥ नर्मदा नारायणी

अर्थ

हे मैकल पर्वत की कन्या तुम कलयुग में आयी हो।
ऋषि मुनि तुम्हारा ध्यान करते हैं, जन मानस तुम्हारे पैर पड़ता है।
तुम्हारी छाती पर नवागाँव बाँध बन रहा है, तुम नारायणी रूप हो।
इसलिए चमत्कार दिखाना, क्योंकि तुम नारायणी हो।
अमरकंटक से निकल कर खंबात की खाड़ी में समा गई हो।
दोनों किनारों पर सुन्दर घाट बने हैं, जो सबके मन को प्रिय लगते हैं।
तेरे ही तट पर ओंकारेश्वर तीर्थ के दर्शन होते हैं।
तुम्हारे ऊपर बाँध बन जाने पर चन्दन के वृक्ष डूब जायेंगे।
पूर्व से पश्चिम तक निमाड़ डूब जायेगा।
तुम तो हर एक जनमानस के हृदय में वास करती हो।
तुम्हारे किनारे पर दौ सौ बासठ गाँव बसते हैं।
अन्न धन की कोई कमी नहीं है, जिस पर तुम्हारी कृपा हो।
तुम्हारे दोनों किनारों की मिट्टी सोना उगलती है।
नेताजी अब इन्दिरा जी के नाम की आड ले रहे हैं।
शिलान्यास करने आये तब पहाड़ों को गिरा देना।
लूले लँगड़े बना देना इतनी प्रार्थना है।
गुजरात वाले पीछे पड़े हैं, बाँध अधिक ऊँचा बनाने के लिए।
तुम सत्य से परिपूर्ण हो, उस नवागाँव बाँध को तोड़ देना।
साधू संत तुम्हारे गुण और महिमा का बखान करते हैं।
मोहन तुम्हारा भजन कर रहा है, नर्मदा के किनारे।
पन्नालाल और मंसाराम को भव सागर से पार उतारना।
बाबूलाल पर कृपा दृष्टि बनाये रखना।

नर्मदा संबंधी गरबा गीत

हर हर ओ नर्मदा माय ओ।

तू तो अमरकंटक सी आयी ओ।

चाँद सूरज थारा खोला मऽ खेल।

तू महेकल की बेटी कवाय ओ।

तू अमरकंटक सी आई ओ-----

वासेन जाल से निकलई नर्मदा (2 बार)

असी खम्भात मऽ गई समाय ओ

तू अमरकंटक सी आई ओ-----

तवो तो जूक पनन आयो (2बार)

वक पैठा मऽ लियो दबाय ओ॥

तू तो अमरकंटक से आई ओ-----

धरमी - धरमी पार उतरीया (2 बार)

तून पानी कऽ दियो डूलकाय ओ॥

तू अमरकंटक सी आई ओ-----

अखंड कुवारी माय नर्मदा (2 बार)

थारा दर्शन सी तरी जाय ओ॥

तू अमरकंटक सी आई ओ-----

नरस्योनो स्वामी न अन्तरयामी॥

एक नरेन्द्र जीवन की आस ओ॥

तू अमरकंटक सी आई ओ-----

अर्थ

हर - हर ओ माँ नर्मदा मैया।

तुम अमरकंटक पहाड़ से आयी हो।

चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारे आँगन में खेलते हैं।

तुम मैकल पर्वत की बेटी हो।

बाँसों के जाल समूह से तुम्हारा जन्म हुआ है।

खम्बात की खाड़ी में जाकर विलय हो गई हो।

तवा नाम का नद तुमसे विवाह करने आया।

उसे बीचो बीच आपने दबा लिया।

धर्म कर्म करने वाले पार उतर गये हैं।

पापियों को तुमने डूबो दिया है।

माता जी आप अखंड कुंवारी हैं।

तेरे दर्शन मात्र से सभी पाप कट जाते हैं।

नरसिंह जी के स्वामी अन्तरयामी भगवान श्रीकृष्ण जी हैं।

मुझे आप से नये जीवन की आशा है।

तुम अमरकंटक से आयी हो।

नर्मदा से प्रार्थना गरबा गीत में

राखो - राखो निमाड़ की लाज रे।

रेवा माता जगदम्बा, राखो राखो निमाड़ की लाज।

- 1 मैया तेरी गोद में, छोटे छोटे बाल।
मैया तेरे चरणों से मत दिजो निकाल।
हम कहाँ जाई रवा म्हारी माय रे।
रेवा माता जगदम्बा-----
- 2 पैसा दे राजा छूटे, बिगड़े घर को काज।
गौण बैल छूटे बिगड़े खेती को साज।
बुरा होगा हवाल रे।
रेवा माता जगदम्बा-----

- 3 अमरकंटक सी मंचेजके, बीच में बसते है।
ऊँकारनाथ पर दक्सीणी साधू बसते हैं।
करे भक्ती अटल रे।
रेवा माता जगदम्बा-----
- 4 फिरे सत की फिरते परकंमा रेवा।
और अनेक जाति के ऊँच नीच समान।
ऐसी है रेवा माई रे॥
रेवा माता जगदम्बा-----

- 5 दया धर्म तो उठी चलयो, उठी गयो ईमान।
कपट बढ़ने लगी, लोग हुवा हैरान।
ऐसी भक्ति की सुणो पुकार रे।
रेवा माता जगदम्बा-----

अर्थ

हे माँ निमाड़ की लाज रखो।
नर्मदा माता आप तो जगदम्बा माता के समान है।
हे माँ! हम तेरी गोद के छोटे - छोटे बालक है।
हे माँ! हमें चरणों से निकाल मत देना।
हम कहाँ जाकर रहेंगे।
पैसा देकर राजा तो छूट जाता है।
घर का सभी कामकाज बिगड़ जाता है।
यदि घर के बैल बिक जाते है तब
तो खेती का सारा कार्य ही समाप्त हो जाता है।
अमरकंटक से नर्मदा के बीचों बीच बसा है।
ओंकारेश्वर में दक्षिण से साधू आकर बसते हैं।
यहाँ आकर वे अटल भक्ति करते हैं।
फेरी फिरते हैं, परिक्रमा करते हैं माता नर्मदा की।
अनेक ऊँची नीची जाति के लोग आपकी परिक्रमा करते हैं।

ऐसी है माता नर्मदा मैया।
दया धर्म का नामो निशान ही उठ गया है।
ईमान तक उठ गया है।
झूठ कपट बढ़ने लगा है, लोग हैरान है।
ऐसे भक्तों की पुकार सुनो।
हे माता! नर्मदा भक्त की लाज रखना।
हे माता! निमाड़ की लाज रखना।

मान - जमाल का गीत

नर्मदा माता न लिख्या कागज दर्ई भेज्या।
मान वाला केतरीक दूर।
आवा छे आवाडा हुई रयारे।
माता नायल को करा रे संजोव।
नायल ईसाव तमरो माडी जायो।
तू रे मानवई वेगो रे आव।
नर्मदा माता न लिख्या कागज दर्ई भेज्या।
मान वाला केतरीक दर।
आवा छे आवाडा हुई रया रे।
माता चुन्दड़ को करा रे संजोव।
चुन्दड़ ईसाव तमरो माडी जायो।
तूरे मानवई वेगोरे आव।
नर्मदा माता न लिख्या कागज दर्ई भेज्या।
मान वाला केतरीक दूर।
आवा छे आवाडा हुई रया रे।
माता दही - भात को करा रे संजोव।
दही - भात ईसाव तमारो माडी जायो।
तूरे मानवई वेगोरे आव।
नर्मदा माता न लिख्या कागज दर्ई भेज्या।
मान वाला केतरीक दूर।
आवा छे आवाडा हुई रया।
माता पूजा पा को करा रे संजोव।
पूजापो ईसाव तमारो माडी जायो।
तू रे वीरा वेगो रे आव।

अर्थ

यह गीत बच्चे की मान मनौती पर नर्मदा माता की मान उतारने पर गाया जाता है। माता की कृपा से बच्चा हो जाता है तब मनौती देते समय यह गीत गाते हैं। मान मनौती वाले भाई को माँ नर्मदा स्वप्न में

याद दिलाती हैं मान- मनौती कब पूरी करेगा क्या मान देना भूल गया है।

नर्मदा माता ने कागज पर संदेश लिखकर अमुकभाई के नाम भेजा मान - मनौती वाला भाई आ रहा है या नहीं आता। आ रहा है तो कितनी दूर है। तब मान-मनौती वाला भाई कहता है। हे माँ! मैंने मान-मनौती मानी मान दूँगा, आने की सोच रहा हूँ। पर गरीब हूँ। साधन जुटा रहा हूँ। तुम्हें भेंट देने के लिए नारियल खरीद लिए है। नर्मदा माता

कहती हैं-नारियल तो तुम्हारा सहोदर भाई चढ़ा देगा हे वीर तुम तो मान - मनौती पूरी करने जल्दी से आ जाओ।

इसी प्रकार माता नर्मदा मान मनौती वाले भाई को याद दिलाती हैं, तब वह क्रमशः इन वस्तुओं के बारे में कहता है। हे माँ! मैं चुन्दड़ी खरीद रहा हूँ, उसके बाद दही भात खरीद रहा हूँ, उसके बाद पूजा सामग्री खरीद कर यथाशीघ्र मान मनौती पूर्ण करने आऊँगा।

जोगा में नर्मदा की निर्मलता

डॉ. श्रीराम परिहार

घाटों की अपेक्षा नर्मदा वन प्रांतर में अधिक सुन्दर दिखती है। दरअसल वह वन-कन्या है। वनों में वह अधिक रमती है। उसका उत्फुल रूप पहाड़ों के बीच ही खिलता है। पत्थरों पर वह अपनी जलधारा से गति को विजयिनी बनाती है। प्रपातों से वह अपनी यात्रा को सौन्दर्यमय और उत्साहमय बनाती है। नर्मदा प्रपातों की नदी है। खुद सौन्दर्य से परिपूर्ण होकर उस सौन्दर्य को अपने आसपास लुटा देने वाली नदी है। यह सौन्दर्य नर्मदा को और नर्मदा तटवासियों को संघर्षमय ताकत देता है। विपरीत स्थितियों में भी लगातार चलते रहने की सामर्थ्य देता है।

जेठ का महीना है। आकाश वर्षा-आगमन की सूचना से गदबदाया हुआ है। बादल कभी झुण्ड में और कभी अकेले-अकेले नर्मदा की महायात्रा को देख लेते हैं। मैं और डॉ. धर्मेन्द्र पारे जोगा के लिए रवाना होते हैं। हंडिया से बाईस किलोमीटर पश्चिम में कच्चे रास्ते से होकर जोगा तक जाया जाता है। रास्ते में दो-तीन वनग्राम पड़ते हैं। मृग नक्षत्र की ठण्डी हवा से वनस्पति में जीवन फूट आया है। चढ़ाव-उतार एवं धूल भरे रास्ते से होकर हम जोगा पहुँचते हैं। जोगा नर्मदा के दक्षिण किनारे पर बसा हरदा जिले का छोटा सा गाँव है। यह गाँव ढीमर जाति के नर्मदा तटवासियों का है। गाँव एकदम किनारे पर बसा है। कुल मिलाकर तीस-चालीस टापरे हैं। प्रत्येक टापरे से गरीबी झाँक रही है। नंग-धड़ंगे बच्चे पीपल, महुआ, फीपर की छाँह में खेल रहे हैं। कुछ बच्चे नर्मदा में सपड़ रहे हैं। सात-आठ साल के दो बच्चे एक डोंगी को खेते हुए नर्मदा जल पर खेल रहे हैं। लोग अपने आषाढ़ी धन्धे में लगे हैं। एक-दो आदमी मच्छी मार रहे हैं।

सामने जोगा का किला दिखाई देता है। जोगा में नर्मदा टापू बनाती है। ऊँचा टापू। द्वीप की दोनों तरफ से नर्मदा की धाराएँ बहती हैं। उत्तर तरफ नर्मदा का सारा प्रवाह है और द्वीप के दक्षिण बाजू की धारा पतली है। जो वैशाख-जेठ में सूख जाती है। इस ओर से जोगा के किले में पैदल जाया जा सकता है। रास्ते में कुछ-कुछ ललाई लिए हुए सफेद रंग के बड़े-छोटे पत्थर हैं। उन्हीं को पार करते हुए उन्हीं पर से किले तक पहुँचते हैं। यह द्वीप इसी तरह के पत्थरों को अपने पैरों की जमीन में बिछाये हुए है। पत्थरों के बीच-बीच में से दूब और हरी घास मुस्कुराती हुई पानी का स्वागत करती है। द्वीप छोटा है। पूरे द्वीप को घेरकर किला बना है। किला लाल रेतीले पत्थरों का बना है। इतिहास की अनगिनत क्रूरता और अहंकारता को अपने में दफन किये विषाद में मौन है।

किला ठहरा हुआ है। नर्मदा पथिक की तरह चल रही है। किला इतिहास के मलवे पर खड़ा है। नर्मदा संस्कृति की धारा का अक्षय स्रोत है। किला धरती से आकाश की ओर उठा है। रेवा धरती से धरती की ओर दौड़ती है। वनपाखी दिगंतों तक इसके पानी की टंडक को ले दौड़ते हैं। किला शून्य की ऊँचाई को नापने का थोथा दम्भ है, क्योंकि शून्य की ऊँचाई नहीं नापी जा सकती है। रेवा जीव मात्र की चेतना का धारा रूप में निरभमान है। वह जीवों की पोची नाड़ियों में जीवन विधि के रक्त का भराव है। पेड़ों की जड़ों में हरितिमा का संचार है। धरती के पत्थर, मिट्टी, तृण की फुरक है। यह शिवकन्या रेवा हमारी परम्परा के सांस्कृतिक विकास की जलधारा है।

पता नहीं यह किला किसने बनवाया था? यहाँ के लोग कहते हैं कि यह आल्हा-ऊदल योद्धाओं ने बनवाया था। योद्धा से जोद्धा और जोधा फिर शायद जोगा हो गया हो। इतिहासकार डॉ. सुरेश मिश्र के अनुसार इसका निर्माण मुगलकाल में हुआ है और यह ज्यादा पुराना किला नहीं है। इसकी दीवारें, बुर्ज सब अभी भी अनटूटे हैं। खण्डहर नहीं हुए हैं। किला छोटा है लेकिन सामरिक दृष्टि से एकदम सुरक्षित है। नर्मदा स्वयं इसकी सुरक्षाखाई और सुरक्षा-कवच बनी हुई है। किले के भीतर ज्यादा कुछ नहीं है। महल रनिवास सरीखा कुछ नहीं है। शायद पहले रहे हों, बाद में मिट्टी भर गयी हो। कहीं दरार नहीं। कहीं खिसलन नहीं। किले के अन्दर से ही एक सीढ़ीदार मार्ग है जो सीधे नर्मदा जल में उतरता है। इस मार्ग से नर्मदा का पानी किले में रहने वाले लोगों के लिए लाया जाता होगा। किले के पश्चिमी द्वार से किले में प्रवेश करना सुगम और सुरक्षित है। पूरब का द्वार सकरा है और इसमें मिट्टी भर गयी है। इसलिए इसमें से आने-जाने में बड़ी अड़चन तो है ही, खतरा भी असावधानी हुई और पाँव फिसला कि सैकड़ों फुट नीचे गिरते हुए सीधे नर्मदा में जल-समाधि लग जाना है। यहाँ नर्मदा की गहराई और काला पानी देखकर आदमी की हिरनी काँप जाती है।

जिस टापू पर किला बना है, वह बहुत ऊँचा है। पर नीचे से देखें तो इस पर खड़ा हुआ आदमी बहुत छोटा नजर आता है। धरती की ऊँचाई के सामने आदमी वैसे भी बौना है। नर्मदा पूर्व से बहती आती है और पश्चिम की ओर चली जाती है। बीच में है यह टापू। इस ऊँचे द्वीप पहाड़ पर से पूर्व की ओर नजर फेंकें तो नर्मदा का नैसर्गिक सौन्दर्य बहुत दूर तक बिछा हुआ दिखाई देता है। काला साँवला जल, बीच-बीच में झाऊ की झाड़ियाँ, वनजामुनों के झुरमुट और रेवा की कई-कई धाराओं में बँटी सुषमा मन को बाँध लेती है। आँखें अटक जाती हैं उस प्रकृत सुषमा पर। क्षितिज छूती सुन्दरता बहती नजर आती है। लगता है पूरब के क्षितिज से सुन्दरता का झरना बहता चला आ रहा है। मन

करता है यहीं बैठे रहो और माँ की ममतालु छवि को देखते रहो। बहुत शांति है यहाँ। ऐसी निश्चल शांति कि जिससे मनुष्य को समझने और स्वयं के बारे में सलाह देने के रास्ते खुलते हैं। हाँलाकि ऐसा थोड़े समय ही लगता है। हमारे सरीखे लोगों का दुनियादारी क्या पीछा छोड़ती है? 'गृह कारज नाना जंजाला, ते अति दुर्गम सैल विशाला'।

किले से नीचे उतरकर पूरब की तरफ नर्मदा के पानी के किनारे बैठने का अनुपम सुख है। किले की चढ़ाव-उतार की थकान को यहाँ पानी में बहाकर पुनः ऊर्जावान बना जा सकता है। गर्मी में पानी इतना ठंडा और इतना स्वच्छ कि अपनी गरम और धूल-धूसरित देह को उसमें डुबोने में संकोच होता है। इतनी पवित्र नर्मदा और इतना अपवित्र शरीर। यद्यपि जीवन अनमोल है। ईश्वर का अनुपम उपहार है। पर हमने इस शरीर में न जाने कितना कुछ अटरम-सटरम भर रखा है। सोच रखा है। मैंने नर्मदा का इतना साफ निर्मल पानी और कहीं नहीं देखा जितना जोगा के किले के पूर्वी तट पर देखा। पता नहीं अमृत होता है या नहीं? पर यह अंदाजा जरूर लगाया जा सकता है कि अमृत ऐसा ही कुछ नर्मदा जल सरीखा होता होगा।

जोगा घाट के उस पार फतेहगढ़ गाँव है। जंगल से घिरा हुआ नर्मदा किनारे का छोटा-सा गाँव। फतेहगढ़ की तरफ उत्तरी क्षेत्र के सारे लोग नर्मदा स्नान के लिए आते हैं। मृत्यु के बाद अग्निदाह के लिए भी व्यक्ति को यहीं लाया जाता है। यह पाया गया कि अमरकण्टक से लेकर पूरे नर्मदा अंचल में अमावस्या को नर्मदा स्नान का विशेष महत्व है। अमावस्या, सूर्य-चन्द्र ग्रहण, मकर संक्रांति, शिवरात्रि आदि तिथियों पर तो नर्मदा के संपूर्ण क्षेत्र में घाट, अड़घाट, वन, ग्राम, सभी जगह लोग-लुगाइयाँ श्रद्धा से नहाते हैं। इससे लोक-परलोक सुधरता है या नहीं, परन्तु लोगों को आत्मतोष और जीवन को नापने की संयमित ताकत जरूर मिलती है। मुख्य है वह कर्म, जिससे जीवन को शक्ति का स्रोत मिले। फिर वह कर्म चाहे स्नान का हो, चाहे स्नान के बाद धूपबत्ती जलाकर नर्मदा जल के चरणों के पास खोंसकर हाथ जोड़ने का हो, या दाल-बाटी बनाकर तृप्त हो पेट पर हाथ फेरने का हो, या नारियल फोड़कर खोपरे की एक चिटक नर्मदा जल में फेंककर दूसरी चिटक पेट में डालकर 'नर्मदे हर' बोलने का हो।

जोगा में नर्मदा के दोनों किनारों पर घनघोर जंगल है। दोनों किनारों के गाँवों के आसपास थोड़ी जगह में खेत हैं। जिनसे ग्रामवासी उदरपूर्ति हेतु अनाज पैदा करते हैं। नर्मदा में मछली मारना भी इनका मुख्य कार्य है। थोड़े बहुत ढोर-ढंगर पाल रखे हैं। इतना सघन वन होने पर भी उनके पास जानवर ज्यादा नहीं है। और गर्मी में तो पूरे गाँव में

दूध की सेल तक नहीं फूटती। दूध बड़ों को तो क्या बच्चों तक को देखने को नहीं मिलता। जोगा गाँव में आजादी के पचास साल बाद भी स्कूल नहीं है। शिक्षा ग्यारंटी योजना के तहत 1997 में पहली बार एक टापरी के आँगन में बच्चों को बैठाकर शिक्षा सरीखा कुछ परोसने का मन समझाने वाला प्रयास किया गया है। इस गाँव के खेत नर्मदा किनारे होकर भी प्यासे हैं। गरीबी के कारण वर्षा के बाद फसलों को पानी देने के लिए ये वनवासी कोई साधन नहीं जुटा पाते हैं। परिणाम में कपास की हँसी घेतों में ही पिचक जाती है और जुवार के भुट्टे कूथते-करँजते थोड़े निकल आते हैं।

जोगा के जंगल विन्ध्याचल की श्रेणियाँ हैं। इनमें खासकर उत्तरी क्षेत्र में इतने सुडौल और सीधे-सट्ट सागौन के पेड़ हैं कि नजर लग जाये। पर जंगल तो कट रहे हैं। इन जंगलों से बड़ी चालाकी से सागौन

की लकड़ी गायब हो रही है। दूसरे पेड़ बच रहे हैं। ताकि जंगल भी दिखे और कीमती सागौन की लकड़ी बाहर हो जाये। ताज्जुब है कि यह लकड़ी महानगरों तक बड़े सुरक्षित ढंग से पहुँच रही है। इन जंगलों के बीच नर्मदा के किनारे रहने वाला वनवासी इस लकड़ी के लिए तो क्या बाँस के लिए भी तरस रहा है। फिर भी जंगलों में रहते हुए वह जीता है और नर्मदा का पानी पीता है।

बरसात में जब नर्मदा पूर होती है। अनमापी जलराशि आँखों में जल की अनन्तता का अंश आँजने लगती है। किले के चारों ओर पानी ही पानी हो जाता है। नर्मदा जोगा के किले को हाथों में उठा लेती है। लगता है जैसे माँ अहिल्या ने शिवलिंग को हाथों में उठा लिया हो। आज जोगा मरे हुए इतिहास का अवशेष भर रह गया है। हम उसकी अपराजेयता और नर्मदा-जल की निर्मल स्मृति लिए हुए लौट आते हैं।

मिथ्स ऑफ मिडिल इण्डिया

डॉ. वेरियर एल्विन
अनुवाद - डॉ. सुरेश मिश्र

(चौमासा संयुक्तांक 50-51 से निरंतर प्रकाशित)

अध्याय - सात संधिपाद प्राणी (आश्रोप्रोड्स)

इस अध्याय में उन सभी प्राणियों के बारे में कहानियाँ दे रहा हूँ जिन्हें प्राणीविज्ञानी संधिपाद प्राणी कहते हैं याने कर्कट (क्रस्टेशियन्स), कीट, मकड़ी आदि।

इन जीवों के बारे में कई लोक कथाएँ हैं लेकिन इनके जन्म के बारे में ज्यादा कहानियाँ नहीं मिली हैं। मैं यहाँ उनमें से कुछ कहानियाँ दे रहा हूँ।

बिरहोर लोगों की एक कथा बताती है कि कैसे पार्वती ने अपनी 'गर्दन के मैल से' मच्छरों का एक झुण्ड पैदा कर दिया और उन्हें महादेव को डराने के लिए भेज दिया। उसने लकड़ी की छोलन को दुलु कीड़ों में बदल दिया जो मच्छरों को खाते हैं। उराँव लोगों की एक कथा बताती है कि चाँदो ने अपनी पत्नी की उपेक्षा की थी और पत्नी ने पति को परेशान करने और वापस घर भिजवाने के लिए मच्छर बनाये। लेकिन चाँदो ने कुछ चिउरा बर्न बना दीं जिन्होंने उन मच्छरों को खा लिया और वह अपने काम में लग गया। कोल कहते हैं कि सबसे बड़े महात्मा शंकर ने अपने शरीर पर राख लगा ली और जब उनके शरीर का मैल धरती पर गिरा तो वह जिंदा होकर कीटों, साँपों, बिच्छुओं और बरों में बदल गया।

वरली बताते हैं कि जब पहले किसान की पत्नी ने बच्चे को जन्म दिया तो उसके बाद:

पाँचवे दिन सती देवी की पूजा की गयी। उसने उस रात बच्चे के माथे पर कुछ लिख दिया। उस रात बिल्लियों और चूहों को नहीं मारना चाहिए क्योंकि सती देवी किसी भी रूप में आती हैं। भुट्टे के दानों से सती की आकृति बनायी गयी। दाईं ने पेड़ के कोटर में चावल के कुछ दाने फेंके। चावल मधुमक्खियाँ बन गयीं। इसीलिए मधुमक्खी का छत्ता दाढ़ी के समान दिखता है। तेल की बाती साँप बन गयी और हवा में फेंकी गयी, कंघी चिड़िया बन गयी। पहाड़ी की डाल पर फेंके गये गंदे कपड़ों से छिपकली पैदा हुई। मासिक धर्म का द्रव सागौन के पेड़ पर फेंका गया था इसलिए उस पेड़ के नये पत्ते लाल होते हैं। यह द्रव करौंदी के फल पर भी फेंका गया था, इसीलिए यह फल लाल होता है।

चींटी
रजनेगी परधान
पाटनगढ़, मन्डला जिला

अरानबन में बंकासुर नाम का हाथी रहता था। वह इस दुनिया की हर चीज़ खाता था हर चीज़ नष्ट कर देता था।

जिथु बैगा ने जमीन काटकर साफ की, पर हाथी ने उसकी फल्लियाँ और ककड़ी खा लीं।

जिथु बैगा ने डंडे का मुआयना किया। 'मैं कैसे इस हाथी को खतम कर सकता हूँ।'

उसने अपने कान से थोड़ा सा मैल निकाला और उससे एक चींटी बनाई। उसने इस चींटी को हाथी पर आक्रमण करने के लिए भेजा और चींटी ने हाथी को भगा दिया।

हाथी सरगुजा के जंगल को भाग गया, जहाँ उसकी बिरादरी के बहुत से साथी रहा करते थे। उसने दूसरे हाथियों से कहा, 'मेरी रक्षा करो'। उन्होंने कहा, 'तुम किसी और इलाके से आये हो। जो कुछ भी तुम्हारे पेट में है वह सभी बाहर निकालो और उसे हमारे सामने फेंको।'

बंकासुर हाथी ने आवाज करते हुए भर-भर करके भोंपू जैसी आवाज से वायु निष्कासित की। घास के पौधे, तितलियाँ, छिपकलियाँ, चूहे, तोते बाहर आये और अपने देश को उड़ गये। जब बंकासुर हाथी यह सब कर रहा था तब चींटी आयी और उसने उसकी सूँड की नोक में काट दिया।

बंकासुर हाथी मर गया। उस दिन से हाथी चलते समय हमेशा धरती पर फूँक मारते रहते हैं जिससे चींटी उनकी सूँड में काट न दे।

मधुमक्खी
बैगा
मन्डला जिला
(‘द बैगा’ 482 से)

एक बार मधुमक्खियाँ, जो कि बैलों के कान से पैदा हुई थीं, जाकर बड़े देवार के खाने में बैठ गयीं। उस खाने में जहर हो गया। देवार ने कहा, 'मेरे खाने में जहर हो गया है, तो तुम्हारे दाँतों में भी जहर होगा। तुमने मुझे कष्ट दिया है, इसलिए तुम सात लाख मधुमक्खियों को एक ही घर में रहना होगा और तुम अपने बच्चे खाओगी।' उसी दिन से मक्खियाँ अपने खुद के बच्चे को खा डालती हैं और उनमें कुछ ही बच पाती हैं।

गोंड
सुनपुरी, मन्डला जिला

हेमा कलार गढ़बंगाल में रहता था। उसे नैता धोबिन से प्यार था और जब कलारिन को इस बात का पता चला तो वह धोबिन और हेमा कलार दोनों से बहुत नाखुश हो गयी। कुछ समय बाद नैता धोबिन गर्भवती हो गयी पर उसके दुश्मन ने अपने जादू से उसका बच्चा उसके गर्भ में ही खतम कर दिया फिर भी उसने जन्म लिया। नैता धोबिन ने उसे एक हण्डी में रखा और घर के बाजू में गाड़ दिया। रात में वह उसी जगह गयी और अपने जादू से सिर की हड्डियों को मधुमक्खियों में बदल दिया और झुंड बनाकर हेमा कलारिन को मारने के लिए भेजा। रात में वे उसके घर में घुसने के लिए संध लगाकर उसे मारने वाली ही थी कि वह बोली, 'मुझे डंक मत मारो, मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँगी। जंगल जाओ जहाँ तुम्हें शहद का सुनहरा महल रहने को मिलेगा। जाओ और जाकर बरगद के पेड़ में मधु बन के रहो।' उसके कहने पर मधुमक्खियाँ बहुत प्रसन्न हुईं और मधुबन की ओर उड़ गयीं तथा उन्होंने बरगद के पेड़ पर अपना सोने का घर बना लिया।

गोंड
बरटोला, मन्डला जिला

महादेव ने चम्पा, चमेली, कनेर के फूलों का बगीचा कोरबसेरा के पास बनाया। जब फूल खिले तो वे एक-दूसरे से बात करने लगे, 'हम कितने सुन्दर फूल हैं, तो भी यहाँ कोई भी हमसे खेलने और शादी करने नहीं आता और हमें लोग अनदेखा करते हैं।' फिर उन्होंने कहा, 'चलो हम उस आदमी के पास विनती करने चलते हैं, जिसने हमें बनाया।' फूलों के राजा चमेली से उन्होंने कहा कि वह उन लोगों की

तरफ से महादेव के पास जाये।

चमेली महादेव के पास गया और बारह वर्ष उनकी सेवा की। जब महादेव प्रसन्न हो गये तो उन्होंने चमेली से पूछा कि उसकी क्या इच्छा है, उसने महादेव को, जो फूलों के रचयिता थे, फूलों की दुखद गाथा सुनाई। महादेव ने अपने शरीर से और अपने अंडकोश से थोड़ा सा मैल लिया और उसे हाथ के बीच गोली बनाकर रगड़ा। फिर आग से कुछ रख ली उसे फूँककर मैल की गोली पर उड़ाया। उन्होंने उसे हवा में फेंका और वह मधुमक्खी बन गया।

मधुमक्खी बगीचे के फूलों की ओर उड़ी और उनके साथ उनके पति के रूप में रहने लगी। शीघ्र ही फूलों ने बच्चों को जन्म दिया। ये ही फल हैं।

तितली
धुलिया
मेढाखार, मन्डला जिला

एक दिन मनो ढीमर मछली के लिए बिलोरन नदी गया और एक मछली पकड़ी। उसने ऊपर आकर मछली काटी और उसका ऊपरी छिलका पानी के किनारे फेंक दिया। कुछ दिनों बाद कोमांग गुरू वहाँ नहाने गया और उसने अपने कपड़े उतारकर नीचे पत्थर पर रख दिये। उसे पखाना करने की इच्छा हुई और वह धारा के नीचे की तरफ गया और वहाँ पखाना किया। रास्ते में वह उस जगह से गुजरा जहाँ पर ढीमर ने मछलियों का ऊपरी छिलका फेंका था। पाखाना करते समय उसने पेशाब नहीं की थी। इसलिए वापस आने पर उसे लगा कि उसका मूत्राशय पेशाब से भर गया है और उसने पानी के किनारे पड़े मछली के सभी छिलकों पर पेशाब कर दी। तुरन्त ही वे जीवित हो गयीं और हवा में उड़ गयीं। इसलिये तितलियाँ वहीं मंडराती हैं जहाँ लोग पेशाब करते हैं।

गोंड
टिकाईटोला, रीवा रियासत

मुखनसुर देवता गढ़ कैलाश में रहते थे। उन्होंने मन में सोचा, 'मैं कैसे प्रसिद्धि पा सकता हूँ?' वे कोयलागढ़ गये और उन्होंने कोयलासुर माई से शादी कर ली। उनके शरीर की हल्दी छूटी भी नहीं थी तो भी वे दोनों साथ सो गये और कोयलासुर माई गर्भवती हो गयी। सही समय में, जब ज्येष्ठ माह खत्म होकर असाढ़ माह शुरू हो रहा था, तब एक तितली फिफलीसुर माई का जन्म हुआ। उसने ढाई बार अपनी माँ का स्तन चूसा और कहा, 'मुझे दुनिया में जाने दो, मैं यहाँ तुम्हारे स्तन में नहीं रुकना चाहती।' इतना कहकर तितली उड़ गयी।

इल्ली और टिड्डा
गोंड
मन्झवानी, केन्दा जमींदारी

एक कुम्हार की पत्नी कुम्हारिन थी। कुम्हारिन को एक दिन सपना आया कि 'तुम तीन प्रकार के प्राणी बनाओ- शंखी, टिड्डा और हरी कुम्हारिन इल्ली। तीन प्रकार की मिट्टी के तीन अलग-अलग बर्तन बनाओ और प्रत्येक में अपने मासिक धर्म का खून मिलाकर उन्हें जंगल की झाड़ी में रख दो। उनमें से हर एक से तीन में से एक प्रकार के जीव होंगे।' कुम्हारिन जागी और उसने बताये अनुसार किया और इस प्रकार शंखी, टिड्डा और कुम्हारिन इल्ली पैदा हुए।

तिलचट्टा
धनवार
बरभाटा, उपरोरा जमींदारी

कजली बिन्द्रावन में बिन्झापहाड़ में सुरही गाये रहती थीं। उनकी देखरेख के लिए कोई भी नहीं था। वे चरने जातीं और पेड़ों के नीचे आराम करतीं। रोज-रोज गोबर करने से गोबर का ढेर लग गया। नीचे बिच्छू और तिलचट्टा पैदा हो गये। कई जाति के असढ़हा, कार्तिकहा, जेठमसीहा- तिलचट्टे पैदा हो गये। इनके नाम उनके पैदा होने के महीनों के नाम पर पड़े। जब अषाढ़ में तेज बारिश हुई तो गोबर गीला होकर पेड़ों और पत्थरों के नीचे से बह गया। बिच्छू और तिलचट्टे भी उसके साथ चले गये। इसीलिए वे उन्हीं जगहों पर रहते हैं।

गोंड
उपरि, रीवा रियासत

पटरानजी देवार झन्गी देवी की पूजा किया करता था। एक दिन पटरानजी देवार ने उससे वरदान माँगा। 'हम बैगा लोग जंगल में रहते हैं। (जंगलवासी हैं) हम नहीं जानते कि कब बरसात होने वाली है। हिन्दुओं में ब्राह्मण होते हैं जो अपनी पोथियों से उन्हें बताते हैं। हमारी सहायता के लिए हमें ब्राह्मण दो।'

झन्गी देवी अपने मासिक धर्म में थी। जैसे ही खून उसके पावों से होकर नीचे बहा, उसने उसे सरकंडे के एक टुकड़े से पीटा और यह कहते हुए दूर फेंका, 'जेठ में जब ये चिल्लाने लगेंगे तो तुम जान जाओगे कि बरसात होने वाली है और अब बीज बोने का समय आ गया है।' सरकंडा काकरोच में बदल गया और तब से वह बैगा लोगों को बरसात आने की चेतावनी दे रहा है।

कोल
जबलपुर जिला

झिगाझिगढ़ में एक बड़ा देवार रहता था। उसने जंगल साफ किया और वहाँ कुटकी वो दी, जिसकी लम्बी बाली होती है। जहाँ देवार ने जंगल साफ किया था वहाँ से एक दिन बुढ़िया निकली, कुछ पौधे उसके पाँव से कुचल गये। जब देवार ने देखा तो उसने बुढ़िया को कोसा। बुढ़िया को डस पर बहुत गुस्सा आया और उसने कहा, 'इतनी जरा सी बात के लिए मुझे इतना कोसा।

अब जो बूढ़ी औरत डायन थी। उसने कुटकी की कुछ बालियाँ चुरा लीं और उसे काकरोच में बदल दिया। उसने कई सौ काकरोच बनाये और उन्हें खेत की तरफ भेज दिया। काकरोचों ने कुटकी का हर दाना बरबाद कर दिया। तभी से काकरोच सारे संसार में फैल गये।

केकड़ा
देवार
तेन्दूभाटा, रायपुर जिला

केकड़ा भगवान का नाती था। बारह युग तक उसने तपस्या की और अंत में भगवान ने उसे वरदान दिया, 'मैं जो लिखता हूँ तुम उसे पढ़ सकते हो, पर और कोई नहीं पढ़ सकता। तुम पानी के राजा हो।' इसीलिए पुराने जमाने में जब दुनिया में कुछ भी नहीं था तब केकड़ा पानी और समुद्र में रहता था। जो भी पानी में गिरता उन सभी को वो मार डालता। भगवान ने सोचा, अगर मैं अपना वरदान केकड़े को देता हूँ तो जब मैं परेशानी में रहूँगा केकड़ा मेरी सहायता करेगा।' जब भगवान धरती बनाना चाहेगा तब कोई चाहे सहायता न करे पर केकड़ा करेगा। जब धरती तैयार हो गयी तो भीमसेन को जमीन को समतल बनाने के लिये भेजा गया, पर केकड़े ने सोचा कि वह जमीन चुरा रहा है तो वह उससे लड़ने के लिए दौड़ा। रास्ते के बीच में मकड़ी ने अपना जाल बनाया। केकड़ा बहुत नाराज़ हुआ और चिल्लाया, 'तुम मुझे पकड़ना चाहते हो?' और उसने मकड़ी के ऊपर पाँव रख दिया। मकड़ी ने केकड़े को कोसा, 'तुमने मुझे बाँध दिया है। अब आगे से तुम जमीन के अंदर रहोगे। यदि तुम अपने को छेद में नहीं छुपाओगे तो तुम मर जाओगे।'

केकड़ा धरती का अच्छा जानकार है और उससे कोई बच नहीं सकता। जब जमीन तैयार हो गयीं, भगवान ने भीमसेन को पानी का राज्य दे दिया और केकड़े को सूखी जगह का राजा बनाया। जब पानी नहीं गिरता तो केकड़ा रोता है और वह भनभनाने की आवाज करता है। आवाज से भीमसेन के कान डरे हुए घोड़े के कानों की तरह खड़े हो जाते हैं और पानी गिरने लगता है।

धनवार
रीवा, उपरोहा जमींदारी

एक बार बसंत के समय सारे संसार में चारों ओर कोहरा था। काली चट्टानें थीं। अंधा गुरू ने जमीन में नाखून गड़ाया और जगह को कोसा कि वहाँ कोई भी जायेगा वह नमक की तरह घुल जायेगा। और केकड़ा पाताल लोक से चट्टानें तोड़ते, अपना रास्ता बनाते आया। उसने उन चट्टानों को अपने जबड़े से तोड़ा और अंधे गुरू का नाखून ऊपर खींच लाया। उसके बाद लोग वहाँ सुरक्षित जा सके। इसी कारण केकड़े के बच्चे ऊपर से छाती तोड़ते हुए पैदा होते हैं।

गोंड
तौरबहरा, बिन्द्रा नवागढ़ जमींदारी

पहले केकड़े की हाथी की तरह सूँड होती थी। पर जब महादेव ने गणेश का सिर काट दिया और जब पार्वती बहुत गुस्सा हुई तो उन्होंने केकड़े का सूँड काटा और उसे गणेश के लगा दिया। पर इससे केकड़ा मर गया। पार्वती फिर से गुस्सा हो गयीं। 'तुम्हें गणेश को नष्ट करने से संतोष नहीं हुआ और अब तुम बेचारे केकड़े को भी बरबाद करना चाहते हो।' तब महादेव ने कहा, 'केकड़े, ओ भई केकड़े, उठो और बिना सिर के जिन्दा होकर रहो।' केकड़ा उठ खड़ा हुआ और महादेव ने उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए उसकी पीठ मजबूत कर दी। तुम अभी भी उस जगह महादेव की तलवार के निशान देख सकते हो जहाँ उसका सिर होना चाहिये।

गोंड
बर्राटोला, मन्डला जिला

पुराने जमाने में केकड़े के जबड़े नहीं थे। एक दिन एक बैगिन नदी में मछली के लिए गयी। एक लम्बे पत्थर के नीचे उसे एक केकड़ा मिला और उसने उसे पकड़ लिया। वह उसे काटने ही वाली थी कि केकड़े ने अपना सिर अंदर कर लिया और बोला, माँ, मुझे मत मारो, मुझे अपने घर में रख लो और मैं तुम्हारे लिए पूरी व्यवस्था कर दूँगा।'

बैगिन केकड़े को अपने घर ले गयी। कुछ दिनों बाद राजा ने अपने नौकरों को भेजकर अपने खेत की फसल काटने के लिए गाँव वालों को बुलवाया। जब वे बैगा औरत के घर गये तो उसका न तो पति था और न लड़का जिसे वह खेत पर भेज सके। पर केकड़े ने कहा, 'डरो मत, माँ, मैं जाऊँगा उनकी जगह।' अगरिया की भट्टी में गयी और उसने उससे लोहे के दो चाकू बनाने को कहा। केकड़े के शरीर के समने चाकू रखा और अपने जादू के बल पर उसे आश्वस्त किया कि वह जिसे

भी चाहेगा, काट सकेगा।

केकड़ा राजा के खेत गया और पूरा खेत उसने अकेले काट दिया और अनाज का ढेर लगा दिया। वह बैगिन के घर लौटकर गया। वह बहुत खुश हुई और उसने केकड़े को वापस नदी में रहने के लिए भेज दिया।

जूँ
धुलिया
करोँदी, मन्डला जिला

एक बूढ़ा आदमी और उसकी बूढ़ी पत्नी सुहारिनगढ़ में रहते थे। बूढ़ा आदमी एक आँख से अंधा था और बूढ़ी औरत दोनों कानों से बहरी थी। उनके सात लड़कियाँ, हियो, जिरो, सेखी, मनियां, दानिया, रूनियां और बुधमती थीं जो अविवाहित और जवान थीं। उन दिनों मेंढक की तरह बड़े जूँ उनके बालों होते थे और वे अपना अधिकांश समय उनको पकड़ने और मारने में बिताती थीं। वे इसमें इतनी व्यस्त रहती थीं कि शाम को घर में हर एक के लिए केवल एक ही अनाज बचता था। बूढ़े माँ-बाप घर के बाहर का सब काम करते थे। वह लड़कियों को कभी बाहर नहीं जाने देते थे। एक दिन एक बूढ़ी मालिन उन पर बहुत हँसी। उसने कहा, 'तुम जब बाहर जाते हो तब ये लड़कियाँ घर में लड़कों को बुला लेती हैं और बहुत सा समय उनके साथ बिताती हैं।' माता-पिता इससे बहुत परेशान हो गये। दूसरे दिन बूढ़ी माँ अनाज की कोठी के पीछे यह देखने के लिए छुप गयी कि उनकी गैरहाजिरी में लड़कियाँ समय कैसे बिताती थी। 'यह कभी नहीं चलेगा', बूढ़ी औरत ने सोचा। 'यहाँ तो कोई बात नहीं है, पर जब वे अपने पति के घर जायेंगी वे अपना समय इस तरह बेकार नहीं कर पायेंगी।' इसीलिए उसने लकड़ी की सात पायलियों में तिल के बीज रखे। फिर हर लड़की के सिर पर एक पायली रखी और वहीं तिल का भूसा निकाला। इससे यह हुआ कि मेंढक जुएँ बहुत छोटे हो गये और लड़कियों को आगे कोई तकलीफ नहीं हुई। इसके बाद उनके घर में खाने को बहुत सारा हो गया।

जुआंग
कन्तारा, पाललहारा रियासत

पहले लोगों के सिर में कम जूँ नहीं होते थे। रूसी और रूसिआइन के एक लड़की थी। रूसिआइन अपनी लड़की के सिर के बालों में छुपी लीखें खोजा करती थीं। उसने उन्हें बाहर खींचने की कोशिश की पर लीखें जोरों से चिपक गयीं और लड़की चिल्लाई।

उसी समय भगवान और पार्वती आये और पार्वती ने लड़की का चिल्लाना सुना। पार्वती ने कहा, 'कोई प्राणी तकलीफ में है', 'कोई बात

नहीं, उन्हें रहने दो' पर पार्वती रूसिआइन के पास गयीं और जब उन्होंने लड़की के बालों की तरफ देखा तो उन्होंने पाया कि बहुत बड़ी लीखें चिपकी हुई हैं। पार्वती ने अपने मन में सोचा, 'अगर हर एक के बालों में इस तरह की लीखें होगी ता वे मर जायेंगी।' उन्होंने भगवान से कहा, 'इन्हें किसी तरह निकालो।'

भगवान ने कहा, 'उसे नदी ले जाओ और उसका सिर पानी में डुबाओ। इससे लीख बाहर आ जायेंगी।' रूसिआइन लड़की को नदी ले गयी और उसने उसका सिर पानी में डुबाया और लीखें पानी में चली गयीं। वे वहीं अभी भी रहती हैं। लीखों की जगह भगवान ने तेल के दो बीज लड़की के बालों में रखे जो एकमद जूँ में बदल गये तो लीखें पानी में रहती हैं और जूँ बालों में रहती हैं।

कीड़े (मेगाँट)
गोंड
धमेरी, रीवा रियासत

एक साधू बिन्झपहाड़ में बारह साल तक रहा। एक दिन बैगा और उसकी पत्नी बेवर काटने के लिए उस जगह गये। जब उन्होंने पूरा कर लिया ता वे साधू के पास जाकर बैठ गये। बैगा चिलम सुलगाकर पीने लगा। पर जब साधु ने बैगिन को देखा तो वह उस पर मोहित हो गया और विचार करने लगा कि उसे किस प्रकार प्राप्त किया जाये। हर रात वह उसकी आँखों के सामने घूमती रहती थी।

एक दिन जब बैगा अपने बेवर में काम कर रहा था तो साधू उस रास्ते पर गया जिस रास्ते से बैगिन अपने पति के लिए दोपहर का खाना लेकर जाने वाली थी। जब वह वहाँ पहुँची तो साधू ने उसे पकड़ लिया और उससे आनंद उठाया। फिर बैगिन अपने पति के पास पहुँची पति बहुत गुस्सा हुआ क्योंकि वह इतनी देर से पहुँची थी। उसे संदेह हुआ कि उसने उसे धोका दिया है और वह किसी और आदमी के साथ रही है।

बैगा लोहागढ़ गया। उसने लोहे की एक बड़ी थाली ली, जिसे चार कोड़ी याने अस्सी आदमी मुश्किल से ले जा सकते थे। उसने तेली के यहाँ से तेल लिया और थाली के नीचे खूब आग जला दी और तेल गर्म किया। फिर उसने अपनी पत्नी से कहा, 'इस उबलते तेल में कसम खाओ कि तुम किसी दूसरे आदमी के साथ नहीं रही' पर वह डर गई और उसने मान लिया कि साधू ने उसके साथ जबर्दस्ती की है। जैसे ही उसने ऐसा कहा भूकम्प आ गया।

बैगा ने कहा, 'हम धरती के राजा और रानी हैं और इस साधू

ने हमें और हमारी पवित्रता को नष्ट किया है, इसीलिए पृथ्वी काँप रही है।' गुस्से में भरकर उसने साधू को शाप दिया और कहा, 'तुम्हारे शरीर को कीड़े खा जायें। उसी दिन से साधू बीमार पड़ गया और उसके शरीर पर कीड़े रेंगने लगे और उसे खा डाला। इसके पहले कीड़े-मकोड़े इस संसार में कहीं नहीं थे, पर तब से वह हर जगह फैल गये और मनुष्य और जानवरों को तकलीफ देने लगे।

उपरि, रीवा रियासत

किरझीसुर माई पाताल लोक में पानी में रहती थी। वहाँ उसके पेट में कीड़े-मकाड़े और कृमि रहते थे। एक दिन एक गाय पानी पीने गई और धोखे से उसका पैर किरझीमाई के ऊपर पड़ गया। उसका पेट फूट कर खुल गया और कीड़े-मकोड़े बाहर आ गये और गाय के ऊपर चढ़ गये। किरझीसुरमाई ने दर्द में गाय का कोसते हुए कहा, 'ये कीड़े-मकोड़े अब तुम्हारा खून पीयेंगे और तुम्हारे शरीर से वे सारे संसार में फैल जायेंगे।

टिड्डा

अहीर

छिरियामट्टा, मन्डला जिला

पान्द्रू अहीर की पत्नी जानवरों को सान्हरा गाँव में चराया करती थी। एक दिन जब वह जंगल गयी थी, तब एक गाय मर गयी। उसने गाय का चमड़ा निकालने के लिए चमार को बुलाया। चमार सुन्दर नौजवान था। लाश को काटने का काम खत्म करने के बाद वह अहीरन से इश्कबाजी करने लगा। जल्दी ही वे दोनों दोस्त हो गये और रोज जंगल में मिलने लगे। तीन महिनों तक ऐसा चलता रहा और फिर वह औरत भागकर चमार के घर चली गयी और उसकी पत्नी बन कर रहने लगी। पर एक-दो दिनों बाद उसका पति उसे खींचकर अपने घर ले गया और एक भोज देने के बाद उसे अपनी जाति में शामिल कर लिया।

मच्छर

गोंड

बंजर, मन्डला जिला

पहले अषाढ़ के महिने में जब पानी गिरता था, तब धरती अपने में रहने वाले प्राणियों से, तितलियाँ, केकड़े, मेंढक, कीड़ों से बात करती। वे सांय-सांय, सांय-सांय बात करते।

धरती और रात पति-पत्नी हैं; वे एक-दूसरे के पास गये और रात बोली सांय-सांय। और उसका बीज धरती पर गिर गया। उसके बीज से मच्छर पैदा हुआ।

मच्छर बोला, 'मैं क्या खाऊँ?' धरती बोली, 'सांय-सांय, जाओ और आदमी का खून पीयो।'

तब से मच्छर मनुष्य के खून का आनन्द लेते हैं।

गोंड

टिकाईटोला, रीवा रियासत

धोखेचन्द राजा और उसकी पत्नी के कोई बच्चा नहीं था। सेर नदी के किनारे एक साधू रहता था। राजा और उसकी पत्नी उसकी सेवा के लिए गये और जब साधू खुश हो गया तो उन्होंने बच्चे का वरदान माँगा। साधू ने राजा को एक लकड़ी दी कहा, 'उस आम के पास जाकर यह लकड़ी उसकी डालों पर फेंको। जो पहला आम गिरेगा उसे उठाओ और अपनी पत्नी को दे दो, वह गर्भवती हो जायेगी।

पर जब राजा आम के पेड़ के पास गया तो उसने पाया कि वह पेड़ डायनों से घिरा हुआ है। जब उन्होंने राजा को देखा तो वे मक्खियाँ बन गयीं और झुण्ड बनाकर उसे काटने दौड़ी। राजा अपनी जान बचाकर भागा और साधू की झोपड़ी में चला गया। साधू ने अग्निकुंड से राख ली और मधुमक्खियों के झुण्ड पर उड़ाई। राख हजारों मच्छरों में बदल गयीं और उन्होंने डायनों पर आक्रमण कर दिया। वे उनकी आँखों में घुस गये और उनके शरीर को काटा। जब डायनों मच्छरों को उड़ाने में लगी थीं तब राजा आम के पेड़ के पास गया। उसे आम मिल गया और उसने वह आम पत्नी को दे दिया और वह गर्भवती हो गयी।

बिच्छू

गोंड

थेवा, मन्डला जिला

एक गोंड था, जो मोटा और घमन्डी था। एक बार उसने गाँव के मंदिर की महादेव की मूर्ति को लात मारी। महादेव इस पर गुस्सा हुए। उन्होंने एक बिच्छू बनाया और उसे गोंड को काटने के लिए भेजा। उसने बिच्छू के आकार का एक पत्थर बनाया। उसने उसे छुआ और वह जिन्दा हो गया। इस बिच्छू से बहुत से दूसरे बिच्छू पैदा हुए और सारे संसार में फैल गये।

गोंड

पखरी, मंडला जिला

जब पार्वती जवान हुई, तो उसके पिता को चिन्ता हुई कि किस प्रकार उसका पति खोजा जाये। उसने कहा, 'इस पृथ्वी पर मेरे लिए कोई साथी नहीं है। पर ऊपर है जहाँ महादेव हैं।' उन दिनों महादेव घने जंगल

में रहते थे। पार्वती के पिता ने एक आदमी भेजा। पार्वती के पिता ने सारी तैयारियाँ की, पर महादेव ने सारे बाराती कपड़ों के बण्डल में छिपा दिए और सिर्फ भीमसेन को रक्षक बना कर आये। जब पार्वती के पिता ने यह सब देखा तो वे बहुत गुस्सा हुए, मैंने इतना विशाल भोज तैयार किया पर यह आदमी शादी के लिए एक ही साथी के साथ आया है। भीमसेन ने कहा, 'कम से कम मैं तो बहुत भूखा हूँ। ऐसा कहकर वह खाने बैठ गया और उसने ढेर सारा खाना खा लिया। महादेव ने अपना बण्डल खोला उसमें बहुत सारे बाराती थे। पार्वती के पिता महादेव के पैरों में गिर कर बोले, 'मुझे माफ कर दो मेरे दामाद।'

फिर पार्वती बोली, 'वह मेरे लिए कौन-कौन से जेवर लाये?' महादेव ने संसार की सभी जहरीली चीजें इकट्ठी कर लीं और उनसे जेवर बनाये। छोटे साँपों से पैर की अँगुलियों के लिए बिछिया, अपने जाँघ के मैल से उन्होंने साँप के बोंहटा, छाती के मैल से बर की नाक की लोंग बनाई, अपनी आँखों के कीचड़ से बिच्छू बनाकर उन्होंने कान के रिंग बनाये। अपने लिंग से मैल निकालकर मेंढक बनाकर उन्होंने वधू के माथे की बिन्दिया बनाई। इस प्रकार इन जहरीली चीजों से उन्होंने पार्वती को सजाया, और उसे अपने घर मधुवन ले गये।

लांझिया साओरा
मानेबा, गन्जाम जिला

मन्जुर साओरा की कुन्ती नाम की एक लड़की थी जिसकी उसने एक मरदू से शादी की। लड़का दुल्हन को अपने घर ले गया, पर वह उसके साथ एक रात भी नहीं सोया। लड़की उसके बाजू में सोने को जाती पर वह कूदकर भागकर दूसरे घर चला जाता। लड़की उसे प्यार करती थी पर वह कुछ नहीं करता था। उसने किसी अन्य लड़के को अपने साथ सुलाने की कोशिश की पर कोई राजी नहीं हुआ। किसी एक भी आदमी ने उसको नहीं छुआ और अंत में वह बूढ़ी होकर कुँवारी ही मर गई। मरने के बाद वह किटुंग देवता के पास गयी और उसे बताया कि क्या हुआ। उसने उस लड़की से पूछा, 'मुझे बताओ कि तुम क्या चाहती हो और मैं वह तुम्हें दूँगा।' उसने कहा, 'मैं फिर से संसार में नहीं जाना चाहती। पर मैं यह चाहती हूँ कि जैसे मैं आदमियों के लिए रोई, वैसे ही मेरे कारण लोग रोयें।' किटुंग बोला, 'जाओ बिच्छू बनो?' लड़की वापस पृथ्वी में बिच्छू बनकर आ गयी। और उसने लोगों को वैसे ही रूलाया जैसे वह लोगों के लिए रोई थी।

मकड़ी
गोंड
बेटमा, सिवनी तहसील, छिन्दवाड़ा जिला

कजलीबन में दोनागिरी नाम का एक बड़ा जंगल था। वह जंगल बंदरों से भरा हुआ था। एक दिन बंदर अपनी बंदरिया को रिझाने की कोशिश कर रहा था कि उसका बीज जमीन पर गिर गया, जिसे छिपकली ने खा लिया और उसे गर्भ ठहर गया। नौ महिने बाद उसने एक बच्चे को जन्म दिया जिसे वे मकरामल छत्री कहकर बुलाते थे। उसके नौ पाँव थे। जब वह बड़ा हो गया तो अपनी माँ से बोला, 'मैं तुम्हारे साथ कैसे रह सकता हूँ? मुझे कोई ऐसी जगह बताओ जहाँ मैं जाकर रह सकूँ। माँ ने कहा, 'मेरे बेटे, पाताल लोक जाकर रहो। वह तुम्हारे लिए सही जगह है। ऐसी कोई भी रूकावट तुम्हें नहीं रोकेगी। तुम अपने पेट से धागा-निकालोगे और उस धागे से तुम संसार को बाँधोगे। अपने धागे से तुम अपना महल बनाओगे। वहीं रहो। जब महादेव-पार्वती की शादी का समय आने में होगा तब वे तुम्हारे पास तुम्हारे धागे के लिए आयेंगे जिससे खाम को चारों ओर से बाँध सकें। तुम उन्हें दे देना और वे तुम्हें वरदान देंगे।

फिर मकरामल मकड़ी पाताल लोक चली गयी और वहाँ उसने अपना घर बना लिया। जब पार्वती की शादी का समय आया तो महादेव ने एक बैगा को थोड़ा धागा लाने के लिए भेजा। बैगा ने धागा मकड़ी से लिया। पर बैगा पाताल लोक से फिर से चढ़कर बीच के संसार में नहीं आ सका। तब मकड़ी ने खुद अपना धागा आसमान में फेंका और बैगा उस पर चढ़ गया। बैगा के ऊपर जाने के बाद मकड़ी भी उसके पीछे आयी और उसी दिन से वह पृथ्वी में रहने लगी।

महादेव ने उसे यह आशीर्वाद दिया : 'तुम्हारे पेट से धागे कभी खत्म नहीं होंगे।'

गोंड
पाटनगढ़, मन्डला जिला

तब शादियाँ नहीं होती थीं। बुचकी बाई का लड़का अबुझ देवता था। एक दिन बुचकी बाई अपने लड़के से बोली, 'कड़ी मेहनत करो और मैं तुम्हें एक प्यारी लड़की तुम्हारे साथ रहने को दूँगी।' लड़के ने कड़ी मेहनत की, उसने धागा काता और कपड़े बुने और उन्हें बाजार में बेचने के लिए ले गया। लोगों ने कहा, 'ये कितने हैं?' उसने कहा, 'एक पैसा ऊपर और एक पैसा नीचे। एक आदमी आया और उसने एक पैसा ऊपर रखा और एक पैसा नीचे रखा और कपड़े ले गया।

लड़के ने दो पैसे लिए और उसने एक लौकी खरीदी। जब वह उसे घर ले जा रहा था तो उसकी मुलाकात एक दोस्त से हुई। दोस्त ने कहा, 'तुम्हारे पास यह क्या है?' लड़के ने कहा, 'यह हाथी का अंडा

है।' पर जब वह जा रहा था, फूटकर फैल गया और जमीन में गिर गया।

लौकी का पानी मकड़ियों में बदल गया, उसका डन्टल मेंढक बन गया और बीज कीड़े-मकोड़े बन गये और तीनों प्राणी दूर चले गये।

लड़का अपनी माँ के पास गया और वह बोली, 'तुम क्या लाये हो?' लड़के ने कहा, 'मैंने हाथी का अंडा बाजार से खरीदा पर वह मुझसे रास्ते में टूट गया और मकड़ी, मेंढक, कीड़े-मकोड़े दूर चले गये।' प्यारी माँ बोली, 'तुम्हारे पवित्र होने के कारण ही वे बनाये गये। तो तुम फिर मत करो।'

दीमक
धुलिया
करोँदी, मन्डला जिला

एक बार महादेव दूर कैलाशगढ़ में प्यासे और परेशान थे। उन्होंने दिलारसाय और उसकी पत्नी को कचनारीगढ़ से बुलाया और उनसे बोले, 'तुम कलार हो। मेरे लिए पाँच बोतल शुद्ध शराब बनाओ। जब वह तैयार हो जाए तो मुझे अपनी दुकान पर बुला लेना।' कलारिन बैरंगडोंगर गयी और बारह कुड़े महुआ लेकर आयी। उसने मिट्टी के सात सौ बर्तन बनाये, उन्हें महुआ से भरा और उसकी सफाई की। परिणामस्वरूप उसे पूरे पाँच बोतल शराब मिली। शराब इतनी तेज थी कि वह आग की लपटों में बदल गयीं। ये लपटें दूर तक दिखाई दीं। दिलारसाय महादेव को बताने गया कि उसकी शराब तैयार है। पर महादेव ने कहा, 'अगर मैं तुम्हारे घर आता हूँ तो मैं कहाँ बैठूँगा? तुम्हारी दुकान में मेरे लिये कोई जगह नहीं है। जाओ बिना पानी के उपयोग किये मेरे लिए मिट्टी का घर बनाओ।'

दिलारसाय को समझ नहीं आया कि क्या किया जाये। पर उसकी पत्नी होशियार और डायन थी। उस समय वह अपने मासिक धर्म में थी। उसने नौ सौ सिंगी तुम्बियाँ और सोलह सौ छित्तवार बुलवाये और अपने जादू से बचा हुआ बेकार महुआ दीमकों में बदल दिया और उन्होंने बिना समय गंवाये एक मिट्टी का महल बिना पानी का उपयोग किये बना दिया। कलारिन ने चीटियों को आशीर्वाद देते हुए कहा 'जाओ, पाताल लोक में रहो और अपना घर बिना पानी के बनाओ।'

अध्याय आठ सरीसृप (रैंगने वाले जीव) साँप

सर्पपूजा पर ढेर सारा साहित्य है और मैं उनका यहाँ उल्लेख भी नहीं कर सकता। किताब में कुछ नयी कथाएँ हैं लेकिन उनमें से एक (क्रमांक दो) बहुत पुराने कथानक का थोड़ा बदला हुआ रूप है। कुक इसका निम्नलिखित विवरण देता है:

पीपा ब्राह्मण राजस्थान में एक देवता है। उसकी आदत थी कि वह एक साँप को दूध देता था। यह साँप सम्पू याने साँपों की झील के किनारे रहता था। इसके बदले साँप उसे रोज सोने के दो टुकड़े देता था। उस ब्राह्मण को एक बार व्यापार के सिलसिले में बाहर जाना पड़ा। जाने के पहले वह अपने बेटे को निर्देश दे गया कि वह साँप को दूध देना जारी रखे। लेकिन उस युवक ने खजाने का मालिक होने का यह अच्छा मौका देखा। उसने एक डण्डा लिया और जब साँप दूध पीने के लिए आया तो उसने उसे जोर से डण्डा मारा। लेकिन किसी प्रकार बच निकला और अपने बिल में चला गया। वापस लौटकर युवक ने इस घटना के बारे में अपनी माँ को बताया। वह यह सब सुनकर डर गई और उसने अपने बेटे को खतरे से बचाने के लिए इन्तजाम किया। पर जब सबेरे वह अपने बेटे को बुलाने गई तो उसने यह भयानक दृश्य देखा कि उसका बेटा बिस्तर पर मरा पड़ा है और उसकी देह के बाजू में एक विशाल साँप कुण्डली मारे बैठा है। जब पीपा लौटा तो उसके दुःख का ठिकाना न रहा। पर उसने बदला लेने के अपने विचारों को किसी प्रकार दबाया और साँप को खूब दूध पिलाया। साँप इससे खुश हो गया और उसने पीपा को वह खजाना दिखा दिया जिसकी वह रक्षा करता था। साँप ने पीपा को आदेश दिया कि वह एक स्मारक बनाये जो लोगों को भविष्य में इस घटना की याद दिलाता रहे। इस प्रकार पीपा एक प्रकार से साँप का देवता हो गया और पीपर कस्बा और सम्पू झील अभी भी उस गाथा की याद के रूप में हैं।¹

अगरिया
दलदल, मण्डला जिला

मरा हुआ चपर्रा साँप मतिन से आया है। वह पानी में रहता है और भूरे पीले रंग का होता है। वह एक डेढ़ हाथ लम्बा होता है। जो भी आदमी इस साँप को देखता है उसे हैजा हो जाता है और वह एक-दो दिन में मर जाता है। जब आदमी साँप देखकर मर रहा होता है तो जिस झरने में साँप रहता है उस झरने को जब तक एक बकरे की बलि

1. कुक, दो, 133

नहीं दे दी जाती तब तक किसी को भी उस आदमी का शरीर छूने के लिए नहीं जाना चाहिए। एक बार वीर चबूतरा के पास चार जवान लोग रास्ते में काम करते समय पानी के लिए गये। उन्होंने झरने में साँप देखा और उनमें से दो हैजा से तुरन्त मर गये।

अहीर नवागाँव, डोन्डीलोहारा जमींदारी

बहुत पहले एक अहीर ने बिन्झावन जंगल में अपना चरागाह बनाया। पास ही में काली चीटियों की एक बांबी थी जिसमें एक बड़ा अजगर रहता था। आदमी और अजगर जल्दी ही दोस्त बन गये। अहीर अजगर को रोज एक बर्तन में दूध देता था और उसके बदले में अजगर चीटियों की बांबी से अहीर के लिए धन लाता था। अहीर के लड़के को इस दोस्ती के बारे में मालूम पड़ा तो उसने तय किया कि वह अजगर को मारकर छिपा हुआ धन चुरा लेगा। ऐसा सोचकर लड़के ने एक मजबूत लकड़ी ली और एक बर्तन में दूध लेकर चीटियों की बांबी के पास गया। उसने अजगर को बुलाया, 'दोस्त बाहर आओ और अपना दूध पियो।' अजगर ने जैसे ही अपना सिर चीटियों की बांबी से बाहर निकाला वैसे ही लड़के ने लकड़ी से जोरदार वार किया। साँप केवल घायल हुआ था। वह जोर से फुफकारते हुए लड़के पर झपटा और उसे काट लिया। लड़का तुरन्त मर गया। गुस्से में आकर साँप चिल्लाया, 'आदमी बहुत धोखेबाज है। हमें उन्हें हमेशा काटना चाहिए और जितने लोग हम मार सकें हमें मार डालना चाहिए। फिर वह वापस अपने बिल में चला गया।

जब लड़का घर नहीं लौटा तो उसके पिता को चिन्ता हुई और वह उसे खोजने निकला। जब चीटियों की बांबी के पास पहुँचा तो वहाँ उसका लड़का मरा हुआ पड़ा था। अहीर अपने घर लौटा और दूध का बर्तन लेकर लौटा क्योंकि उसने सोचा, 'मेरा दोस्त गुस्सा था पर अगर मैं उससे बात करूँगा तो जरूर वह मेरे लड़के को बचा लेगा। उसने चीटियों की बांबी में दूध डाला तो साँप बाहर आया और चिल्लाया, 'तुम भी यहाँ से चले जाओ। तुम मेरे दोस्त नहीं हो। तुम सब मेरे दुश्मन हो।' अहीर उसे मनाता रहा पर साँप ने अपने सिर के घाव की तरफ इशारा किया और कहा, 'नहीं,' आदमी और साँप कभी भी दोस्त नहीं हो सकते। यहाँ से जल्दी भाग जाओ नहीं तो मैं तुमको भी काट लूँगा।'

बैगा बंघोर, कवर्धा रियासत

लच्छी नाम का एक अहीर था। वह घायली कछार में गायों को

चराया करता था और बाँस की बाँसुरी बजाते हुए जंगलों में घूमा करता था। एक दिन जब वह वहाँ जा रहा था तो धोखे से उसका पैर एक नाग पर पड़ गया। नाग ने अहीर को काट लिया। उसके पूरे शरीर में जहर फैल गया और वह मर गया। वह जिस पेड़ से टिककर खड़ा था उसी पर गिर कर टिक गया और उसका शरीर वहीं सीधा खड़ा होकर टिक गया। पास ही में एक आबनूस का पेड़ था। उस व्यक्ति की बाँसुरी उसकी निर्जीव अँगुलियों से आबनूस के पेड़ के पास गिर गई और उसका मुँह हवा की ओर हो गया। जब हवा बहती तो उसमें से संगीत बजने लगता था।

जब साँप ने संगीत सुना तो उसने अपने मन में कहा, 'मैंने इस आदमी के ऊपर अपना जहर बेकार कर दिया, मैं उसे मार नहीं पाया और वह अपनी बाँसुरी बजाये जा रहा है।' नाग आबनूस के पेड़ के नीचे गया और वहाँ उसने अपना जहर गिरा दिया। इस जहर में इतनी आग थी कि पेड़ जल गया और इतना काला हो गया कि जैसा वह पहले कभी न था। उन दिनों सिर्फ नाग में ही जहर होता था और दूसरे साँपों में जहर नहीं होता था। जो कुछ हुआ उसे सुनकर सभी साँप वहाँ आ गये और उन्होंने पेड़ के तले से जहर चाट लिया। इसीलिए आजकल ज्यादातर साँप जहरीले होते हैं। कुछ साँप समय पर पेड़ के पास नहीं जा सके थे, इसलिए वे जहरीले नहीं हैं।

बैगा गोटई, मण्डला जिला

एक कुम्हार अपनी पत्नी के साथ रहता था। उसके भट्टे में एक बर्तन था। उसने अपने कई सेवकों की सहायता से वहाँ एक छत्ता बना लिया था। एक दिन कुम्हार की पत्नी यह देखने गयी कि भट्टे में आग है या नहीं। तभी बर्तन उड़ी और उसने कुम्हारन को काट लिया। इस पर कुम्हारन बहुत नाराज हुई और उसने मंत्र पढ़कर थोड़ी सी राख बर्तन पर फेंकी। राख से साँप, बिच्छू, मेंढक और कनखजूरा पैदा हो गये। उसने अपने बर्तन से कुछ रंगीन पानी फेंका जो उनके मुँह में जाते ही जहर बन गया। वे भाग खड़े हुए। कुछ बिलों में, कुछ पत्थरों के नीचे, कुछ तालाबों में चले गये। साँप चीटियों की बांबी में चला गया।

एक दिन जब एक अहीर अपनी गायें चरा रहा था तब वह चीटियों की बांबी के पास से निकला। वह बांबी पर बैठ गया और अपनी बाँसुरी बजाने लगा। साँप का जहर उसके शरीर से निकलकर बाँसुरी में घुस गया। कृष्ण बाँसुरी सुनने आये पर जहरीली हवा बाँसुरी से अहीर के शरीर में चली गयी और उसका शरीर नीला पड़ गया। इसलिए कृष्ण और अहीर भाई-भाई हैं।

साँप अपना विष छिन जाने के बाद कुम्हार के भट्टे में लौटा और उसने बर् को सब हाल बताया। बर् ने उसे अपना जहर दिया। साँप वापस चींटियों की बांबी के पास गया और उसने अहीर को काट लिया जिससे अहीर मर गया।

धनवार बरभाटा, अपरोरा जमींदारी

लाटागढ़ गाँव में असारू बैगा नाम का एक बड़ा देवार रहता था। उसकी लड़की का नाम था भुजचमकावन कूल्हामटकावन दंतगिजोरन मुस्कीधरैया बने बने टुरानके लाई मिठाई खवइया नकटेहर टूरी महामाई गंगो। (जब वह चलती है तो उसके कंधे झूमते हैं, उसके पुटटे हिलते हैं, वह अपने दाँत दिखाती है, वह हमेशा हँसती रहती है, वह धनवान लड़कों से मिठाई लेती है, वह हरेक से खुली है, वह महान माँ गंगो है।) बहुत समय पहले उसका सिर गंदा था। इसके पहले उसने बीस लड़कों का रस चूस लिया था। जब खून बहकर नीचे आया तो वह समझ नहीं सकी। उसकी माँ ने कहा, 'कोई बात नहीं। एक कपड़े में राख बाँधो और अपने पैरों के बीच में बाँध लो।' उन दिनों ढेर सारा खून आठ दिनों तक बहा करता था। नवें दिन उसने अपने कपड़े धोये और उन कपड़ों को राख के साथ एक बर्तन में रखकर, घर के बाहर रखी भट्टी में उबाला। फिर वह कटोरा नदी में कपड़े ले गयी। उसने कपड़े धोये और सूखने के लिए फैला दिये। उसने खुद नदी में नहाया और मिट्टी से अपने बाल धोये। उसने बाल घिसे और बाँस की कंधी से बाल सँवारे।

कुछ बाल नदी में गिर गये और दूर बह गये। वे हमेशा पानी में रहने वाले साँप बन गये। उसकी काली लीखें बतखों में बदल गयीं और सफ़द लीखें छोटी बतखों में बदल गयीं। वह कंधी साफ करने बैठी और जब उसने बाल दूर फेंके, तो वे काले साँप बन गये। कुछ बाल भूरे थे और ये भूरे साँप बन गये। कुछ सफ़द बाल थे, ये सफ़ेद साँप बन गये अन्त में औरत ने नदी में धोने के लिए बर्तन उठाया। कोयले के कुछ टुकड़े बर्तन में नीचे चिपक गये थे, ये गिरकर मछली बन गये।

धोबा मोहगाँव, कवर्धा रियासत

एक दिन सीता नदी में नहाने गई। उसने अपना सिर धोने के लिए मुट्ठी भर मिट्टी ली। मिट्टी चन्दन की लकड़ी के समान महक रही थी। सीता ने नदी के अन्दर जाकर अपना सिर डुबाया और जोर से अपने बालों को घिसा और जब उसने कंधी की तो उसके सात बाल निकल गये।

सीता ने सोचा, 'यदि इन बालों को दूर फेंक दूँगी और अगर कोई

उन्हें लाँघ जायेगा तो मेरा सिर दर्द करने लगेगा। यदि मैं जमीन में फेंक दूँगी तो वह सड़ गल जाएगा।' तब उसने अपने सातों बालों को साँप बना दिया। बालों में थोड़ी सी मिट्टी रह गयी थी इसलिए उसके निशान अभी तक साँपों के शरीर पर होते हैं। चूँकि ये साँप हैं सीता के सिर के बालों से बने हैं इसलिए वे कभी नहीं काटते और उन्हें सतबहनी के नाम से पुकारा जाता है।

गोंड बिलहार, बिलासपुर जिला

शुरू में मनुष्य और साँप साथ रहा करते थे। वे एक ही चौके में खाया करते थे और एक दूसरे के घर त्यौहारों और शादियों में आया जाया करते थे। साँप कभी आदमियों को नहीं काटते थे और मनुष्य कभी साँपों को नहीं मारते थे।

एक नाग की एक एक सुन्दर जवान लड़की थी। एक दिन लड़की नहाने के लिए नदी में गयी। उसी समय मिनमिन्दासुर दानव अपने आदमियों के साथ जंगल में शिकार करने के लिए नदी के पास आया। दानव और जवान नागकन्या ने आपस में बात की। दानव बोला, 'मेरे साथ मेरे घर चलो, मैं तुम्हें बहुत सुखी रखूँगा।' उसने लड़की को साथ लिया और वह लड़की भी राजी होकर उसके साथ चली गई।

पर जब उस नागकन्या की माँ ने यह सुना तो उसे बहुत गुस्सा आया। उसने सारे साँपों को बुलाया। सभी साँपों ने उस दानव का पीछा किया। वह चिल्लाई, 'तुम मेरी लड़की को क्यों चुराकर ले जा रहे हो?' मिनमिन्दासुर ने एक साँप को अपनी कुल्हाड़ी से मार डाला। इस पर साँपों के मुखिया ने मनुष्यों को श्राप दिया कि 'अब से साँपों के दाँतों में जहर होगा और वे तुम्हें काटा करेंगे।'

गोंड जकमी, मण्डला जिला

मन्हैर साँप कभी कई जगह पाया जाता था पर कभी नहीं दिखता। उसका रंग लाल चमकीला था और वह पच्चीस हाथ लम्बा था। वह पहाड़ों पर रहता था और उसका जहर इतना तेज था कि उसके आसपास पेड़ और घास जल गये थे। वह जिसकी तरफ भी देखता था वह तुरन्त मर जाता था क्योंकि उसका जहर हवा के जरिये उड़ता था। कोई पक्षी और जानवर उसके पास नहीं जाते थे और सिर्फ बड़े पेड़ उसका जहर सह पाते थे।

एक दिन कुम्हार ने सुना कि साँप एक जगह आया है। उसने

मिट्टी के कुछ बर्तन बनाये और उन्हें गीले और बिना पके ही लेकर चला और उन्हें साँप से थोड़ी दूर रखा। फिर पूरे आधा मील दूर जाकर उसने बाँसुरी बजाई। साँप ने धुन सुनी तो बाहर आया और बर्तनों की ओर देखा। उसका जहर हवा में फैला और उससे बर्तन ढँक गये और तब वे बर्तन ऐसे तैयार हो गए जैसे कि आग में पकाये गये हों। जब साँप वापस अपने बिल में चला गया तब कुम्हार ने जल्दी से अपने बर्तन उठाये और उन्हें दूसरे ग्रामीणों को दिखाया।

कहारा

खुरिया, बिलासपुर जिला

एक गोंड ओर गोंडनी जंगल में रहते थे। गोंडनी के पेट से एक साँप, एक बाघ और एक मनुष्य का बच्चा पैदा हुए। वह गोंडनी साँप को अपना दूध पिलाया करती थी और उसे खाली चूल्हे में सुला देती थी। चूल्हे के पास उसने कुछ मिर्च और लहसुन रख दिये। उसके लडके की शादी हुई और बहू घर में आयी। साँप चूल्हे के पास रखी मिर्च और लहसुन को मुँह में रखकर खेलता रहता था। एक दिन बहू ने घर के रिवाज को न जानते हुए उस चूल्हे में आग जलाई। जब साँप आधा जल गया तो वह बोला, 'क्या तुम समझती हो कि तुम मेरी भौजी हो इसलिए मैं तुमसे डर जाऊँगा?' यह कहकर उस साँप ने बहू को काट दिया। उसके मुँह में जो मिर्च और लहसुन था वह जहर में बदल गया। जब बहू मरने वाली थी तब साँप ने उसके पिता को बुलाया और कहा, 'मेरे मुँह में जहर हो गया है। तुम्हें गुनिया बनकर यह सीखना होगा कि अगर मैं किसी को काटूँ तो वह आदमी कैसे चंगा करोगे।' साँप ने बताया कि क्या करना चाहिए और गोंड समय पर अपनी बहू की जान बचा सका।

बाघ चमार के घर गया। वह वहाँ रोज जाता था। चमार ने समझा कि यह एक बहुत बड़ा कुत्ता है। वह इतना डर गया कि उसके बाल सूअर की तरह खड़े हो गये। एक दिन गाय मर गयी और चमार उसका चमड़ा निकाल रहा था। कुछ माँस उसके बाजू में एक बर्तन में रखा था। चमार ने सोचा, 'मुझे इस कुत्ते से दोस्ती करना चाहिए'। चमार ने बाघ को इशारा करके बुलाया और उसकी तरफ गाय की एक हड्डी फेंकी। बाघ ने उसे खा लिया। तब से बाघ माँस खाने लगे।

राजनेगी परधान

कंचनपुर, मण्डला जिला

एक बार नौ गोंड भाई नदी के पास के एक खेत को जोत रहे थे। एक साँप ने सबसे छोटे भाई को काट दिया। उस भाई ने इस बारे में भाइयों को कुछ नहीं बताया और बैलों पर से जुआ उतारकर हल

छोड़कर रोते हुए घर भाग गया।

वह लड़का जब घर पहुँचा तो उसके माता पिता को घटना के बारे में मालूम हुआ उन्होंने गाँव वालों को बुलाया और जगार का आयोजन किया। (साँप काँटे के इलाज के इस आयोजन के लिए देखिए फोक सांग्स आफ द मेकल हिल्स, फलक 347)। वहाँ एक बैगा लड़का मौजूद था। उसके ऊपर ठाकुरदेव आ गये। आसपास खड़े लोगों ने एक के बाद एक कई तरह के साँपों के नाम लेने लगे। जब उन्होंने डोमी साँप का नाम लिया तो बैगा लड़का बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। तब लोगों को पता चला कि जिस साँप ने उस लड़के को काटा था वह डोमी था और उन्होंने उसे चंगा कर लिया।

बाद में सारे साँप एकत्र हुए और एक सभा की। उन्होंने कहा, सिर्फ एक दो साँप मनुष्य को काटते हैं और नाम हम सबका लिया जाता है। सिर्फ एक दो साँपों की खराब प्रतिष्ठा के कारण हम सभी को भुगतना पड़ता है। हमें उन साँपों को बिरादरी से बाहर कर देना चाहिए जो मनुष्यों को काटते हैं। तब कुछ साँपों ने कहा, 'हम ये कैसे पहचानेंगे कि कौन से साँप काटते हैं और कौन से नहीं काटते?' जब उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझा तो वे महादेव के पास गए। महादेव ने उनकी कहानी सुनी और बोले, 'मनुष्यों को काटने वाले साँपों की पूँछ आज से छोटी हो जायेगी।' जिन साँपों ने मनुष्यों को काटा उस दिन से उन साँपों की पूँछ छोटी हो गई और वे साँपों की बिरादरी से निकाल दिये गये।

मगर

रोंटा, बोनाई रियासत

एक मगर बैतरणी नदी में रहता था। वह एक आदमी को नदी पार ले जाया करता था। जब दो लोगों को नदी पार ले जाता था तो वह उनमें से एक को खा जाता था। एक दिन भीमसेन नदी पार करना चाहता था। वह अकेला था और उसके पास ढेर सारे अनाज का वजन था। मगर ने कहा, 'मैं तुम्हें नदी के पार तो ले जाऊँगा पर मुझे तुमको खाना होगा।' भीमसेन बोला, 'कम से कम मेरे अनाज को तो नदी के पार ले जाओ। फिर उसके बाद मुझे खा लेना।' मगर अनाज ले गया और लौटकर उसने भीमसेन को निगल लिया। भीमसेन के पास एक छुरी थी जिससे वह मगर के पेट के भीतर आँतों और जिगर पर वार करने लगा। मगर दर्द से जोर से चिल्लाया और उसने भीमसेन को गुदाद्वार से निकालने की कोशिश की। लेकिन भीमसेन इतना मोटा था कि वह वहाँ से नहीं निकल सका। इसलिए अन्त में मगर ने जोरदार उल्टी करके उसे बाहर निकाला। जैसे ही वह बाहर आया, उसने मगर की जीभ खींचकर निकाल ली। इसलिए मगर की जीभ नहीं होती।

गोंड केवलारी, रीवा रियासत

एक सईस की पत्नी सुन्दर थी वह हमेशा ऐसे दूर भागती थी जैसे ताजी हरी घास चरने के लिए गाय भागती है। इससे वह बहुत परेशान था। आखिर में वह अस्वारीगढ़ गया जहाँ एक भीम रहता था जो बहुत बड़ा जादूगर था। भीम से उसने पूछा कि वह क्या करे। भीम ने कहा, 'नदी में जाओ, वहाँ बहुत सी काली चट्टानें हैं। वहाँ चितकबरा मुर्गा, नारियल और चावल चढ़ाओ।' भीम ने मुर्गे को चावल खिलाया और उसका सिर काटकर नारियल फोड़ा और यह कहते हुए सभी कुछ नदी में फेंक दिया, 'यदि यह लड़की फिर से भागने की कोशिश करे तो यहाँ से निकलने पर उसे पकड़ लेना।'

मुर्गे का सिर मगर में बदल गया। दो चार दिन बाद लड़की फिर से भागी लेकिन जब वह वहाँ से गुजरी तो मगर ने उसकी आंग पकड़ ली और नदी में रख दिया। कुछ रोज बाद उसका पति आया और उसे घर ले गया। फिर वह कभी नहीं भागी।

परधान खैरटोला, छिंदवाड़ा जिला

रामा नाइक अपनी पत्नी के साथ चोड़नगर में रहता था। हालाँकि वे दिन में तीन बार साथ में सोते थे, फिर भी उनके बच्चा न हुआ। बरसात के बाद जब कार्तिक का महीना आया और व्यापार करने का समय हुआ तो रामा नाइक रस्सी और बोरी बनाने के लिए जूट लाया। वह उसे धोने के लिए कलोरी नदी ले गया। जब शाम को उसे आने में काफी देर हुई तो उसकी पत्नी को फिकर हुई। उसने सोचा कि उसका पति नाइक किसी दूसरी औरत के साथ मजे ले रहा होगा। इसलिए उसने अपने बायें पैर से थोड़ी धूल निकाली, चूल्हे से चुटकी भर राख निकाली और नाइक के तरफ टोटका फेंका और कहा, 'सिंघी छीतावर, जाओ और जिस डण्डे से नाइक जूट कूट रहा है वह डण्डा उससे छुड़ाकर नदी में फेंक दो। उस डण्डे को मगर बन जाने दो और मुँह फाड़कर नाइक को डराकर घर खदेड़ दो।'

दूर नदी के किनारे रामा जूट धो रहा था और उसे लकड़ी से पीट रहा था। अचानक वह लकड़ी हाथ से उड़ गई और एक बड़े मगर में बदल गई जो उसकी तरफ मुँह बाये आ रहा था। नाइक अपनी जान बचाकर घर की ओर भागा। घबराहट में उसने अपनी पत्नी से कहा कि वह किस प्रकार बाल-बाल बच गया। नाइक को खुश करने के लिए उसकी पत्नी ने थोड़ा सा रो दिया। पर जब दूसरे दिन पानी के लिए नदी गई तो उसने मगर को यह कहते हुए कोसा, 'आज से तुम हमेशा पानी

में ही रहोगे। तुमने मेरे नाइक को डराने की हिम्मत कैसे की, पर तुम पानी के सभी प्राणियों से ज्यादा ताकतवर रहोगे और तुम्हें कोई भी मार नहीं पायेगा।'

कछुआ गोंड

नौलू गोंड और उसकी औरत के कोई बच्चा नहीं था पर उनके पास एक पालतू कुत्ता था। वे नेताम गोत्र के थे। एक दिन गोंड ने खूब शराब पी और लड़खड़ाते हुए घर गया और अपनी औरत को आलिंगन में ले लिया। कुत्ता बाजू में खड़ा उन्हें देख रहा था। इस पर गोंड ने गुस्से में उसे मार डाला। उसने उसकी लाश को नदी के किनारे फेंक दिया। चीलों और पक्षियों ने जल्दी ही उसका माँस खा डाला पर उसका सिर छोड़ दिया। छह माह बाद कछेरनदेव नदी के किनारे से निकल रहा था। उसका पाँव खोपड़ी से टकराया। तब उसने खोपड़ी उठाकर नदी में डालते हुए कहा, 'जाओ और पानी के राजा बन जाओ। तुम एक दिन उस आदमी को छकाओगे और उसे पानी में डुबा दोगे जिसने तुम्हें मारा था।' वह खोपड़ी कछुआ बन गई और लोगों को नदी पार ले जाने लगी। एक दिन जब नौलू वहाँ आया तो नदी में बाढ़ आयी थी। वह कछुए की पीठ पर बैठकर नदी पार करने लगा। आधी दूर जाने पर कछुआ बोला, 'तुम्हीं हो जिसने मुझे मार डाला था। अब मैं तुम्हें डुबाऊँगा।' लेकिन गोंड ने वादा किया कि वह उस कछुए को देवता मानकर पूजेगा। तब कछुआ नरम पड़ा और उसे नदी पार करा दी। तब से नेताम (नेताम गोंडी के नेई शब्द से आया है जिसका अर्थ कुत्ता होता है। ऐसा लगता है कि यही उनका मूल टोटम था। इस कहानी में रोचक ढंग से बताया गया है कि कुत्ते को पूजने के बदले वे कछुए को पूजने लगे और अब यही उनका टोटम है) गोत्र कछुआ को देवता की तरह पूजते हैं।

परधान नोदोरा, छिंदवाड़ा जिला

लोहागढ़ में बारह अगरिया भाई और तेरह तमेसुर भाई रहते थे। उन्होंने नारायणदेव के सम्मान में सिंघो और सुरजा मुर्गे और एक लाडू सुअर (इस कहानी में प्रयुक्त किये गये समारोह संबंधी शब्दों के लिए हिवाले कृत द परधान फलक 125 देखिए) चढ़ाया। जब बारह साल बीत गये तो उन्होंने लाडूकाज के लिए अपने रिश्तेदारों को न्यौता दिया। उन्होंने सिंघो और सुरजा को बाहर निकाला और उन्हें मार डाला। उन्होंने उन मुर्गों को भूना और खा लिया। सुरजा मुर्गे के पंखों से मोवा घास पैदा हुई और सिंघो मुर्गे की कलगी से लाल तिराया फूल पैदा हुआ। दोनों मुर्गे मारने के बाद वे सुअर की बलि देने के लिए चले और उसका सिर

फुलेरा में रख दिया। दूसरे दिन वे भाई उसे रायसुर झील ले गये और उसे वहाँ फेक दिया। इसके बाद वे घर लौटे भोजन किया।

उस गाँव में एक बूढ़ी अगरिया औरत रहती थी जो टोने टोटके में निपुण थी। उसे वह धागा मिल गया जिससे फुलेरा बाँधा गया था। उसने उस धागे को नाग में बदल दिया। फुलेरा के नीचे जो दिया जल रहा था उसे उस जादूगरनी ने कछुए में बदल दिया। नाग चीटियों की

बांबी में रहने चला गया और उसके सपेट से कई तरह के साँप पैदा होने लगे। कछुआ रासुर नाले में रहने लगा। उसका सर दिये की बाती से बना था और वैसा ही था उसे दिये की बाती की तरह आगे पीछे किया जा सकता था। बूढ़ी औरत ने कछुए के पेट पर अपना जादू चलाया और बोली, 'जाओ, इस जादू के कारण तुम सरलता से नहीं मरोगे। जब कोई तुम्हारे पेट पर चोट करेगा तभी तुम मारे जा सकोगे।'

साभार -मिथ्स ऑफ मिडिल इण्डिया

लेखक - वेरियर एल्विन

**सर्वप्रथम आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 1949 में प्रकाशित
वन्या प्रकाशन हेतु विशेष पुनर्मुद्रण 1991**

उड़ने वाला जहाज

प्रकाश परिहार

बहुत पहले एक बूढ़ा आदमी और औरत रहा करते थे, उनके तीन पुत्र थे। उनमें से दो लड़के जवान और होशियार तथा चलते पुर्जे थे। तीसरा लड़का बेवकूफ था। बूढ़े माँ-बाप, अपने दोनों होशियार तेज लड़कों को बहुत प्यार किया करते थे और एक हफ्ता भी नहीं गुजरता था बूढ़ी और अपने दोनों बेटों को पहनने के लिए नयी शर्ट दिया करती थी। पर जहाँ तक सीधे सादे बेवकूफ लड़के की बात थी सब उसका मजाक उड़ाते तथा उसे धिक्कारते रहते थे। वह अपनी जगह पर एक रद्दी पुरानी लिनन की शर्ट पहने चुपचाप बैठा रहता था, यदि उसकी बूढ़ी माँ उसे खाने को नहीं देती तो वह भूखा ही बैठा रहता था।

एक दिन गाँव में खबर पहुँची कि वहाँ का जार एक बड़ा भोज आयोजित कर रहा है जिसमें उसने अपनी सारी प्रजा को आमंत्रित किया है। उस भोज में जार की राजकुमारी उस व्यक्ति के साथ शादी करेगी, जो उड़ने वाला जहाज बनाकर तथा उसी में बैठकर महल पहुँचेगा। यह खबर सुनकर दोनों चालाक बड़े भाई सीधे जंगल गये। वहाँ उन्होंने एक पेड़ काटा और सोचने लगे कि इससे, किस प्रकार उड़ने वाला जहाज बनाया जा सकता है। जब वे भाई यह सोच विचार कर रहे थे तभी वहाँ एक बूढ़ा आदमी, इतना बूढ़ा कि कोई जितना अधिक से अधिक बूढ़ा हो सकता है, बहुत पकी उम्र का, उन दोनों भाईयों के पास आया और बोला तुम लोगों के हाथों में और अधिक ताकत आ जाये और कृपा करके मुझे थोड़ी देर के लिए माचिस दो ताकि मैं अपना पाइप जला सकूँ।

दोनों भाईयों ने जवाब दिया- बूढ़े आदमी, तुम्हारे लिए हम लोगों के पास समय नहीं है और ऐसा कहकर वे फिर, जहाज कैसे बनाया जाये? इस विषय में सोचने लगे। वहाँ तुम लोग सुअरों के खाने के लिए बड़े-बड़े बरतन ही पाओगे। परन्तु तुम लोग जिस तरह अपने कान नहीं देख सकते हो, वैसे ही तुम्हें वहाँ राजकुमारी का चेहरा देखने नहीं मिल पायेगा। इतना कहकर वह बूढ़ा आदमी वहाँ से गायब हो गया और दोनों भाईयों का यह हाल था कि उन्होंने लकड़ी का उड़ने वाला जहाज बनाने के लिए बड़ी मेहनत की, खूब दिमाग लगाया परन्तु वे अपने प्रयासों में सफल नहीं हो पाये।

दोनों भाईयों में से बड़े भाई ने अपने छोटे भाई से कहा- “चलो घोड़े पर सवार होकर हम शहर की ओर चलें, हो सकता है हम लोग राजकुमारी से शादी ना कर पाये पर हम, ज़ार द्वारा दिये जा रहे बड़े भोज में हिस्सा तो ले ही सकते हैं। बूढ़े माँ-बाप ने अपने दोनों बेटों को आशीर्वाद दिया तथा यात्रा पर जाने की तैयारी में सारी सहायता की। फिर बूढ़ी माँ ने अपने बेटों के लिए सफ़ेद डबलरोटी तथा रास्ते में खाने व साथ ले जाने के लिए एक पूरा सूखा सुअर, पीने के लिए बढ़िया यूक्रेनियन वोदका से भरा एक फ्लास्क दिया।

अपने-अपने घोड़ों पर चढ़कर दोनों भाई ज़ार के महल के लिए निकल पड़े तथा जब तीसरे बेवकूफ बेटे ने यह सब बात सुनी तो अपने माँ-बाप से अनुरोध किया, कि उसे भी अपने भाईयों के पीछे-पीछे जाने की अनुमति प्रदान की जाये। ‘मेरे भाई लोग जहाँ गये हैं मैं भी वहाँ जाना चाहता हूँ’ वह बोला। तुम-तुम मंद बुद्धि उसकी माँ बोली, बीच में जंगल में भेड़िये तुम्हें मारकर खा जायेंगे।

नहीं-नहीं वह मेरे साथ ऐसा कुछ नहीं करेंगे। नहीं, अब छोटे लड़के को वहाँ करने को कुछ था ही नहीं उसने जिद पकड़ ली कि वह भी जायेगा। अन्ततः माँ ने अपने छोटे बेटे के लिए कुछ बासी डबलरोटी तथा साधारण पानी से भरा एक फ्लास्क एक बड़े से बैग में भरा, बैग बेटे को थमाया और जहाँ उसे जाना था वहाँ पहुँचने के लिए घर से रवाना किया।

बेवकूफ लड़का जंगल के लिए निकल पड़ा और जब वह जंगल के बिलकुल पास पहुँचा ही था तभी उसने देखा कि एक बूढ़ा आदमी, इतना बूढ़ा कि जितना कोई अधिक से अधिक बूढ़ा हो सकता है उसकी ओर आ रहा है। उस अत्यधिक बूढ़े आदमी की सफ़ेद झकक दाढ़ी थी जो उसके कमर-कमर तक पहुँच रही थी।

बेवकूफ बोला- दादाजी प्रणाम।

-‘मेरे बच्चे खुश रहो तुम’

-दादाजी आप कहाँ जा रहे हैं?

मैं सारी दुनिया के चक्कर लगाता रहता हूँ ताकि दुख व कष्ट में पड़े लोगों की कुछ मदद कर सकूँ, और हाँ तुम किस ओर कहाँ जा रहे हो?

ज़ार के महल तक? जहाँ एक बड़े महाभोज का आयोजन किया गया है। क्या तुम स्वयं अपने आप उड़ने वाला जहाज बना सकते हो? नहीं? मैं ऐसा नहीं कर सकता हूँ। तो फिर तुम क्या कर सकते हो?

मेरे दोनों भाई वहाँ गये हैं तो फिर मैं भी वहाँ क्यों ना जाऊँ?

शायद वहाँ मेरी किस्मत खुल जाये?

ओह! यह तो सब ठीक है ऐसा करो कि थोड़ी देर बैठकर सुस्ता लो तथा थोड़ा बहुत कुछ खा लो और मुझे बताओ कि खाने के लिए तुम्हारी झोली में क्या है?

परन्तु दादाजी मेरे पास तो बस कुछ बासी ब्रेड है जिसे शायद आप खाना भी पसंद न करो? नहीं-नहीं तुम कोई चिंता मत करो, बस तुम तो निकाल लो।

उस बेवकूफ लड़के ने अपने झोले में हाथ डाला और ब्रेड निकाली और यह क्या वो ब्रेड ना तो बासी थी और ना ही जली, बल्कि उसके स्थान पर वहाँ काफी हल्की, ताजी तथा बहुत स्वादिष्ट गेहूँ के आटे की बनी ब्रेड थी। कुछ इस प्रकार की बढ़िया ब्रेड जैसी प्रायः अमीर लोग छुट्टियों के दिन खाते हैं। वह बेवकूफ लड़का यह सब देखकर चकरा गया उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था पर बूढ़ा आदमी यह सब देखकर चुपचाप बस धीरे-धीरे मुस्करा रहा था।

उन दोनों ने काफी देर तक आराम किया, पेट भर के खाना खाया। बूढ़े आदमी ने उस बेवकूफ लड़के को धन्यवाद दिया और बोला- ‘मेरे बेटे, मेरी बात को बहुत ध्यान से सुनो और जैसा मैं बता रहा हूँ वैसा ही करो।’ तुम यहाँ से सीधे जंगल में जाना तथा वहाँ ओक का जो सबसे बड़ा वृक्ष दिखे जिसकी टहनियाँ खूब फैली हों और आपस में उलझी हुई हों, उस पेड़ पर अपनी कुल्हाड़ी से तीन वार करना और तुरंत जमीन पर लेट जाना और तब तक मत उठना जब तक तुम्हें किसी के द्वारा बुलाने की आवाज सुनाई ना दे। इसी बीच तुम्हारे लिए उड़ने वाला जहाज बनकर तैयार हो जायेगा। तुम उसमें बैठकर जहाँ भी जाना चाहो, जा सकोगे परन्तु तुम्हें एक काम जरूर करना पड़ेगा कि जब तुम उस उड़ने वाले जहाज से बैठकर कहीं जाओगे, तो तुम्हें रास्ते में जो भी मिले अपने साथ उसे जहाज में जरूर बैठाना होगा।

बेवकूफ लड़के ने बूढ़े आदमी को धन्यवाद दिया और उससे विदा ली। फिर वह जंगल गया, वहाँ उसने बहुत उलझी हुई टहनियों वाले सबसे बड़े ओक के पेड़ को ढूँढा तथा अपनी कुल्हाड़ी से उस पर तीन बार प्रहार किया। प्रहार पूरे कर अपने आपको जमीन पर डाल दिया और सो गया। कुछ समय बाद उसने सुना कि कोई उसे आवाज देकर जगा रहा है।

‘उठो तुम्हारा सौभाग्य तुम्हारे सामने खड़ा है’- दूर से कहीं आवाज आयी। मूर्ख लड़का, उचक कर उठा और उसने अपने सामने,

उड़ने वाला जहाज तैयार खड़ा पाया। वह पूरा जहाज सोने का बना था। उसकी मस्तूलें चाँदी की थीं तथा उस जहाज में बढ़िया सिल्क कपड़े की पालें तनी थीं। उसे उस जहाज में चढ़कर बैठना भर था और जहाँ मर्जी हो, वहाँ जाना था। अतः बिना सोचे समझे, वह जहाज पर चढ़ा, पालें खोली और दूर उड़ चला। ओह! वह जहाज कितनी तेजी से, कितने आरामदायक तरीके से उड़ रहा था मानों हवा में बह रहा हो। वह मूर्ख उस उड़ने वाले जहाज पर लगातार आगे-आगे उड़ता रहा। कुछ समय ऐसे ही व्यतीत हो गया तब उसने एक आदमी को जमीन पर लेटे हुए देखा। मूर्ख ऊपर से ही चिल्लाया- 'आज का दिन शुभ हो भले आदमी-आप वहाँ जमीन पर पड़े-पड़े क्या कर रहे हैं? मुझे बहुत कम सुनायी पड़ता है मैं यह सुनना चाहता हूँ कि क्या ज़ार के सारे मेहमान उसके महल में पहुँच गये अथवा नहीं? तो क्या आप भी वहाँ जा रहे हैं? हाँ।

तो फिर ठीक है, आप ऊपर इस जहाज में चढ़ जायें। मैं आपको वहाँ ले चलूँगा। जमीन पर लेटा आदमी जहाज पर चढ़ गया और दोनों साथ-साथ उड़ने लगे। कुछ समय और बीता, और फिर उन्होंने जमीन पर एक और आदमी को देखा जो एक पैर पर उचक-उचक कर चल रहा था और उसका दूसरा पैर उसके कान से बँधा था। मूर्ख लड़के ने फिर आवाज दी- 'आपका दिन शुभ हो, भले आदमी, आप वहाँ एक पैर पर क्यों उचक-उचक कर चल रहे हैं? यदि मैं दोनों पैर से चलूँ तो सिर्फ एक कदम में ही सारी दुनियाँ का चक्कर लगा लूँगा और मैं, ऐसा चाहता नहीं हूँ। एक पैर से चलने वाले आदमी ने जोर से चिल्लाकर जवाब दिया।

तब फिर आप जा कहाँ रहे हैं?

महल तक जार द्वारा दिये गये भोज में शामिल होने। तब आप भी हमारे साथ, इस जहाज पर चढ़ जायें मैं आपको वहाँ ले चलूँगा। बहुत अच्छा, यह तो बढ़िया बात है वह आदमी भी जहाज पर चढ़ गया और तीनों साथ-साथ उड़ चले। कुछ समय और बीता और इन तीनों ने जमीन पर एक धनुर्धर को अपने तीर कमान से निशाना साधते हुए देखा। वो किस लक्ष्य पर निशाना साध रहा था, यह तो वे ऊपर से नहीं देख पाये क्योंकि उनके सामने, जमीन पर एक बहुत बड़ा मैदान फैला हुआ था। जिसमें कोई भी पक्षी या जानवर नजर नहीं आ रहे थे। मूर्ख लड़के ने फिर आवाज दी-शुभ दिन हो, महाशय। आप किस पर निशाना साध रहे हैं? आपके सामने कहीं भी कोई पक्षी या जानवर दिखाई नहीं दे रहा है। ऐसा आप सोचते हैं। आपको दिखाई नहीं पड़ेगा परन्तु मैं देख रहा हूँ।

अच्छा आपको दिखाई दे रहा है?

हाँ-यहाँ मेरे सामने फैले लम्बे जंगल के पीछे एक ओक के पेड़ पर एक बाज बैठा है जो मुझसे करीब सौ मील की दूरी पर है।

ठीक है तो फिर आप भी, हमारे साथ जहाज में आ जायें। वह आदमी भी जहाज पर चढ़ गया और वे चारों फिर उड़ने लगे। कुछ समय और निकला, और उन्होंने सड़क के किनारे एक आदमी को चलते हुए देखा जो अपने सर पर रोटियों से भरा एक बड़ा बोरा लेकर जा रहा था।

आप इतनी तेजी से कहाँ जा रहे हैं दादा जी? मूर्ख लड़के ने सवाल किया। कुछ और रोटियाँ लाने के लिए क्योंकि जल्दी ही रात के खाने का समय हो जायेगा। जमीन पर सड़क के किनारे चलते हुए आदमी ने जवाब दिया। परन्तु आप तो रोटियों से भरा बोरा सर पर उठाये हुए है। हाँ यह सच है पर यह सब मेरे लिए पर्याप्त नहीं है। मैं एक कौर खाऊँगा और यह सारी रोटियाँ खत्म हो जायेंगी। ठीक है तो फिर आप भी हमारे साथ इस जहाज पर बैठ जायें। वह बूढ़ा आदमी भी जहाज पर आ गया और पाँचों आदमी फिर उड़ चले।

कुछ समय और बीता और उन लोगों ने एक और बूढ़े आदमी को नीचे जमीन पर देखा जो एक बड़े से तालाब के किनारे चल रहा था और ऐसा लग रहा था मानों वह कोई जीव तलाश रहा हो। आप वहाँ क्या कर रहे हैं दादाजी? मूर्ख लड़के ने पूछा। मैं पानी की तलाश कर रहा हूँ, क्योंकि मुझे बहुत प्यास लगी है- बूढ़े आदमी ने उत्तर दिया। परन्तु आपके ठीक सामने तो पानी की एक बड़ी झील फैली है। हाँ, यह सच है पर मैं इस सारी झील का पानी एक चुल्लू में ही पी सकता हूँ।

ठीक है तो फिर आप भी हम लोगों के साथ इस जहाज पर चढ़ जायें।

कुछ समय और गुजरा और उन सबने अपने नीचे एक और बूढ़े आदमी को देखा उसके कंधों के ऊपर घास का एक बड़ा पूला रखा हुआ था और वह धीरे-धीरे सड़क के किनारे चला जा रहा था। दिन शुभ हो दादाजी। आप इस घास के पूलों को कहाँ ले जा रहे हैं? मूर्ख लड़के ने पूछा।

गाँव की घास मंडी में बेचने के लिए।

क्या वहाँ कोई घास बिक्री के लिए नहीं है। है, वहाँ है। पर मेरे पास जैसी घास है, उस प्रकार की नहीं।

आपके पास किस प्रकार की घास है?

एक विशेष प्रकार की। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, दिन चाहे

कितना भी गर्म हो, चाहे जितनी तेजी से सूर्य आग बरसा रहा हो। मुझे सिर्फ इतना ही करना पड़ता है कि यह घास मुझे बस जमीन पर फैलानी भर पड़ती है और यह तुरन्त बर्फ में बदल जाती है। तो आप भी आइये, जहाज पर चढ़ जाइये और हम सब एक साथ ज़ार से मिलने चलेंगे।

बहुत अच्छा। वह बूढ़ा आदमी भी जहाज पर चढ़ गया और सातों आदमी इकट्ठे उड़ गये। वे थोड़ी देर या काफी देर तक यूँ ही हवा में उड़ते रहे किसी को मालूम नहीं। वे सब महल तक पहुँच गये, और भोज शुरू होने के ठीक समय पर वहाँ पहुँचे।

खाने-पीने के ढेर इस महल के आँगन में लगे हुए थे महल के सामने बिछी अनेकों टेबिलों पर विभिन्न प्रकार के व्यंजन सजे हुए थे। ताजे कटे साँड, सुअर का गोश्त, भुनी हुई बटेरें, दूध, शराब और बहुत ढेर सारे सुस्वाद, स्वादिष्ट व्यंजन-खानों के बर्तन खुले हुए थे। आप जी भर कर यहाँ खा पीकर अपना पेट भर सकते थे।

शाही भोज में ज़ार के अधिकांश दरबारी उपस्थित थे। साधारण किसान तथा दरबारी, अमीर और गरीब, नौजवान और बुजुर्ग लोग और किसान के तीसरे मूर्ख बेटे के दोनों बड़े भाई भी एक टेबिल पर पास-पास बैठे हुए थे।

मूर्ख लड़का और उसके दोस्त सुनकर जहाज में बैठकर उड़ते हुए आये तथा ज़ार के शाही महल की खिड़कियों के ठीक नीचे उतरे तथा जहाज से उतर, शाही दावत उड़ा रहे उपस्थित व्यक्तियों की भीड़ में शामिल हो गये।

ज़ार पूरी तरह अचंभित था क्योंकि उसने कभी सोचा भी नहीं था कि वह एक गरीब किसान नौजवान को सुनकर उड़ने वाले जहाज से उतरते हुए देखेगा। जहाज से उतरा मूर्ख लड़का नंगे पाँव था और उसके शरीर पर रदी, साधारण मामूली कपड़े की पेन्ट कमीज थी जिसमें जगह-जगह पैबन्द लगे हुए थे। ज़ार ने मारे डर और गुस्से के अपना सिर पकड़ लिया। उसने अपने आपसे कहा- मैं अपनी रानी बेटी का विवाह कभी ऐसे गरीब आदमी से नहीं करूँगा।

वह सोचने लगा कि किस तरह इस आदमी से पीछा छुड़ाये और अन्ततः उसने उसकी परीक्षा लेने के लिए उसे बहुत से काम करने का आदेश देने की बात तय की।

ज़ार ने अपने एक सेवक को बुलाकर कहा- जाओ, उस आदमी को कहो कि मेरी बेटी का हाथ उसे विवाह में तब तक नहीं मिल पायेगा। जब तक वह इस शाही भोज के खत्म होने के पहले वह जीवित पानी न ले आये। यदि वह ऐसा नहीं कर पायेगा तो मैं अपनी तलवार से उसका सर कलम कर दूँगा।

सेवक ज़ार के आदेशों का पालन करने चल दिया। मूर्ख लड़के के साथ कान वाले आदमी ने ज़ार के कहे शब्द, पहले ही सुन लिये और अपने मूर्ख दोस्त को सारी बात बता दी। मूर्ख आदमी को यह सब सुनकर बड़ा दुःख हुआ और वह बुरी तरह हताश हो गया। वह वहीं पास ही एक बेंच पर सर लटका कर धम्म से बैठ गया। उससे कुछ भी खाते-पीते नहीं बना।

तुम इतने उदास क्यों हो? चपटे तलवे वाले आदमी ने पूछा। ज़ार चाहता है कि शाही भोज खत्म होने से पहले मैं उसके लिए जीवित पानी लाऊँ, और मैं यह कैसे कर पाऊँगा? तुम उदास मत हो, मैं तुम्हारे लिए वह पानी लाऊँगा।

ठीक है मैं देखता हूँ कि तुम यह कैसे करते हो? तभी ज़ार का सेवक वहाँ पहुँचा और उसने बताया ज़ार का क्या हुक्म है। परन्तु सेवक की बात सुनकर उस मूर्ख आदमी पर कोई असर नहीं हुआ।

उसने कहा कि अपने ज़ार को बता दो कि मैं उनके लिए जीवित पानी ला दूँगा।

फिर उस मूर्ख आदमी ने, लंगड़ाकर उचक-उचक कर चलने वाले दोस्त की तरफ देखा। उसने फौरन अपने काप से बँधा पैर खोला और देखते ही देखते, गोली की तेजी से वहाँ से चला गया। परन्तु जब उसने जीवित पानी से प्लास्क भरा जिसमें उसे मात्र कुछ पल ही लगे। इतनी देर में ही उसने बहुत थकावट अनुभव की। अभी तो शाही भोज पूरी रफ्तार से चल रहा है, मैं सोचता हूँ कि मुझे थोड़ी देर के लिए रूक कर मुझे सुस्ता लेना चाहिए। उसने अपने आप से यह बात की और यह कहकर उसने अपने आप को घास पर निठाल डाल दिया और गहरी नींद में सो गया।

शाही भोज लगभग खत्म हो गया था और यह देखकर कि उसका दोस्त अभी तक नहीं लौटा है वह वहीं मरे हुए आदमी की तरह निश्चल बैठ गया। अब मेरा खात्मा ही है- यह बात उसने अपने आपसे कही। चपटे तलवे वाला आदमी बिलकुल बेकार बिना मतलब का है उसने बताया कि वह एक झाड़ी के नीचे गहरी नींद में डूबा पड़ा है।

हम उसे कैसे उठायेगे, मूर्ख आदमी ने प्रश्न किया। इस बात पर धर्नुधारी उठ खड़ा हुआ उसने अपना धनुष बाण निकाला तथा निशाना साधकर झाड़ी पर तीर छोड़ा। तीर के प्रहार से सारी झाड़ी हिल गयी जिससे सपाट तलवे वाला आदमी, जो झाड़ी के नीचे सो रहा था, उसकी नींद खुल गयी, वह फौरन उठ खड़ा हुआ। उसने तुरन्त एक कदम लिया और इससे पहले की शाही महल में आये मेहमान भोजन

खत्म करते, उसके पहले जीवित पानी को लेकर महल में पहुँच गया।

ज़ार बहुत आश्चर्य चकित था पर कुछ बोला नहीं। वह पुनः अपने एक सेवक की तरफ मुड़ा तथा उस मूर्ख आदमी से यह बताने को कहा कि वह तब तक मेरी बेटी से विवाह नहीं कर सकता है जब तक वह और उसके सभी साथी मिलकर चौबीस साँड तथा बारह पेटियों से भरी डबलरोटी एक बार में खा ना लें, यदि वे ऐसा नहीं कर पाये तो मैं अपनी तलवार से उन सबका सर काट दूँगा।

बड़े कान वाले आदमी ने यह सब पहले ही सुन लिया और मूर्ख आदमी को बता दिया।

मुझे अब क्या करना होगा? मूर्ख चिल्लाया-मेरे लिए तो एक ब्रेड भी गटकना भारी है। यह कहकर उसने अपना मुँह लटका लिया और वह बहुत उदास व हताश था। तुम दुखी मत हो मेरे यार- पेटू आदमी ने बोला। ज़ार की शर्त के अनुसार मैं अकेला ही सब चटक जाऊँगा और फिर और भी माँगूंगा।

इसी बीच ज़ार का सेवक वहाँ पहुँचा ज़ार का हुक्म मूर्ख आदमी को सुनाया पर इसी बीच मूर्ख आदमी ने ज़ार के सेवक को बीच में ही कहते हुए चुप करा दिया। कि मैं जानता हूँ ज़ार मुझसे क्या चाहते हैं। तुम जाओ और बावर्चियों से कहो कि खाना बनायें। जल्दी ही दो दर्जन बैलों को भूना गया तथा एक दर्जन ड्रम भरकर ताजी डबल रोटियाँ पकवायी गयी तथा पेटू आदमी बड़े शौक से सारा खाना चट करने बैठ गया और एक मिनट में खाकर और देने का कहा।

मैं इसका दुगुना खाना एक बार में खा सकता हूँ- वह बोला। इससे जार बहुत झल्ला गया और उसने फिर हुक्म दिया कि मूर्ख आदमी और उसके सारे दोस्त एक घूँट में बीयर और वाइन के एक-एक दर्जन ड्रम पीकर बतायें। यदि ऐसा नहीं हो पाया तो मैं अपनी तलवार निकाल कर, सबका सर धड़ से अलग कर दूँगा।

बड़े कान वाले आदमी ने फिर यह सब जल्दी से सुन लिया और मूर्ख आदमी को बता दिया। इस बार ज्यादा पानी पीने वाला आदमी, मूर्ख आदमी की सहायता के लिए आगे आया। तुम बिलकुल मत डरना, मेरे दोस्त मैं सब पी जाऊँगा और, और ज्यादा पीने की माँग करूँगा। ज़ार के सेवकों ने बीयर तथा वाइन के भरे-भरे ड्रम खोला सब कुछ पीने वाले आदमी ने एक घूँट में सब खत्म कर दिया कि ड्रमों में एक बूँद भी नहीं बचा। यह तो बड़ी मामूली बात है वह बोला, मैं तो इस मात्रा का दुगुना भी, एक बार में, एक घूँट में ही पी सकता हूँ। जार ने सोचा कि इस मूर्ख से पीछा छुड़ाना तथा इससे उसके आगे कुछ और ज्यादा

कठिन काम करवाना संभव नहीं है। ज़ार ने मारे गुस्से के लोहे के बने अपने बाथरूम को लाल होने तक गर्म करने को आदेश दिया और उसके बाद मूर्ख आदमी को उस बाथरूम के अंदर नहाने का हुक्म दिया।

मूर्ख आदमी ने बर्फ में बदलने वाली घास की मदद से यह काम भी कर दिखाया। वे सब, लाल सुर्ख हो गये बाथरूम के पास पहुँचे वह बाथरूम यद्यपि भट्टी की तरह तप रहा था, तेज झुलस के कारण उन लोगों का दम निकल रहा था। परन्तु जादुई घास वाले व्यक्ति ने जल्दी से जादुई घास, गर्म तपते बाथरूम के फर्श पर बिछा दी और जल्दी ही बाथरूम का फर्श इतना ठंडा हो गया कि मूर्ख आदमी उस बाथरूम में आराम से नहा सका, नहाने के बाद वह स्टोव पर चढ़ गया और उस पर बैठकर अपने को गर्म करने लगा।

ज़ार सोच रहा था कि वह मूर्ख आदमी तो अब तक जलकर मर गया होगा उसने अपने नौकरों को गर्म बाथरूम में जाकर देखने को कहा कि उस मूर्ख आदमी का क्या बचा है। नौकर बाथरूम में गये और ओह-वहाँ अंदर बाथरूम के स्टोव पर वह मूर्ख आदमी मजे से बैठा हुआ था। यह बड़ा घटिया बाथरूम है, यहाँ इतना ज्यादा ठंडा है, लगता है कि ठंड के पूरे मौसम में इस बाथरूम को एक बार भी गर्म नहीं किया गया है।

ज़ार आश्चर्यचकित था। हैरान था, कि अब उसे इस मूर्ख आदमी के साथ और क्या करना चाहिए?

वह बड़ी देर तक सोचता रहा, उसने खूब सोचा विचारा और अन्ततः इस मूर्ख आदमी से छुटकारा पाने के लिए एक नया तरीका उसे सूझा।

उसने मुनादी करवायी कि हमारा पड़ोसी राजा हमारे देश पर अपनी फौज के साथ चढ़ाई कर रहा है। पड़ोसी राजा के विरुद्ध मैं तो अपनी पूरी ताकत से लड़ूँगा ही पर इसके साथ मैं मेरी बेटी से विवाह करने की इच्छा से आये प्रत्याशियों की भी परीक्षा करूँगा तथा उन सबमें, जो आदमी सबसे ज्यादा बहादुर साबित होगा, मेरी बेटी उसी से विवाह करेगी।

जार की बात सुनकर सभी तैयार हो गये और पड़ोसी देश की सेना से लड़ने चले गये। उपस्थित जार की बेटी से शादी के इच्छुक योद्धाओं के साथ मूर्ख आदमी के दोनों बड़े भाई भी अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर लड़ने वालों के साथ शामिल हो गये। परन्तु मूर्ख आदमी के पास कोई घोड़ा नहीं था। इसलिए वह लड़ाई पर नहीं जा सका। मूर्ख आदमी ने जार के अस्तबल अधिकारी से एक घोड़े की माँग

की। अस्तबल अधिकारी ने उसे कटी पूँछ वाला एक बूढ़ा घोड़ा दे दिया जो अपने आप को भी बड़ी मुश्किल से सड़क पर खींच पा रहा था।

महल से बाहर आये सभी युद्धवीर बहुत आगे निकल गये और गरीब मूर्ख आदमी को पीछे छोड़ दिया। और यहाँ वह मूर्ख आदमी अपनी जगह से ही, बूढ़े घोड़े को एक स्थान से आगे नहीं चला पा रहा था क्योंकि वह चलने लायक था ही नहीं।

अचानक एकाएक उसने सामने के जंगल से एक आदमी को निकलकर अपनी ओर आते हुए देखा। वह अजनबी बूढ़ा आदमी जानते हो कौन था? यह वही बूढ़ा था जिसने इस मूर्ख आदमी को उड़ने वाला जहाज दिलाने में सहायता की थी। उसने कहा “मेरे बेटे तुम उदास व दुःखी ना हो। मैं तुम्हारी मदद करूँगा। जैसे ही तुम इस मरियल घोड़े पर सवार होकर, सामने के बड़े फैले जंगल से गुजरोगे तो मार्ग में दाहिनी ओर तुम्हें एक विशाल नीबू का पेड़ दिखायी देगा। तुम नीबू के पेड़ को खुलने को कहना वह ऐसा ही करेगा और पेड़ के खुलते ही उसमें से एक जीनकसा हुआ घोड़ा तथा जीन से लटकता हुआ चमड़े का झोला होगा। उसके बाद जब भी तुम्हें किसी चीज की जरूरत पड़े तो तुम कहना अच्छा झोले से बाहर आ जाओ और फिर तुम वही देखोगे, जो तुम देखना चाहते हो, तो अच्छा अलविदा।

वह मूर्ख आदमी मारे खुशी के बौरा गया। वह जल्दी से मरियल घोड़े की पीठ पर सवार हो गया और जंगल की ओर गया। बहुत जल्दी ही उसे अपने दाहिने हाथ की ओर एक बड़ा विशालकाय नीबू का पेड़ भी दिखलायी पड़ गया। नीबू का पेड़ खुल जाओ-वह जोर से चिल्लाया। नीबू के पेड़ ने वैसा ही किया जैसा उसे करने के लिए कहा गया था तथा उसमें से एक शानदार घोड़ा, चमकने वाली लगाम लगाये हुए निकला। जीन से बँधा हुआ एक झोला लटका था और दूसरी ओर एक जिरह बख्तर, शिरास्त्र, तलवार तथा एक ढाल टंगी हुई थी।

मूर्ख आदमी ने शिरास्त्र और जिरह बख्तर पहन ली। वह फिर बोला-झोले के अंदर से बाहर आओ। और यह क्या, वह चकित रह गया- हजारों की संख्या में अस्त्र-शस्त्र से सजे सैनिक, एक पूरी सेना उसमें से बाहर निकल रही थी।

मूर्ख आदमी उचककर अपने शानदार घोड़े पर चढ़ गया तथा झोले से निकली भव्य सेना की अगुआई करते हुए, शत्रुओं की सेना की ओर चल पड़ा। वहाँ लड़ाई के मैदान पर बहुत फूर्ति और खूबी से लड़ा। उसने अपनी बायीं और दायीं ओर हजारों सैनिकों को अपनी तलवार से साफ कर दिया और इस प्रकार थोड़ी ही देर में शत्रुओं की सेना लड़ाई का मैदान छोड़कर भाग गयी। हालाँकि लड़ाई के अंत तक उसका एक

पैर जख्मी हो गया था। लड़ाई के खत्म होने के समय, जार और उसकी राजकुमारी बेटी अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर उससे मिलने आये।

राजकुमारी ने देखा कि जो योद्धा इतनी वीरता से लड़ रहा था वह जख्मी हो गया है तो राजकुमारी ने अपना स्कार्फ निकालकर, दो हिस्सों में फाड़ा तथा उस वीर योद्धा के जख्म पर पट्टी बाँध दी।

युद्ध के खत्म होते ही वह मूर्ख आदमी अपने घोड़े पर सवार होकर तेजी से भाग गया और जाकर सीधे विशालकाय नीबू के पेड़ के पास आकर ही दम लिया। नीबू के पेड़ खुल जाओ-उसने आदेश दिया।

नीबू के पेड़ ने आदेश का पालन किया। मूर्ख आदमी ने उस पेड़ के बीच में घोड़ा, जीन, तलवार, ढाल, शिरास्त्र तथा घोड़े की जीन से बँधा झोला सब एक साथ छिपा दिया तथा एक बार फिर अपनी वही पुरानी पैबन्द लगी शर्ट तथा पेन्ट पहन ली।

जहाँ तक जार का सवाल था उसने अपने राज्य की चारों दिशाओं में अपने सेवक दौड़ा दिये ताकि शत्रुओं के विरुद्ध, सबसे अधिक बहादुरी से लड़ने वाले उस वीर योद्धा को ढूँढ लायें जिसके पैर के जख्मों पर राजकुमारी का स्कार्फ बंधा हुआ है।

जार के सेवकों ने सबसे पहले उस योद्धा की खोज धनी लोगों में की परन्तु वह वाँछित योद्धा नहीं मिल पाया अतः जार ने अब गरीबों के घरों में भी उस योद्धा को खोजने का हुक्म दिया।

जार के सैनिकों ने एक-एक घर को छान मारा और एक तरह से योद्धा के लिए और ढूँढाई बंद करने का बिलकुल मन बना लिया था। तभी अन्ततः वे सैनिक मूर्ख आदमी की झोपड़ी में पहुँचे। वह गाँव के बाहरी कोने में अलग-थलग एक छोटी सी झोपड़ी थी, जब जार के दो सेवक झोपड़ी में अंदर आये तो वहाँ उन्होंने उस मूर्ख आदमी के दोनों बड़े भाईयों को रात का खाना खाते हुए देखा तथा यह मूर्ख आदमी अपने दोनों बड़े भाईयों के लिए रोटी सेंक रहा था, उसके एक पैर पर राजकुमारी का स्कार्फ पट्टी के रूप में बँधा हुआ था तथा यह देखकर जार के सेवक उसे तत्काल अपने साथ ले जाना चाहते थे परन्तु उस मूर्ख आदमी ने जार के आदमियों से ऐसा नहीं करने की प्रार्थना की क्योंकि वो फिलहाल बहुत गंदा है तथा जार के सामने प्रस्तुत होने लायक स्थिति में नहीं है।

मुझे कम से कम बाथरूम में नहाकर तैयार होने का मौका दो। आप लोग भी तब तक यहीं खाना खायें और मेरी प्रतीक्षा करें।

अच्छा-अच्छा यह सब ठीक है पर आप ज्यादा समय ना

लगायें। ज़ार के दोनों सेवक, डायनिंग टेबल पर बैठकर केक तथा ब्रेड खाने लगे। इसी बीच वह मूर्ख आदमी जल्दी से दौड़कर जंगल में लगे विशालकाय नीबू के पेड़ के पास पहुँचा और जोर से आवाज दी।

नीबू के पेड़ खुल जाओ। नीबू के पेड़ ने वैसा ही किया जैसा उसे करने को कहा गया था। तुरन्त नीबू के पेड़ से सजा सजाया घोड़ा निकलकर उस व्यक्ति के उसपर सवार होने की प्रतीक्षा करने लगा। मूर्ख आदमी घोड़े की जीन से लटके झोले से माँगकर शिरास्त्र, जिरह बख्तर

पहन ली। हाथों में तलवार पकड़कर वह इतना सुन्दर आकर्षक और सजीला लग रहा था कि किसी से उसकी तुलना नहीं की जा सकती थी। वह लपक कर घोड़े की पीठ पर चढ़ा और ज़ार के महल की ओर चल पड़ा। जब ज़ार और उसकी बेटी ने उस योद्धा को आते देखा तो इतना अधिक खुश हुए जितना वह हो सकते थे। तत्काल वहीं ज़ार ने उस व्यक्ति से राजकुमारी का उसी समय विवाह कर दिया गया और दोनों को खूब उपहार दिये।

समीक्षा

लोकनाट्य माच में विकास की सम्भावनाएँ

अनिल सिन्हा

लोक कलाओं की विभिन्न विधाओं के महत्व को जानते हुए भी हिन्दी क्षेत्र में लोक कलाओं को लेकर खोज, शोध, विश्लेषण, संकलन आदि के काम बहुत कम हुए हैं। प्रकाशक वर्ग तो इस ओर कोई खास ध्यान ही नहीं देता अगर उससे उसका कोई आर्थिक हित न सधता हो। यानी किसी ऐसे प्रोफेसर या समिति की संस्तुति अगर न मिले कि लोक कला से अमुक विधा को लेकर काम कराने से उस प्रकाशित काम को विभिन्न कोर्सों में लगवा दिया जायेगा या लोक कलाओं के नाम पर चलने वाली विभिन्न सरकारी समितियों का संबद्ध मंत्रालय में उसकी खरीद हो जायेगी तब तक प्रकाशक वर्ग आम पाठकों के बीच बिक्री के लिए ऐसी चीजें प्रकाशित नहीं कर सकता। विभिन्न हिन्दी प्रदेशों में लोक साहित्य व कलाओं की रक्षा के लिए देश की आजादी के बाद ऐसी कुछ संस्थाएँ स्थापित की गयी थी। जैसे राष्ट्रभाषा परिषद् बिहार (पटना), हिन्दी समिति, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, विभिन्न अकादमियों तथा वित्त पोषित कुछ अन्य संस्थाएँ जैसे-साहित्य सम्मेलन पटना, प्रयाग, दिल्ली आदि। लेकिन विडम्बनापूर्ण व शर्मनाक स्थिति यह रही कि इन संस्थाओं के चालू होने के बाद कुछ वर्षों तक तो काम हुए लेकिन धीरे-धीरे गंभीर शिथिलता आनी शुरू हो गयी। और अस्तु स्थिति यह है कि ऐसी तमाम सरकारी, अर्द्धसरकारी या स्वायत्त संस्थाएँ नाम मात्र के लिए रह गयी हैं, किसी तरह अपनी लाश ढो रही हैं क्योंकि काम तो यहाँ क्या होगा इनमें लगे कर्मचारियों का जीना मुहाल हो गया है। उन्हें नियमित रूप से वेतन तक नहीं मिलता। ऐसे भयानक लोक विरोधी वातावरण में मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद (भोपाल) अपनी एक अलग व रचनात्मक भूमिका में खड़ी दिखायी देती है। लोककला व साहित्य की विभिन्न विधाओं को लेकर परिषद कुछ-न-कुछ रचनात्मक काम करती दिखायी देती है। इसके विस्तार में जाने का यहाँ अवसर नहीं है पर एक उदाहरण से इसे स्पष्ट करना चाहूँगा। इस परिषद द्वारा मध्यप्रदेश के लोकनाट्य 'माच' को लेकर डॉ. कपिल तिवारी तथा नवल शुक्ल के संपादन में एक पुस्तक का प्रकाशन। संभवतः परिषद द्वारा प्रकाशित यह सबसे ताजा उदाहरण है।

इस प्रकाशन का महत्व इस बात में है कि इस पुस्तक के लेखक शिवकुमार 'मधुर' की यह पुस्तक सन् 1980 में अंकुर प्रकाशन, नयी

दिल्ली से प्रकाशित हुई थी लेकिन संस्करण के हाथों-हाथ बिक जाने तथा पाठक व शोधकर्ताओं की लगातार माँग के बावजूद इसका दूसरा संस्करण अंकुर प्रकाशन ने नहीं निकाला। प्रकाशक ने इसके लिए एक नितांत लचर कारण बताया कि मध्यप्रदेश शासन द्वारा पुस्तक क्रय योजना बंद कर दी गयी है इसलिए इसे छापकर कोई आर्थिक जोखिम नहीं उठाया जा सकता। उसने शोधार्थियों आम पाठकों का कोई ख्याल नहीं रखा और इस पुस्तक की खोज में रहे लोगों ने दो दशक बिताकर बड़ाती धारण कर ली।

मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् के सचिव डॉ. कपिल तिवारी व वसंत निरगुणे ने 'माच' संबंधी इस पुस्तक के बारे में जानकारी प्राप्त की तो परिषद् की ओर से इसे प्रकाशित करने का निर्णय लिया-लेखक शिवकुमार "मधुर" से भी इस पर विचार विमर्श कर इसे नवीनतम गतिविधियों के साथ अद्यतन बनाकर छापने की सहमति बनी और सन् 2000 में इसका प्रकाशन परिषद् ने किया। परिषद् या मधुर जी चाहें तो इसे दूसरा संस्करण मान सकते हैं लेकिन वस्तुतः यह 'माच' का पहला अपने ढंग का प्रस्तुतिकरण है। देर से ही सही मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् ने इस प्रकार एक अच्छा निर्णय लिया और अब यह पुस्तक - 'मध्यप्रदेश का लोकनाट्य-माच' लेखकों, समीक्षकों, शोधकर्ताओं तथा आम पाठकों व नाट्य संस्थाओं, रंगकर्मियों के पास पहुँचना शुरू हो गयी है।

डॉ. शिवकुमार 'मधुर' के शोध प्रबंध- 'भारतीय लोक नाटकों की पृष्ठभूमि में मालवा लोकनाट्य माच (एक विशेष अध्ययन) 'का सार संक्षेप इस पुस्तक के रूप में लोगों के सामने आया है।' भारतीय लोकनाट्यों में मध्यप्रदेश का 'माच' का महत्वपूर्ण रंग-रूप है। खुले रंगमंच की यह पारम्परिक नाटक शैली लगभग दो सौ वर्षों से लोकरंजन का सबल माध्यम बनी हुई है। गुरु गोपाल जी और गुरु बाल मुकुन्दजी से लेकर सम्प्रति श्री सिद्धेश्वर सेन तक माचकारों की एक लंबी परम्परा है। धार्मिक, ऐतिहासिक, श्रृंगारिक और सामाजिक कथानकों पर आधारित करीब सवा सौ खेलों की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं, जिनमें से पच्चीस खेल छापे खाने तक पहुँच पाये हैं। वैसे माच के खेल लोक-कण्ठों में सुरक्षित रहे हैं और आज भी हैं।

श्री 'मधुर' के इस वक्तव्य से 'माच' की लोक प्रसिद्धि तथा उसके सामाजिक परिवेश का पता लगता है। 'माच' में जब श्रृंगारिक और धार्मिक ऐतिहासिक और सामाजिक कथानकों का आधार लिया जाता है तो जाहिर है उसमें सामाजिक, धार्मिक विडम्बनाओं समाज में आम लोगों की स्थितियों, उन पर शोषण दमन, अंधविश्वास आदि का भी प्रसंग आता है जो एक प्रकार से आज की स्थितियों पर, जिनकी जड़े

अतीत में हैं, एक गहरी टिप्पणी भी है। इस प्रकार 'माच' की अपनी एक सामाजिक भूमिका भी है इसे इस पुस्तक में स्पष्ट किया गया है। जैसे सती प्रथा के विरुद्ध पिंगला का कथन- 'मध्यम सती को कई देखणो जी जबरन आगी में जीव झोंकनो जी।'

इसी प्रकार 'लोक कलाकार समाज का सजग प्रहरी होता है। कोई भी सामाजिक विषमता से उत्पन्न डाकू समस्या और आभूषण के प्रति नारी के आकर्षण को डाकू दयाराम गूजर नामक खेल में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जमींदारों और जागीरदारों के अत्याचार, भूमिहीन कृषकों की समस्याओं सहित भूदान, आंदोलन, परिवार नियोजन जैसी समस्याओं के आधार पर भी धरती को दान, ऊगतो सूरज, पनिहारिन आदि जैसे माच नाटकों में प्रदर्शित किया गया है। लेखक ने इन सारी प्रवृत्तियों तथा सभी रसों पर आधारित माच नाटकों की चर्चा करते हुए इसके काव्य सौन्दर्य व अलंकरण विधान को भी दर्शाया है। श्री मधुर ने यह भी दिखाने की कोशिश की है कि मालवा क्षेत्र से निकलकर माच नाट्य किस प्रकार अन्य क्षेत्रों में गया और वहाँ के स्थानीय प्रभाव से ही नहीं बल्कि वहाँ के अन्य लोकनाट्य प्रभावों को भी किस प्रकार ग्रहण किया।

तीन अध्यायों में पुस्तक को पूरा किया गया है-पाँच-इतिहास और तकनीक जिसमें माच नाट्य रूप के इतिहास, रंग शिल्प और इसमें प्रयुक्त होने वाले संगीत की चर्चा की गयी है। माच नाटक विधा के साहित्य पर केन्द्रित है- माच साहित्य जिसमें माचकार और मंडलियाँ, साहित्य-परिचय, काव्य सौन्दर्य और भाषा-शिल्प की चर्चा की गयी है तथा माच: परम्परा और प्रयोग में लोक संस्कृति, समय का साक्षी सहित नये प्रयोग नयी दिशाएँ पाठकों के सामने लायी गयी हैं।

लेखक ने दिखाया है कि माच जैसे लोकनाट्य में किस प्रकार धार्मिकता, श्रृंगार, ऐतिहासिक शौर्य वर्णन, नायिकाओं के सौन्दर्य व विरह वर्णन आदि से लेकर सामाज की आम विडम्बनाओं को इसके माध्यम से उठाया गया है। इस लोकनाट्य के मौखिक व लिखित रचनाकारों ने समय के साथ विकास किया है। जैसे किसानों पर दमन को लेकर 'धरती को दान' नामक माच नाट्य में कहा गया है- "किरसाण बिचारा दुख से दुखियारा है। यो दुःख काट जो/ जुलम करे ठाकुर गाम को, दुःख पाये किरसाण/.... भूखा तीरया छोरा-छोरी, तिनका करे उपास/ रंडी रंड की अरज सुणीलो दो म्हाने विश्वास' सुनो-सुनो हो कामदारजी, इनको बाँधो लई जई ने/ सब किरसाण के मुखिया जी ने बेकई दिया है भुरमई ने/' किसानों पर जुल्म की यथास्थिति के वर्णन से भी आम जागरूकता आने में मदद मिलती है। इसके बाद के माचकारों (माच नाट्य लिखने वालों) ने समझाने माच की प्रस्तुतियाँ

किस प्रकार मालवा क्षेत्र से निकलकर दिल्ली के ताल कटोरा गार्डन तक पहुँची और फिर वहाँ से आकाशवाणी व दूरदर्शन पर। इसमें किस प्रकार एनएसडी के प्रशिक्षित रंगकर्मियों ने शिकरत की, रूचि दिखाई तथा उज्जैन में 27 अगस्त से 1 सितंबर 1999 तक मालवा माच महोत्सव आयोजित किया गया। इसकी सूचना भी पुस्तक के अंत तक आते-आते नये प्रयोग नयी दिशाएँ- में दी गयी है। इस महोत्सव का ऑडियो-वीडियो रिकार्डिंग कर डाक्यूमेंटेशन का काम किया परिषद ने। जाहिर है इसमें संस्कृति विभाग मानव संसाधन मंत्रालय और भारत सरकार से सहयोग अपेक्षित था जो मिला।

इस नाट्य रूप को लेकर और भी शोध हो रहे हैं और इसे व्यापक तौर पर प्रचारित-प्रसारित करने का प्रयास भी जारी है। इसीलिए पुस्तक के संपादक के इस कथन को हम महत्वपूर्ण मानते हैं- 'लोक नाट्य माच में मनुष्य के होने और मनुष्य की संभावना का नाटक किया जाता है।' तथा 'नगरीय इलाकों में तैयार होने वाले लोक नाटक माच में कृषक समाज वंचित, विपन्न और सहज रचनात्मक समाज के लोगों को ऐतिहासिक, मिथकीय और धार्मिक चरित्रों के माध्यम से वैभव और शक्ति, अनैतिकता और आतंक, ढोंग और सहिष्णुता की स्थितियों और कारणों को व्याख्यायित किया जाता है। उसपर सामाजिक टिप्पणी की जाती है। उसका मखौल उड़ाया जाता है या उसे हास्यास्पद ठहराया

जाता है।'

माच के बारे में डॉ. कपिल तिवारी का यह वक्तव्य इस नाट्य रूप के विकास और समय के साथ चलने का संकेत देता है। अब शायद उस माचकार (माच नाट्य लेखक) की चेतना पर यह बात निर्भर होगी कि आधुनिक समय की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक उग्र बाजारवाद, सांप्रदायिक फासीवाद आदि को किस प्रकार लेता है और अपने नाट्य में समायोजित कर जनता को किस प्रकार का संदेश देता है। इसके लिए शिवकुमार मधुर को भी सचेत रहना होगा और अपनी पुस्तक के नये संस्करण में इन वस्तुस्थितियों के साथ पाठकों व रंग प्रेमियों रंगकर्मियों के बीच आना होगा तभी इस प्रयास व शोध की वास्तविक सार्थकता है।

इस पुस्तक से यह तो स्पष्ट हुआ कि 'माच' मध्यप्रदेश का एक बहु प्रचलित, लोक समादृत नाट्य रूप है। माच मंच से आया है। यानी माच नाटक रूप भी है, जिस मंच (प्रकाशक मंच) पर खेला जाता है वह मंच भी है और माचकार मतलब इस नाट्यरूप के रचयिता से है। सब मिलाकर सिद्ध करते हैं कि यह एक लंबित व संभावनाशील लोकनाट्य रूप है, जिसकी आधुनिक संदर्भों में संभावना तलाशना जरूरी है। इस प्रकाशन के लिए परिषद् व इसके सचिव धन्यवाद के पात्र हैं।

समीक्षित पुस्तक : मध्यप्रदेश का लोकनाट्य 'माच'
मूल्य : 50/- रूपये
लेखक : डॉ. शिवकुमार मधुर
प्रकाशक : मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद

समीक्षा

‘ख्याल अलीबख्श’ एक अमूल्य एवं अप्रतिम लोक-रचना

प्रो. देवसिंह पोखरिया

भारतीय लोक जीवन में लोकनाट्यों का विशिष्ट महत्व है। ये लोकनाट्य ख्याल, स्वाँग, लीला, राम-लीला, रासलीला, नौटंकी, भगत, भवाई, विदेसिया, खेल, कीर्तनिया, गोंधल, कुटियाट्टम, जात्रा, प्रहसन, तमाशा, नकल, कठपुतली, पंडवानी, भड़ौ, जगार आदि विविध रूपों में हमारे देश में परंपरा से प्रचलित रहे हैं। ये लोकाभिव्यक्ति और लोकानुरंजन के सर्वाधिक सशक्त माध्यम रहे हैं, इन लोकनाट्यों से ही कई साहित्यिक नाटकों का भी विकास हुआ है। किसी व्यक्ति विशेष द्वारा रचित होने पर भी ये निर्व्यक्तक एवं सार्वजनिक होते हैं, निर्बंध होते हुए भी आत्मानुशासन से बद्ध होते हैं। व्यक्ति, जाति, धर्म आदि से संबंधित होते हुए भी वैयक्तता, जातीयता और धार्मिकता से रहित असांप्रदायिक होते हैं। इनमें गीत नाट्य एवं वाद्य का अपूर्व समन्वय निहित रहता है। लोकनाट्यों में श्रोता-वक्ता या दर्शक अभिनेता के बीच कोई विभेद नहीं होता, ये हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन की थाती होते हैं- स्थानीय या क्षेत्रीय विशेषताओं से भी संवलित।

राजस्थानी लोकनाट्यों की समृद्ध परंपरा रही है। राजस्थान में ख्याल, स्वाँग, लीला और गवरी नाट्य के रूप में विविध लोकनाट्य प्रचलित हैं। राजस्थानी ख्यालों को मंचीय लोकनाट्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है। यहाँ की भूमि से उद्भूत न होने पर भी ख्याल राजस्थान में बड़े लोकप्रिय हैं। राजस्थान में कई प्रकार के ख्याल प्रचलित हैं। इनमें माच के ख्याल, शेखावटी ख्याल, कुचामणी ख्याल, चिड़ावी ख्याल, नौटंकी ख्याल, मेवाड़ी ख्याल, अलीबख्शी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल, जयपुरी ख्याल, कठपुतलियों के ख्याल, दांगलिक ख्याल, डोड़िया ख्याल, कड़ा ख्याल, नागौरी ख्याल, कथावाची ख्याल, चौबोला ख्याल, झाड़शाही ख्याल आदि मुख्य हैं। राजस्थान के लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों ने भाषा बोली, स्थान, रंगमंच, नाट्यतत्व, रंगशैली, शिल्प आदि के आधार पर इनका कई प्रकार से वर्गीकरण किया है। इन सब ख्यालों में अलीबख्शी ख्याल ही ऐसे हैं, जो व्यक्तिवाची नाम से प्रचलित हैं, बाकी ख्याल या तो स्थानवाची या फिर ख्याल गायकी के रंग या शिल्प पक्ष से संबंधित

या नामाघृत है। यह अलीबख्शी ख्यालों की ख्याति का ही परिणाम है कि अपनी विशिष्ट गायकी व मंचीय वैशिष्ट्य के कारण ये ख्याल अलीबख्श के नाम से प्रसिद्ध हुए।

राजस्थान के मेवाड़ अंचल के सुप्रसिद्ध ख्याल रचयिता अलीबख्श के ख्यालों को 'ख्याल अलीबख्श' के रूप में बड़े श्रमपूर्वक संग्रहित कर रेवतीरमण शर्मा जी ने बड़ा पुनीत कार्य किया है और मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् ने इसका प्रकाशन कर वाचिक परम्परा की इस अमूल्य धरोहर को अक्षुण्णता प्रदान की है, अतः दोनों ही बधाई के पात्र हैं। संग्रहकर्ता ने भूमिका में अलीबख्श के सामान्य परिचय के साथ ही ख्याल गायकी की परंपरा उसकी विशेषताओं, सांगीतिक, साहित्यिक एवं नाट्य पक्षों का सम्यक समुद्घाटन कर और अंत में ख्याल सार देकर पुस्तक की उपयोगिता और अधिक बढ़ा दी है। अलीबख्श द्वारा लिखित दस उल्लिखित ख्यालों में श्री शर्मा जी ने पाँच ख्यालों- श्रीकृष्ण लीला, राजानल का भिखा, राजा नल का बगदाव, निहालदे और अथ फसाना अजायब को 'ख्याल अलीबख्श' में समाविष्ट किया। अलीबख्श लिखित शेष उल्लिखित पाँच ख्याल पद्मावत, चंद्रावत, गुलबकावली, महाराज शिवदान सिंह का बारहमासा तथा अलवर का सिपतनामा को भी राजस्थानी लोक साहित्य संग्रहकर्ता प्रकाश में लायेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है, और तभी महान ख्याल रचयिता अलीबख्श के ख्यालों का एक सर्वांग एवं समग्र रूप सम्मुख आ सकेगा।

अलीबख्श के ख्याल गायकी और रंगमंच दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट कोटि के हैं। अनेक ख्यालों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि वे राग-रागिनियों, लोक संगीत और भाषा के मर्मज्ञ थे, संगीत में उनकी गहरी पैठ थी। उन्होंने अपने ख्यालों में शास्त्र और लोक का अपूर्व

समन्वय स्थापित किया। उनकी धुनें, ठुमरियाँ कालांतर में राजस्थानी लोक जीवन का कंठहार बन गईं। ख्यालों की संवादात्मकता और शब्द प्रयोग उनके अभिनय कौशल को प्रदर्शित करते हैं। ख्याल गायकी में अलीबख्श ने रागनी, दोहा, तोड़, सेंधू, ठुमरी, माँझ, रागनी-ठुमरी, मल्हार, देश, रागनी-मरहटी, रागनी-देश, सोरठा, चौबोला, सीटना, दुरीडा, चढ़ाव, छंद आदि रागिनियों गीत रूपों और छंद रूपों का प्रयोग किया है। अनेक स्थानों पर दोहा 'सरसी' छंद (27 मा.) में पर्यवसित हो गया है। कुछ स्थानों पर दोहा और माँझ मिलकर 'छप्पय' बन गये हैं। सारे ख्यालों में 24 से 32 मात्राओं वाले छंदों की लय आयी है। आछंद दोहा, सरसी व ताटक की लय का प्राधान्य है। 'तोड़' सर्वत्र टेकपद के रूप में आया है। इन सारे गीतों को एक ताल, त्रिताल या चौताल में निबद्ध कर गाया जाता है।

अलीबख्श के ख्याल प्राचीन एवं मध्ययुगीन लोकाख्यालों पर आधारित हैं। इनमें श्रृंगार का माधुर्य, विप्रलंब की पीड़ा, दर्शन की गूढ़ गहनता, भक्ति की प्रेम सघनता, नियति और नीति का संदेश व काव्यगत रसात्समकता निहित है। प्रेम के साथ असारता, सौन्दर्य के साथ नश्वरता, राग के साथ विराग को अलीबख्श ने बखूबी इन ख्यालों में बड़ी विदग्धता के साथ चित्रित किया है। लौकिक आख्यानों में भी उनकी भगवद्भक्ति ही सर्वोपरि रहती है। वे सर्वत्र सांप्रदायिक सद्भाव, सौहार्द्र और मानवीयता के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का मध्य उद्देश्य सम्मुख रखते हैं। सहज-सरल जनप्रचलित उर्दू मिश्रित राजस्थानी भाषा सर्वत्र इस भावनात्मकता का अनुगमन करती हैं। कथा संयोजन, गीतात्मकता, संवादात्मकता, अभिनेयता आदि सभी दृष्टियों से अलीबख्श के ख्याल बेजोड़ हैं। 'ख्याल अलीबख्श' एक संग्रहणीय और उपोदय लोक रचना है। इसके लेखन हेतु श्री रेवती रमण शर्मा और प्रकाशन हेतु मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् को कोटिशः साधुवाद।

समीक्षित कृति	: ख्याल अलीबख्श
संकलन	: रेवती रमण शर्मा
मूल्य	: 50/- रूपये
प्रकाशक	: मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल